उपासना

उपासना का यदि सन्धि-विच्छेद करें तो **उप+आसन** अर्थात् समीप बैठना। ईश्वर के समीप बैठना ही उपासना है। उपासना का दर्शन क्या है? इष्ट-कृपा से आज आपके सम्मुख प्रस्तुत करूँगा। समीप बैठने वाले को **उपासक और जिसके वह समीप बैठता है उसे उपास्य कहते हैं।** उपास्य और उपासक के मध्य का प्रकरण है—**'उपासना।'**

अब कौन किसके समीप बैठे, कैसे बैठे, क्यों बैठे? इन बातों का विश्लेषण करेंगे। मानव-शिशु माँ के गर्भ में लगभग नौ महीने, सात दिन बिताने के बाद उत्पन्न होता है और जैसे ही वह अपना तथाकथित होश संभालता है, तो वह पढ़ाई-लिखाई, धन-अर्जन, विवाह-शादी, संतान, प्रौपर्टी इकट्ठी करना इत्यादि-इत्यादि सांसारिक कामों में लग जाता है। ये आम जीवनचर्या है विश्व-मानव की। इस प्रकार हम **जीवन के लिए** कार्य करते-करते जीवन प्रारम्भ करते हैं, उन्हीं कार्यों में हम अपने आपको व्यस्त रखते हैं और जीवन के लिए कार्य करते-करते जीवन समाप्त हो जाता है। रात को स्वप्न में भी हम कार्य करते रहते हैं। लेकिन कोई-कोई दीवाना पैदा होता है, कभी-कभी। इस काल-चक्र में जन्म-जन्मांतरों तक घूमते-घूमते जब वह छलाँग लगा देता है, बाहर आ जाता है तो वह जीवन के लिए कार्य नहीं करता। उसके कार्यों की दिशा होती है कि जीवन काहे के लिए है? कोई-कोई पागल होता है, कि मैं जन्म-जन्मांतरों में जीवन के लिए घूम रहा हूँ और जो कुछ एकत्रित करता हूँ उसको छोड़कर मर जाता हूँ, फिर पैदा होता हूँ। शून्य से कहानी शुरू होती है और शून्य में समाप्त होती है।

जन्म-जन्मांतरों में अपना समय निरर्थक ही नहीं नकारात्मक, व्यर्थ

करते हुए हम अपनी तथाकथित उपलब्धियों में जब कभी इष्ट-कृपा से, संत-कृपा से ईश्वर का नाम लगा देते हैं, उनको ईश्वर-निमित्त कर देते हैं, तो वे सार्थक हो जाती हैं। इस प्रकरण का नाम है **पुरुषार्थ। पुरुषार्थ** का अगर हम सन्धि-विच्छेद करें, **पुरुष + अर्थ**। मेरी चेतन सत्ता का क्या अर्थ है, कौन हूँ मैं, कहाँ से आया हूँ मैं, कहाँ जाना है मुझको, क्यों आया हूँ मैं पृथ्वी पर? अगर मैं पृथ्वी पर लाया गया हूँ तो क्यों लाया गया हूँ और अगर पृथ्वी पर मैं स्वयं आया हूँ तो क्यों आया हूँ? आपको निश्चित करना पड़ेगा। आज नहीं तो हज़ारों जन्म बाद भी आपको स्वयं निर्णय करना होगा और उन कृत्यों का अनुसरण करना होगा जो कि आपको उसका निर्णय कराने में सहायक हों! तुम कौन हो, (**'तुम' उस ईश्वर के लिए**)! कहाँ रहते हो तुम, बार-बार मुझे पृथ्वी पर क्यों भेजते हो तुम, मेरे बिना तुम्हारी पृथ्वी पर क्या कमी थी? तो इसे जानना सब तरह से और किसी भी तरह से, कहलाता है **'पुरुषार्थ'।** मैं कौन हूँ, तुम कौन हो, तुम्हारा और मेरा सम्बन्ध क्या है, क्यों भेजते हो मुझे पृथ्वी पर बार-बार, तुम समर्थवान हो, मैं असमर्थ हूँ, तुम्हारा और मेरा मेल क्या है? तहेदिल, तहेमन, तहेरूह, सब प्रकार से और किसी भी प्रकार से, इसको जानना ही **पुरुषार्थ है। पुरुषार्थ ही मानवीय कर्म है,** मानवीय कर्त्तव्य है। जिसको आप लोग कर्त्तव्य समझते हैं और व्यस्त रहते हैं वो मात्र **'कर्म'** हैं और उन कर्मों में पशु भी व्यस्त रहते हैं। बहुत व्यस्त रहते हैं। पशु बेचारे भले हैं वो कुछ माँगते नहीं हैं लेकिन हम अपने कर्मों का प्रतिफल माँगते हैं। मानवीय-कर्म यदि कोई है तो वह है **'पुरुषार्थ'** और पुरुषार्थ के दो आयाम हैं—**साधना और उपासना।**

साधना को संक्षेप में पारिभाषित करूँगा। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं हमारी। हमारी पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच महाभूतों की प्रतिनिधि हैं। ईश्वर ने यह महासंसार—नाट्यशाला पाँच-महाभूतों से निर्मित की है, पृथ्वी, जल, वायु, आकाश एवं अग्नि। देह में **पृथ्वी** की प्रतिनिधि है नाक, **गंध**। **वायु** की प्रतिनिधि है **त्वचा**, **स्पर्श**। **जल** की प्रतिनिधि है **जीभ, रस**। **अग्नि** के प्रतिनिधि हैं

नेत्र, दृष्टि और **आकाश** के प्रतिनिधि हैं **कर्ण, नाद**। इन पाँचों-महाभूतों का प्रतिनिधित्व मात्र हमारे चेहरे में है। इसलिए जब हम स्वयं की पहचान कराते हैं या किसी को किसी से परिचित कराते हैं तो उसके चेहरे की तरफ देखकर करवाते हैं, उसके हाथ या पैर की तरफ देखकर नहीं करवाते। यह पहचान हम चेहरे से ही क्यों करवाते हैं, आपको अवश्य जानना चाहिये, क्योंकि पाँच-महाभूतों का प्रतिनिधित्व मात्र चेहरे पर है। पाँचों-महाभूतों में जो सर्वोत्कृष्ट महापावन महाभूत है, वह है **अग्नि।** अग्नि के प्रतिनिधि हैं **नेत्र।** किसी मानव के नेत्र नहीं बदलते। ये पाँच-महाभूत, पाँच-इन्द्रियाँ हमको संसार के विषयों की ओर लेकर जाती हैं। यह सारा महाविश्व पाँच महाभूतों का खेल है, इन्हीं पाँचमहाभूतों की मुट्ठी से एक मानव-देह बनती है। मानव का जो पालन-पोषण होता है वह भी इन पाँच महाभूतों से ही होता है और अन्ततः जब मानव-देह समाप्त हो जाती है और अग्निमय हो जाती है तो बच जाती है, डेढ़-दो किलो राख।

साधना द्वारा हम इन पाँच इन्द्रियों को वश में करते हैं, इन इन्द्रियों को वश में करने के लिए दो आयाम हैं। **इन्द्रिय-निग्रह और इन्द्रिय-दमन।** इन्द्रियों का निग्रह करना, इन्द्रियों को नियंत्रित करना ताकि हम अपनी दौड़ बाह्य जगत से समाप्त करें क्योंकि बाह्य जगत में भागते-भागते हमको असंख्य जन्म हो गये। बाह्य जगत में हम सुख-सुविधायें देखते हैं और हमारी ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ सुख लेती हैं। सुख लेने के लिए सुख-साधन चाहिये। कानों के सुख के लिए बहुत अच्छे संगीत उपकरण चाहियें। जीभ का सुख लेने के लिए तरह-तरह का भोजन चाहियें। त्वचा का सुख लेने के लिए बहुत नरम-नरम चीज़ें चाहियें। नाक का सुख लेने के लिए सुगन्धित वातावरण चाहिये। पैसा चाहिये उन चीज़ों को खरीदने के लिए और उसके साथ आपकी स्वस्थ इन्द्रियाँ भी चाहिये। एक चीज़ हम भूल जाते हैं कि **यदि सुख-सुविधायें भी हों और हम स्वस्थ भी हों लेकिन हमारे अंदर आनन्द लुप्त हो गया है तो हम सुख नहीं ले सकते।** ये सब सुख-सुविधायें हमारे लिए कष्ट का हेतु बन जाती हैं।

सब भाग रहे हैं अच्छे-अच्छे उपकरणों के लिए। कार बढ़िया से बढ़िया चाहिये, कपड़े बढ़िया से बढ़िया चाहियें, घर बड़ा चाहिये, शयन-कक्ष बड़ा चाहिये जबकि रात को सोकर पता ही नहीं चलता कि कहाँ सोये हैं। किसी ने अपने आपको सोये हुए नहीं देखा। बहुत कुछ चाहिये। सुख-सुविधायें चाहियें और हमारी सारी दौड़ उन सुख-सुविधाओं को प्राप्त करने की ओर रहती है। विचार करिए कि उसके बाद भी हम दुखी क्यों हैं? सुख-सुविधाओं की वस्तुएँ भी हम इकट्ठी कर लेते हैं लेकिन उनसे सुख क्यों नहीं मिलता? बहुत शानदार शयन-कक्ष है, वातानुकूलन उपकरण भी हैं। सब कुछ है, लेकिन सोने के लिए नींद की गोली चाहिये। भोजन बहुत तरह का है। स्वादिष्ट पकवान भी हैं लेकिन भूख नहीं है। भूख के लिए गोली चाहिये। निराश हो जाता है मानव, मैं सुख-सुविधाओं की वस्तुओं को एकत्रित कर चुका हूँ, बहुत सुन्दर मकान है मेरा, एक-एक सुविधायें हैं लेकिन मैं दुःखी क्यों हूँ? तो यहाँ से पैदा होता है कोई **महामानव**। अपने भीतर देखता है कि ये इन्द्रियाँ सुख कब देती हैं! जब आपके भीतर का आनन्द आपके साथ जुड़ा रहता है और उस आनन्द के लिए आपको अन्तःदौड़ चाहिये। सुख-सुविधाओं के पीछे भागते-भागते एक समय आ जाता है जब हमारे पास सुख-सुविधायें नहीं होतीं और यदि होती भी हैं तो इन्द्रियों में उनके भोग की क्षमता नहीं होती। आँखें खराब हो जाती हैं। बुद्धि खराब हो जाती है। उस समय आती है निराशा, हताशा। जिस समय हमने सुख लिए होते हैं उसकी स्मृति आती है और वो सुखों की स्मृति आपको दुःखों में प्रविष्ट करवा देती है। आप उनको याद करते हैं कि "मैं ऐसे कर लेता था, इतना भोग लेता था, मैं इतना दूध पी लेता था, इतनी मिठाई खा लेता था, अब मुझे भूख ही नहीं लगती," वगैरह-वगैरह। वे सुख-सुविधायें जो आपने अपने जीवन में ली हैं, वे आपके लिए दुख का कारण बन जाती हैं।

यदि आप अपने आनन्द-स्वरूप को ढूँढना चाहते हैं जो आपका है, आप उस सच्चिदानंद का अंश हैं, आप स्वयं सच्चिदानंद हैं, जब आप उस स्वरूप को ढूँढते हैं जिस पर आपका जन्मसिद्ध अधिकार है तो उसके लिए

आपको चाहिये अन्तःदौड़। जब तक आप अपने अन्तःमन से, अन्तःस्वरूप से, अपने उस सच्चिदानंद स्वरूप से जुड़ नहीं जाते तब तक आपको संसार की वस्तुएँ सुख नहीं दे सकतीं। हताश कर देगीं आपको। आज निराशा बहुत ही सामान्य है। कारण क्या है? कि आप अपने आनन्द-स्वरूप से बिछुड़ गये और **किसी भी प्रकार से जब आप अपने आनन्द-स्वरूप से जुड़ जाते हैं (इन्द्रिय-निग्रह करके) तो निराशा समाप्त हो जाती है।** मैं इन्द्रिय-दमन में विश्वास नहीं करता हूँ। आप इन्द्रियों के भोग लीजिये। यदि गाड़ी की गति नियंत्रित करनी है तो गाड़ी खड़ी नहीं करनी, आप उसको सड़क पर चलाइये। इन्द्रियाँ प्रभु ने इसलिए दी हैं कि आप इनसे सुख भोग लीजिये, लेकिन आप अपने आनन्द-स्वरूप को अवश्य स्पर्श कर लीजिये।

साधना को हम विस्तार से यहाँ नहीं लेंगे। आज का विषय है— **'उपासना'**। अपने इष्ट के पास बैठना, वहीं दो व्यक्तियों का होना आवश्यक है। एक तो बैठने वाला और दूसरा जिसके पास बैठा जाये। उपासना सदैव द्वैत में होती है और **उपासना साकार ब्रह्म** की होगी। साकार और निराकार के बारे में कई बार मैं अपने प्रवचनों में स्पष्ट कर चुका हूँ। आज भी संक्षेप में कहूँगा, थोड़ा सा एकाग्र करने का विषय है। जब कोई भी आकृति बनाई जाती है, कोई भी आकार बनता है तो उसकी पहली माँग है कि पृष्ठभूमि निराकार होनी चाहिये। रात को जब हम स्वप्न देखते हैं, स्वप्न-सृष्टि का निर्माण करते हैं तो हमारा सोना आवश्यक है। मानव-देह जो कि स्वयं में साकार है, यह पाँच अवस्थाओं में निराकार होती है—**प्रगाढ़ निद्रा, मूर्छा, तुरिया-समाधि, विस्मृति और मृत्यु**। इन पाँच अवस्थाओं में हम होते हैं; लेकिन हम निराकार होते हैं, अपने नाम और रूप से परे होते हैं। कोई धर्म नहीं होता हमारा, कोई कर्म नहीं होता, कोई कर्त्तव्य नहीं होता, कोई काल नहीं होता, कोई देश नहीं होता, कोई लिंग नहीं होता, कोई सम्बन्ध नहीं होता हमारा किसी के साथ, क्योंकि उस समय हम स्वयं में निराकार होते हैं। दूसरे व्यक्ति के लिए हम सो रहे होते हैं कि अमुक-अमुक

व्यक्ति सोया हुआ है। लेकिन जो सो रहा है वह स्वयं में निराकार है। उस समय **हम अपने नाम-रूप में नहीं होते, लेकिन हम होते हैं।** पहले हम निराकार अवस्था में पहुँचते हैं उसके बाद स्वप्न की सृष्टि होती है। एक कुम्हार है उसके पास मिट्टी के खिलौने हैं, हाथी है मिट्टी का, हमने कहा उसका घोड़ा बना दो, तो पहले वो हाथी को तोड़ेगा। उस मिट्टी का एक गोला बनाएगा जोकि अपने में निराकार होगा। उस निराकार मिट्टी से तब वो दूसरा खिलौना बनाएगा। जब हम कोई योजना बनाते हैं, विचारों का प्रकटीकरण करते हैं तो हम खाली कागज मँगवाते हैं। आपको कोई योजना बनाने के लिए, कोई कृत्य करने के लिए या कोई निर्माण करने के लिए साकार से निराकार होना अति आवश्यक है। इसी प्रकार जब **ईश्वर इस साकार सृष्टि का निर्माण करते हैं, तो वे भी स्वयं में निराकार हो जाते हैं।** पृथ्वी, वायु, जल, आकाश व अग्नि इन निराकार पाँच प्रतिनिधियों से वो समस्त साकार सृष्टि की संरचना करते हैं।

ईश्वर साकार भी है। यदि वो साकार न होता तो साकार की सृष्टि का विचार कहाँ से आता? असंख्य मानव, असंख्य जीव-जन्तु, असंख्य पर्वत-श्रंखलायें, नदियाँ, पहाड़, सागर, वसुन्धरा, असंख्य तारागण, असंख्य नाम व असंख्य रूपों की वस्तुएँ इस संसार महानाट्यशाला में निर्मित करने वाला स्वयं में साकार है। निर्माण करते समय पहले स्वयं में क्या बन जाता है, **निराकार**! एक रहस्योद्घाटन कर रहा हूँ। जब हम स्वयं को देखते हैं तो स्वयं को साकार नाम-रूप में ही देखते हैं। वरना हम खुद को देखते ही नहीं। जब हम सुषुप्ति में होते हैं तब हम निराकार होते हैं। जब हम तुरिया अवस्था में होते हैं तब भी निराकार होते हैं। न हमारा कोई नाम होता है न रूप होता है।

क्यों प्रभु के पास बैठा जाये, प्रभु को माना क्यों जाये? ईश्वर को मानना बहुत आवश्यक नहीं है। मैं कई बार कह चुका हूँ—प्रभु को क्यों मानें? मत मानिये! क्योंकि पशु ईश्वर को नहीं मानते। ये मानवों के लिए बात चल रही है। मानवों में केवल 11 श्रेणियाँ हैं, पाँच जिज्ञासु, पाँच मुमुक्षु

और अन्तिम जीवन-मुक्त। **तो ईश्वर को क्यों माना जाये?** क्योंकि आप अपने सच्चिदानंद स्वरूप को जानना चाहते हैं। ईश्वर क्या है? पारिभाषित किया है शास्त्र ने, जो सच्चिदानंद है। सत्, चेतन व आनन्द का अकाट्य सम्मिश्रण है, संगम है, उसका नाम है–**ईश्वर।** जो छः अति दिव्य गुणों से विभूषित है, **अति सौन्दर्यवान, अति ज्ञानवान, अति बलवान, अति ऐश्वर्यवान, ख्यातिवान एवं त्यागवान, उसका नाम है–ईश्वर।** जो हर्ष, उल्लास, अभय, आरोग्यता, सर्वसम्पन्नता, शक्ति, भक्ति, मस्ती, साहस, उत्साह और कृपा का सागर है, उसका नाम है–**ईश्वर।** वह मेरा विशुद्ध स्वरूप है जिससे मैं **'बिछुड़ा सा'** हूँ। उसका नाम-रूप क्या है? मनीषियों ने इसके बारे में बहुत विचार किया।

ईश्वर आपका इष्ट है, इष्ट का नाम और रूप क्या है? जो आपको पसन्द आए, बशर्ते आपने उसमें ईश्वरत्व को आरोपित किया है। यदि आपने किसी को ईश्वर मान लिया और उसमें ईश्वरत्व का आरोपण नहीं किया तो आपकी सारी उपासना निरर्थक चली जायेगी। निरर्थक ही क्या नकारात्मक हो जायेगी। खून-खराबे होते हैं, क्यों? क्योंकि हम ईश्वर को विभिन्न नाम और रूपों में मान लेते हैं लेकिन ईश्वरत्व का दृष्टिकोण ही नहीं है। यदि ईश्वरत्व का ज्ञान हो जाये तो धर्मों में लड़ाईयाँ समाप्त हो जायें। आपने जिस नाम और रूप में ईश्वर को माना है, उसमें ईश्वरत्व का आरोपण करके उसके पास कैसे भी उठना-बैठना शुरू कर दीजिये। उसे कहा है **उपासना।**

हमारी हिन्दू संस्कृति में 33 करोड़ देवी-देवता हैं। किसी को भी ईश्वर मान लो, वह ही आपका **इष्ट** है। तो खुली पसन्द दी गई कि किसी को भी आप नाम और रूप में इष्ट मान लीजिये, लेकिन उसमें ईश्वरत्व का पूर्णतया आरोपण कर दीजिये और उसको ध्याइये, उसका चिंतन करिये, उसको नैवेद्य चढ़ाइये, पूजा करिये, उसको रुलाइये, आप रोइये, कुछ भी करिये उसके साथ। कुछ भी करिये क्योंकि वह आपका ईश्वर है। हम कहते हैं ईश्वर तो एक ही है। यह एक क्या है–**'ईश्वरत्व'**। तो वह आपका **इष्ट** है। यहाँ से शुरू हुई **भक्ति।**

उस ईश्वरत्व का आरोपण करके आप अपने इष्ट के पास उठना-बैठना शुरू करते हैं। याद रखिए **आपने माना है उसको, अभी उसने आपको नहीं माना**। हाँ, **'बहुत कठिन है डगर पनघट की'**। तो बहुत ध्यान, बहुत साधना करते-करते जब कई जन्म बीत जाते हैं श्रद्धा से, विश्वास से, निष्ठा से, प्रेम से, धैर्य से तो एक मानसिक स्थिति उत्पन्न होती है, जिसे कहा है **'सच्च-खंड'**। **'सच्च-खंड'** एक प्रतीक्षा-कक्ष है जहाँ अपने प्यारे से मिलने से पहले आपको इंतजार करना पड़ता है। **सच्च-खंड** में प्रवेश कब मिलता है? जब आप अपने जप, तप, यज्ञ, हवन, पुण्य, पाप व दान आदि का सारा अहम् भूल जायें, समर्पण का समर्पण कर दें। आप तहे-दिल, तहे-मन व तहे-रूह से भूल जायें कि मैंने कुछ किया भी था। बात चल रही है **उपासना** पर। बड़ी पंक्ति लगी रहती है सच्च खण्ड में। जब पंक्ति में लोग खड़े होते हैं तो, आदमी पूछता है एक-दूसरे से कि भई, आप कहाँ से आये हैं, किसको मिलना है आपने? कि मैं कृष्ण का उपासक हूँ। कि अच्छा कृष्ण को मिलना है, कब से खड़े हैं आप? बोला, तीन-चार जन्मों से खड़ा हूँ। आप? मैं शंकर का उपासक हूँ, बोले मैं भी पाँच-छः जन्मों से खड़ा हूँ। अब उनकी बातें सुनकर कोई-कोई निराशा में चले जाते हैं और वे पंक्ति से बाहर आ जाते हैं। आपने तो करीब बैठना है, मिलना है, किसी भी तरह मिलना है क्योंकि वह आपका इष्ट है और उसको मिलना आपका जन्मसिद्ध अधिकार है। बहुत सी बातें करनी है, झगड़ा करना है, न जाने क्या-क्या करना है। तो वहाँ से एक योजना शुरू होती है, जिसका नाम है **'सम्बन्ध'**। मीरा पत्नी बन गई कृष्ण की, **'मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई।'** जिस इष्ट को आपने माना था, उसके साथ एक सम्बन्ध जोड़ लिया। क्योंकि आप मेरे से सहमत होंगे कि दुनियावी व्यवहार में भी हम उसी के साथ उठते-बैठते हैं जिसके साथ हमारा कोई सम्बन्ध होता है। इसलिए अपने इष्ट के साथ भी एक सम्बन्ध बना लीजिये। संसारी सम्बन्ध में और सद्गुरु एवं इष्ट के सम्बन्ध में क्या अंतर है? एकाग्र करिये, यहाँ थोड़ा सा गहन विषय है।

सांसारिक सम्बन्ध दैहिक-मानसिक होते हैं। होश संभाला तो एक अनजान स्त्री को बच्चे ने माँ कहना शुरू कर दिया, कोई भाई बन गया, कोई बहिन बन गयी। शादी हुई तो पति-पत्नी बन गये। जब तक आप मन से नहीं मानते तब तक सम्बन्ध मात्र दैहिक होता है। वह दैहिक सम्बन्ध भी तब तक पूरा नहीं होता जब तक मानसिक न हो। तो जो दैहिक, मानसिक सांसारिक सम्बन्ध हैं वे हमको संसार में ले जाते हैं। विवाह हुआ, पति बना, धर्म-पत्नी बनी, बच्चे पैदा हुए, बड़े हुए, उनकी पढ़ाई-लिखाई हुई, फिर उनकी विवाह-शादी। आगे वह अपनी संतान के लिए ऐसा करते हैं। तो सांसारिक सम्बन्ध हमको संसार में उलझा देते हैं, लेकिन जो सम्बन्ध आप अपने सद्गुरु और इष्ट के साथ बनाते हैं वह होता है **'दैहिक'-'दैवीय'।** मीरा ने कृष्ण को अपना पति मान लिया। वह संसार में उलझने के लिए नहीं था, वह संसार से निकलने के लिए था। सर्वप्रथम उसको अपना मन समर्पित करना पड़ता हैः—

''त्वदीयं वस्तुं प्रभु तुभ्यमेव समर्पये।''

यह तन, मन, धन तेरा है। उसको अपने जीवन का मुख्त्यारनामा आम देना पड़ता हैः—

''बहुत जन्म जिये रे माधो, ये जन्म तेरे लेखे।''

तहे-दिल, तहे-रूह व तहे-मन से आपको अपने इष्ट को अपना जीवन समर्पित करना पड़ता है। जब आप अपने इष्ट को अपने मन से मानेंगे, तो उसके बाद भी उसका सान्निध्य मिलना आसान नहीं हैः—

''सबकी साकी पे नज़र हो यह ज़रूरी है मगर,
सब पे साकी की नज़र हो यह ज़रूरी तो नहीं।''

किसी-किसी पे नज़रे इनायत होती है। क्यों होती है, किस पर होती है, यह खुदा जाने। उसको एक झलक मिल जाती है। जब वह झलक मिलती है, तो वो झल्ला हो जाता है। अगर वो झल्ला नहीं होता तो उसको झलक मिली ही नहीं। **झल्ला** पता है किसे कहते हैं—**पागल** को। उस झलक को कोई बर्दाश्त नहीं कर पाताः—

''क्या-क्या बताऊँ मैं तेरे मिलने से क्या मिला?
मुद्दत मिली, मुराद मिली, मुद्दा मिला,
सब कुछ मुझे मिला, जो तेरा नक्शे पाँ मिला।''

ईश्वर इतना परम सौन्दर्यवान है कि उसको देखकर आप झल्ले हो जाते हैं। उस झलक को पाने के बाद वहाँ पर एक दिव्य अधिनियम लागू होता है, कि जिस पर उसकी नज़रे इनायत होती है **ईश्वर उसको अपना मन समर्पित कर देता है।** पहले आपने अपना मन समर्पित किया, अब ईश्वर अपना मन समर्पित कर देता है। जब ईश्वर अपना मन समर्पित कर देता है तो मानव-मन का उसके साथ संगम हो जाता है। वहाँ पर एक प्रकरण होता है। **उपासक, उपास्य और उपासना तीनों एक हो जाते हैं**:—

''सो जानइ जेहि देहू जनाई, जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।''

वह अपने स्वरूप का ज्ञान स्वयं करवाता है, जिसको कहा है **आत्मज्ञान।** यह पढ़ने, लिखने, सुनने, बोलने का विषय नहीं है। अनिर्वचनीय पद है यहः—

''तुम वह बात क्यों पूछते हो,
जो बताने के काबिल नहीं है,
उनके पाँवों में मेंहदी लगी है,
आने जाने के काबिल नहीं हैं।''

आप तटस्थ हो जाते हैं। उसके बाद शुरू में जो द्वैत था, वह अद्वैत हो जाता है। लेकिन अद्वैत में मज़ा नहीं आता। माँ के गर्भ में शिशु होता है, जब तक वो गोद में न खिलाये तो मज़ा नहीं आता। उसके बाद वो स्वयं ही उपासक और स्वयं ही उपास्य बनकर खेलने लगता है, अपने आनन्द के लिए। तो यह है उपासना की परिपक्वता।

उपासना दृढ़ कब होगी और परिपक्व कब होगी? यह ज़रूर समझना चाहिये। **दृढ़ उपासना**—जब आपने ईश्वर को एक नाम-रूप में मान लिया और सम्बन्ध पैदा कर लिया और उसके साथ उठना-बैठना शुरू किया और आपको अपने इष्ट का मनन, उसका चिंतन, उसका भजन, उसका कीर्तन,

उससे लेना, उससे देना, प्रारम्भ हो जाए जब आप इष्टमय हो जायें तो वो है **दृढ़ उपासना।** जब इष्ट आपको मान ले तो उपासना **परिपक्व** हो जाती है। तब क्या होता है? अनिर्वचनीय पद है यह, लेकिन कुछ बता देता हूँ कि क्या होता है तब। **एक नाम-असंख्य रूप, एक रूप-असंख्य नाम, असंख्य नाम-असंख्य रूप आपको अपने इष्ट के ही नज़र आते हैं।** जहाँ-जहाँ धरती पर किसी मानव ने किसी को इष्ट रूप में माना है, वहाँ सजदा कर देते हैं कि यह मेरे इष्ट का ही स्वरूप है। भेदभाव नहीं रहता गुरुद्वारे, गिरजे, चर्च, मन्दिर सब एक हो जाते हैं। वहाँ पर आपको अपना इष्ट ही विभिन्न नाम-रूपों में नज़र आता है और अगर नज़र नहीं आता है तो आपकी उपासना परिपक्व नहीं है।

आपके इष्ट असंख्य नाम-असंख्य रूप और उसके साथ उपासक भी उसी के अनुसार बदलता है। आपके भी असंख्य नाम-असंख्य रूप हो जाते हैं कि, ऐ मेरे इष्ट! जिस-जिस नाम-रूप में तुम हो और जो-जो तुम्हें उसी प्रकार इश्क करता है, जैसे मैं करता हूँ तो वह भी मेरा नाम-रूप ही है:—

''आप ही मोरे नयनवा पलक ढाँप तोहे लूँ,
ना मैं देखूँ और को, ना तोहे देखन दूँ।''

मेरे नयनों में समा जाओ, मैं किसी को देखना नहीं चाहती तुम्हारे अलावा और मैं नहीं चाहती तुम मेरे अलावा किसी को देखो। अगर मेरी आँखें खुल जायें और मैं किसी को देख लूँ तो वो तू हो या मैं होऊँ। यही उपासक की मोक्ष की स्थिति है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(16 दिसम्बर, 2001)

चिदाभास

आज इष्ट-कृपा से आप सबके सम्मुख एक विचित्र विषय जिसका सम्बन्ध हमारे सम्पूर्ण जीवन से है, रखूँगा। विषय है–**चिदाभास।** जैसाकि मैं अपने प्रवचन के प्रारम्भ में अक्सर ईश्वर की परिभाषा को, जो हमारे शास्त्रों ने दी है, रखता हूँ, आज भी रखूँगा। **जो सच्चिदानंद है, वो ईश्वर है।** सत्, चेतन एवं आनन्द का अविरल एवं अकाट्य संगम है–**'ईश्वर'।** जो छः विशिष्ट गुणों से विभूषित है–अति सौन्दर्यवान, अति बलवान, ज्ञानवान, ख्यातिवान, ऐश्वर्यवान एवं त्यागवान–उसका नाम है **ईश्वर**। जो हर्ष, उल्लास, अभय, आरोग्यता, सर्वसम्पन्नता, शक्ति, भक्ति, मस्ती, साहस, उत्साह, कृपा एवं आनन्द का सागर है, वही है **'ईश्वर'।** जो धर्मातीत, कर्मातीत, कर्त्तव्यातीत, सम्बन्धातीत, मायातीत, देशातीत एवं लिंगातीत है, वही है **'ईश्वर'।** ऐसे परमानंद परमात्मा ने स्वयं इस सृष्टि का सृजन किया है, वह ही पालन करता है और वह ही इसका संहार भी करता है।

ऐसे सच्चिदानंद ईश्वर की सर्वोत्कृष्ट एवं भव्यतम संरचना जो इस पृथ्वी पर है, वह है **'मानव-देह'।** यदि हम मानव-देह का विश्लेषण चिकित्सा-वैज्ञानिक, एवं आध्यात्मिक रूप से करें तो ऐसा लगता है मानो ईश्वर स्वयं मानव के रूप में पृथ्वी पर उतरा हो। **पृथ्वी, जल, वायु, आकाश एवं अग्नि** इन पाँच निराकार महाभूतों से ईश्वर ने परम साकार मानव-देह का निर्माण जिस कुशलता से किया है, वह अपने में अद्वितीय है। यदि मानव-देह का विश्लेषण करें तो सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड में जितने भी तत्त्व हैं, वे सारे एक मानव-देह में पाये जाते हैं। फिर भी सर्वाधिक दुःखी, भयभीत,

त्रसित, विक्षिप्त, मलिन, तनावित, रोगों से ग्रसित एवं जन्म-मृत्यु के दो छोरों में बँधा व फँसा हुआ, मानव ही है। ऐसा क्यों है, क्या कहीं ईश्वर से भूल हुई है या मानव से? इसका विश्लेषण आज आपके सम्मुख विभिन्न आयामों से करेंगे।

पंच-महाभूतों से निर्मित इस चमत्कारी मानव-देह में ईश्वर ने बहुत चमत्कारिक **'बुद्धि',** का समावेश किया है और मानव को इतने अधिकार दिये हैं जो इस धरा पर किसी अन्य जीव-जन्तु को नहीं दिये। जो अधिकार देवी-देवताओं के पास भी नहीं हैं, वे मानव के पास हैं। फिर भी मानव दुःखी क्यों है? मैं सबकी बहुत गहन एकाग्रता चाहूँगा। पंच-महाभूतों से निर्मित यह मानव-देह, स्वयं ईश्वर ने अपने स्वरूप में पृथ्वी पर विशिष्ट बुद्धि देकर भेजी, जिसके तीन कार्य थे। **पहला**–''ऐ मानव तहे-दिल से, तहे-मन से, तहे-रूह से, यह विचार कर, सोच एवं चिंतन कर कि तेरे हाथ में कुछ नहीं है। तेरा जन्म, मरण, एक-एक श्वास, एक-एक पल एवं तेरा एक-एक क्षण मेरे हाथ में है। मैं जिस समय जो भी चाहूँ कर सकता हूँ। सर्वाधिकार मैंने अपने हाथ में रखा हुआ है। ऐ मानव! जो मैं चाहूँगा वह मैं तेरे द्वारा करवाऊँगा, जब मैं चाहूँगा। मैंने तुझे हाथ-पैर दिये हैं, सब कुछ दिया है, उनका मैं प्रयोग करूँगा, क्योंकि इस परमोत्कृष्ट रचना को मैंने बनाया है। अतः जब तक तुम मेरे चरणों में न आ जाओ श्रद्धा से, निष्ठा से, विश्वास से, तब तक तुम इसका प्रयोग नहीं जान सकते। जब मैं खेलूँगा इस देह द्वारा तो मेरे खेल के, मेरे कृत्यों के दो परिणाम होते हैं। एक तो मेरे द्वारा किये **कृत्य स्वतःभाव** से होंगे। **दूसरे,** ''मेरे द्वारा कराये गये कृत्य तीन आनन्दों से युक्त होंगे, क्योंकि मैं **सच्चिदानंद** हूँ। कार्य के **पहले आनन्द** होगा, **कार्य के दौरान** आनन्द होगा और **कार्य की समाप्ति** पर भी आनन्द होगा। यदि तीनों आनन्दों में से एक भी आनन्द कम हो गया है, तो वह कार्य मेरे द्वारा किया गया नहीं हो सकता। वह कार्य तुम्हारे द्वारा किया गया होगा। **तीसरा,** ''ऐ मानव! तेरी बुद्धि का काम यह था कि यथाशक्ति मेरे चमत्कारिक कृत्यों की सराहना कर। वाह-वाह कर!'' यह बुद्धि के तीन

कार्य थे और बुद्धि मात्र ईश्वर के अपने इस्तेमाल के लिए थी। लेकिन मानव पृथ्वी पर आते ही, जैसे ही बुद्धि का तथाकथित विकास हुआ, अपने आपको बहुत व्यस्त घोषित करने लगा, कि मुझे भविष्य बनाना है। अपने ऊपर कर्त्तव्य थोप लिये और वो सब कुछ करने लगा जो वह चाहता था। किसी से पूछिये आप क्या चाहते हैं? कि मैं आनन्दमय कार लेना चाहता हूँ, कि आनन्दमय गृह चाहता हूँ, आनन्दमय परिवार चाहता हूँ, मेरे वस्त्र आनन्दमय हों, मेरा धर्म आनन्दमय हो, मेरे कर्म आनन्दमय हों व मेरा पद आनन्दमय हो। मैं जीना आनन्दमय चाहता हूँ। उस चाहत में मानव ने भाग-दौड़ शुरू कर दी, अपनी इच्छा से। वस्तुएँ एकत्रित करनी शुरू कीं। सुख-साधन एकत्रित करने शुरू किये लेकिन आनन्द को जिसके साथ वो जीना चाहता था, भूल गया, यहाँ त्रुटि हो गई।

अब यह रहस्योद्‌घाटन सुनिये। ईश्वर ने बड़े कलात्मक ढंग द्वारा पाँच-महाभूतों से यह देह निर्मित करने के पश्चात उन पाँच-महाभूतों के प्रहरी, देह में रख दिये। वे पाँच क्या थे? **आँख, नाक, कान, जीभ और त्वचा**। यह देखने के लिए कि क्या यह वही कार्य कर रहा है जिसके लिए मैंने इसे भेजा है? अगर नहीं कर रहा है तो इसको सज़ा दो! **अग्नि** की प्रतिनिधि आँखें (तेज), **जल** की प्रतिनिधि जीभ (**रस**) **वायु** का प्रतिनिधित्व करती है त्वचा (स्पर्श), **आकाश** का प्रतिनिधित्व करते हैं कर्ण (नाद) और **पृथ्वी** का प्रतिनिधित्व करती है आपकी नाक, (गंध)। ऐ ज्ञानेन्द्रियों! मैंने मानव को पंच-महाभूतों से बनाया है तथा इसको बुद्धि दी है और मेरे निराकार मन से यह रचना हुई है। यदि यह मेरी ओर नहीं मुड़ता है और मेरे आदेशों से कार्य नहीं करता है तो इसको सज़ा दो। कि इसको भगाओ, इसको भगाओ, तड़पाओ इसको।

विचार करना बहुत नई बात कर रहा हूँ कि जितनी भी हमारी समस्त दौड़ है, इन पाँच ज्ञानेन्द्रियों को संतुष्ट करने के लिये है। मुझे बहुत बड़ा व सुन्दर घर चाहिये, उसमें सुन्दर चित्र हों, सुन्दर शयनकक्ष हो जबकि सोने के बाद कुछ पता ही नहीं चलता कि आप शयनकक्ष में लेटे हैं या शमशान

घाट पर। संगीत अति मधुर चाहिये, काहे के लिए? कानों के लिए। गहने चाहिये, मोहक वस्त्र चाहिये और जो कुछ चाहिये पाँच ज्ञानेन्द्रियों के लिए चाहिये। तो यह भगाती हैं इसको, कि भाग! ज्ञानेन्द्रियों का क्या कार्य है कि यह इसको सुख देती हैं और सुख लेने के लिए सुख-सुविधायें चाहियें और उन सुख-सुविधाओं की तरफ मानव पागलों की तरह भागने लगा। पहली बात तो वह सुख-सुविधायें मिलती नहीं हैं। यदि भाग-भाग कर भाग्यवश मिल भी जाती हैं तो उनका यह भोग नहीं कर सकता। यदि भोग भी कर ले तो आनन्दपूर्वक भोग नहीं कर सकता। निराश हो जाता है। और चाहिये, और चाहिये में एक दिन इसी प्रकार इसका जीवन समाप्त हो जाता है। आसक्तियाँ छोड़कर मरता है और फिर पैदा होता है, फिर मरता है, फिर पैदा होता है। क्यों? क्योंकि इसकी दौड़ एक तरफ की ही हो जाती है। मानव यह भूल जाता है कि इन्द्रियों के पास अपना सुख नहीं है। वे इसके आनन्दस्वरूप से सुख लेती हैं।

आपने गाँवों में गड्ढे देखे होंगे और गड्ढों में भर जाता है पानी। उस पर सूर्य की किरणें पड़ती हैं तो उनकी दीवार पर झिलमिलाहट होती है। आप कभी पीपल के पेड़ या अन्य पेड़ों को देखिये। जब सूर्य की किरणें पड़ती हैं, तो पत्ते झिलमिलाते हैं, शास्त्र ने इसे कहा है **'चिदाभास'।** क्या कहा है? **चिदाभास।** वह जो झिलमिलाहट है वह मात्र सूर्य का आभास है, वह सूर्य नहीं है। उस झिलमिलाहट को देख कर कोई कह सकता है कि सूर्य भगवान निकले होंगे। इसी प्रकार **इन्द्रियों का सुख आपके आनन्द-स्वरूप का चिदाभास है।** अगर किसी कारण सूर्य के आगे बादल आ जायें तो वह झिलमिलाहट बंद हो जायेगी। जब कोई मानव होश संभालते ही सुख-सुविधाओं की वस्तुओं की तरफ भागने लगता है तो उसके आनन्द-स्वरूप के आगे बादल आ जाते हैं। यह दिव्य अधिनियम बता रहा हूँ, कि **जब मानव बिना सोचे-समझे अपनी बुद्धि का दुरुपयोग करता हुआ होश संभालते ही सुख-सुविधाओं की वस्तुओं को एकत्रित करने के लिये बाह्य जगत में भागना शुरू करता है तो उसका भीतरी**

आनन्दस्वरूप आच्छादित हो जाता है, ढक जाता है। फलस्वरूप इन्द्रियों का सुख भी, विलुप्त हो जाता है। ईश्वर इसके जीवन के समय के भोग का हक भी छीन लेते हैं कि अपने समय को भी यह स्वयं इस्तेमाल न कर सके। किसी से पूछिये कि आप जल्दी-जल्दी क्यों खा रहे हैं? कि समय नहीं है। खाने का समय नहीं है। अपने बीबी-बच्चों के पास बैठने का समय नहीं है। क्या आप ईश्वर के ध्यान में बैठते हैं? कि समय नहीं मिलता। सुबह छः बजे उठ जाते हैं, रात ग्यारह बजे लौटते हैं और फिर दारू पीकर सो जाते हैं। उनसे भोग का समय छिन जाता है। दिव्य-कानून के अन्तर्गत यह पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ ईश्वर ने प्रहरी के रूप में रखी हैं, जो पाँचों-महाभूतों का प्रतिनिधित्व करती हैं।

ईश्वर ने ऐसे कलात्मक ढंग से देह बनाई है कि यदि मानव ईश्वर-चिंतन नहीं करता है, तो ऐ पाँच ज्ञानेन्द्रियों इसको भगाओ! इससे समय के सदुपयोग का अधिकार छीन लो ताकि ये मेरे पास बैठ ही न सके। शास्त्र ने उसकी तुलना की है पागल कुत्ते से। जब कुत्ता पागल हो जाता है तो वह नाक की सीध में ही दौड़ता है, मुड़ता नहीं है वह! इसी प्रकार मायिक मानव जिसको धन की और वस्तुओं की लालसा हो जाती है तो वो भी नाक की सीध में ही दौड़ता है। न उसका कोई परिवार होता है, न उसका कोई मित्र। वो सारा दिन घड़ी देखता रहता है। उसकी सारी सोच व समय मात्र धन कमाने तक ही सीमित रहती है। पागल कुत्ता किससे डरता है? पानी से! तो ऐसा मानव संत से और सत्संग से डरता है। कहता है कि ये तो खाली हैं, हमें भी बेकार कर देंगे। ऐसे मायिक मानव व्यस्त रहते हैं, न केवल निरर्थक बल्कि उनकी व्यस्तता नकारात्मक होती है। जो कुछ वे भाग-दौड़ कर एकत्रित करते हैं, उसको यहाँ छोड़कर इसी प्रकार दौड़ते-दौड़ते मर जाते हैं, फिर दौड़ते-दौड़ते ही पैदा होते हैं।

अब थोड़ी सी इलैक्ट्रोनिक विधि, जो प्रभु ने मानव-देह में स्थापित की है, उस पर एकाग्र करिये। आप सब लोगों के पास आजकल मोबाइल है, तो उसमें एक चिप होती है और उसमें आपका नम्बर होता है। जब आप किसी

को फोन करते हैं तो यह सैटेलाइट के द्वारा जाता है। **तो वो सैटेलाइट है ईश्वरीय मन ! और मोबाइल की चिप है मानव-मन। जो आपको एक अलग मानव घोषित करती है और ईश्वरीय मन सबके लिए है।** मोबाइल-चिप के कारण बिल आपको आयेगा। सैटेलाइट को कोई बिल नहीं आता।मानव-मन में भी जो शक्ति काम करती है, वो इलैक्ट्रोनिक तरंगें हैं आपकी **प्राण-शक्ति। पंच-प्राणों से** यह देह कार्य करती है। सारा महाब्रह्माण्ड पाँच-प्राणों से कार्यान्वित होता है। **जब हम हवन करते हैं तो उसमें पाँच-प्राणों की आहूतियाँ डालते हैं। ऊँ प्राणाय स्वाहा! ऊँ उदानाय स्वाहा ! ऊँ व्यानाय स्वाहा ! ऊँ समानाय स्वाहा ! ऊँ अपानाय स्वाहा !** तो ये पाँच-प्राण इलैक्ट्रोनिक तरंगे हैं जिनके द्वारा आपका मन ईश्वरीय मन से जुड़ा रहता है। ये तरंगें हमें नज़र नहीं आतीं लेकिन ये हैं। इन पाँचों ज्ञानेन्द्रियों के साथ पाँचों-प्राणों का अभिन्न सम्बन्ध रहता है। जब प्राण पखेरू उड़ जाते हैं तो मृतक काया को कोई ज्ञान नहीं होता न स्वाद का, न गंध का। इन्द्रियाँ हैं लेकिन वे ज्ञान नहीं कर सकतीं, क्यों? क्योंकि, वहाँ प्राण पखेरू उड़ गये, प्राण-गतियाँ रुक गईं।

जब लोभवश, कामवश, क्रोधवश, मोहवश, अहंकारवश, ईर्ष्यावश, वैमनस्यवश, वैरवश और घृणावश, आप संसार की ओर भागते हैं तो आपकी प्राण-शक्ति का बहाव कम हो जाता है। इसलिए जब वस्तुएँ आपको प्राप्त होती हैं तो आपमें उनको भोगने की क्षमता ही नहीं रहती। हम नदियों के बहाव को रोक कर बाँध बनाते हैं। आप मुझ से सहमत होंगे, कि नदियों में जितना जल बहता रहता था उसे रोक कर मानव मस्तिष्क ने बिजली पैदा की। इसी प्रकार असंख्य गुणा प्राण, प्राण-गतियाँ हमारी इन्द्रियों की तरफ चलती रहती हैं। पशु-पक्षियों में भी चलती हैं लेकिन जो उत्कृष्ट मानव होते हैं वे वहाँ बाँध बना लेते हैं, काहे के लिए? प्राण-शक्ति को एकत्रित करने के लिए। योगी प्राणायाम करता है व साधक साधना द्वारा इन पाँचों ज्ञानेन्द्रियों को नियंत्रित करता है। विषय बहुत रूखा-सूखा सा है, इसमें आपकी बहुत एकाग्रता चाहूँगा।

आनन्द और सुख के बीच में कड़ी है—**पाँचों-प्राण।** नाक, जीभ, आँखें, कान या त्वचा कोई इन्द्रिय ले लीजिये; तो उसमें सुख को प्रकट करने के लिए क्या चाहिये? **आनन्द !** यदि आपका आनन्द ढक गया है या आपकी प्राण-गति समाप्त हो गई है तो आपकी इन्द्रियाँ आपको सुख नहीं दे सकतीं। भोजन कितना भी स्वादिष्ट हमारे सामने पड़ा हो, हमारी जीभ भी स्वस्थ हो, लेकिन किसी कारणवश, कोई तनाव हो जाये या भय हो जाये, तो हमें खाने की इच्छा नहीं होगी। इसी प्रकार हमें संगीत सुनने की एवं आँखों से सुन्दर दृश्य देखने की इच्छा नहीं होगी। हम स्वस्थ इन्द्रियों के और सुख-सुविधाओं के होते हुए भी उनको भोग नहीं पाते, क्योंकि इन्द्रियों के पास अपना सुख नहीं है। इन्द्रियाँ सुख लेती हैं आपके आनन्द-स्वरूप से ! तो पाँचों प्राण प्रत्येक इन्द्रिय के साथ जुड़े रहते हैं।

अब आप पुरुषार्थ की ओर आइये ! यदि किसी उत्कृष्टतम मानव का कोई कर्त्तव्य या कर्म है इस पृथ्वी पर, तो वह है **पुरुषार्थ।** पुरुषार्थ का यदि हम सन्धिविच्छेद करें तो **पुरुष + अर्थ।** अर्थात् मेरी चेतन सत्ता का अर्थ क्या है, मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, मुझे कहाँ जाना है, यदि मैं पृथ्वी पर आया हूँ तो क्यों आया हूँ, यदि मैं लाया गया हूँ तो क्यों लाया गया हूँ? इसको जानने के लिए हमारे मनीषियों ने दो आयाम रखे **'साधना और उपासना'।**

साधकों ने इन इन्द्रियों का या तो दमन किया या निग्रह किया। आज आपको स्पष्ट हो जाना चाहिये कि इन्द्रियों का दमन या निग्रह करने की आवश्यकता क्यों पड़ी? क्योंकि वहाँ पर नदिया के बहते जल की तरह ये प्राण-शक्तियाँ नष्ट होती जा रही थीं। कुत्ते-बिल्लियों में भी होती हैं। यदि आप भी सुख के पीछे भाग रहे हैं तो आपमें और उनमें कोई अंतर नहीं है। उस विवेक-बुद्धि मानव ने वहाँ पर बाँध बना दिया। **सुख भोगते-भोगते सुख को क्षण भर के लिए बीच में छोड़ दिया।** उदाहरण के लिए आप कोई स्वादिष्ट मिठाई खा रहे हैं, आपकी इच्छा होती है कि और खायें लेकिन खाते-खाते यदि आप बीच में ही विराम लगा देंगे, तो आपकी प्राण-शक्ति का

जो बहाव हो रहा है आपके आनन्द-स्वरूप से, वह वहीं पर रुक जायेगा। वहाँ एक झील बन जायेगी, एक दरिया बन जायेगा और उसी प्राण-शक्ति को विपरीत बहा करके जाप, तप, ध्यान, यज्ञ एवं हवन इत्यादि के द्वारा कोई सत्संगी, कोई योगी या किसी सद्गुरु का सद्शिष्य अपने आनन्द-स्वरूप के दिग्दर्शन में प्रयोग करता है। भक्ति के लिए भी प्राण-शक्ति चाहिये और वो प्राण-शक्ति योगी कहाँ से लेता है? अपनी इन्द्रियों के निग्रह से! यह आध्यात्मिक विज्ञान है जिससे आज का विज्ञान निकला है। आज बड़े-बड़े बाँध बनते हैं इसी तकनीक से। योगियों ने इस प्राण-शक्ति को एकत्रित करके अपने स्वरूप के दिग्दर्शन में इसको प्रयोग किया। तो योगी अपनी इन्द्रियों का निग्रह करता है। मैं इन्द्रिय-दमन में विश्वास नहीं करता, क्योंकि हम सभी गृहस्थी हैं। हमको सब प्रकार के सुख भी चाहियें, सुख-सुविधायें भी चाहियें, लेकिन उसके साथ एक तथ्य नहीं भूलना, वो यह कि **सुख मात्र चिदाभास है।**

सुख हमारे आनन्द का **चिदाभास** है, झिलमिलाहट है। यदि हमारा आनन्द-स्वरूप ढक गया, यदि हमारी प्राण-शक्ति कम हो गई तो हमारी इन्द्रियाँ हमको सुख नहीं दे सकतीं हम विक्षिप्त हो जाते हैं, कि मैं इतना धन कमा चुका हूँ, इतना सुन्दर बंगला है मेरे पास, इतनी गाड़ियाँ हैं। सब कुछ है मेरे पास लेकिन मेरे पास खुशी क्यों नहीं है?

''यूं तो तेरे बग़ैर मुझे कुछ कमी नहीं,
यह और बात है कि मयस्सर खुशी नहीं!''

मैं सब कुछ एकत्रित कर चुका हूँ लेकिन अंदर मेरा आनन्द क्यों नहीं है? क्योंकि हम वहाँ यह भूल जाते हैं कि यह सुख हमारे भीतर के आनन्द-स्वरूप का मात्र चिदाभास है, इसकी झिलमिलाहट है। तो ईश्वर ने ये पाँच ज्ञानेन्द्रियों रूपी प्रहरी रख दिये कि अगर ये मेरे विमुख होता है तो इसे भगाओ और भगा-भगा कर मार डालो। सभी भाग रहे हैं और व्यस्त हैं परन्तु सावधान रहिये। जितनी देर आप धन कमाने के लिए किये जा रहे कृत्यों में लगाते हैं, उतनी देर ईश्वर के ध्यान में अवश्य बैठिये, नहीं तो आप

भी भगोड़ों में आ जायेंगे। हम अपना अनुभव बता रहे हैं, जो अकाट्य सत्य है। जो लोग जगह-जगह ऑफिस खोल रहे हैं, नर्सिंग-होम खोल रहे हैं तो समझिये सब भगोड़े हैं, भाग रहे हैं। सब जन्म-जन्मांतरों में ऐसे ही भागेंगे। रात को दारू पीकर सोते हैं, क्योंकि नींद नहीं आती। सोने के लिए नींद की गोली खानी पड़ती है। वातानुकूलित कमरा है, आरामदायक बिस्तर है, लेकिन नींद नहीं आती।

अब देखिये इन पाँचों ज्ञानेन्द्रियों का दूसरा कार्य–जब आप ईश्वर के सम्मुख होना चाहते हैं, उसके ध्यान में जाना चाहते हैं, अपने आनन्द-स्वरूप का जब दिग्दर्शन करना चाहते हैं व उसका सान्निध्य चाहते हैं, साधना द्वारा और उपासना द्वारा तो पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ शान्त हो जाती हैं। ये पाँचों ज्ञानेन्द्रियाँ स्वतः शान्त हो जाती हैं। आप जब ध्यान में जाते हैं तो आँखें बंद कर लेते हैं, कान बंद कर देते हैं व खाना-पीना भूल जाते हैं व किसी को स्पर्श करना भूल जाते हैं। यदि ये शान्त नहीं होतीं तो समझिये आपका ध्यान नहीं लगेगा। भोग करिये लेकिन भोग करने से पहले यह ज़रूर विचार करिये कि आपका भोग, आपकी इन्द्रियों का सुख, आपके आनन्द-स्वरूप का **चिदाभास है।**

चिदाभास–चेतन का आभास है। जिस प्रकार पत्तों की झिलमिलाहट, सूर्य का प्रतिबिम्ब है, वह सूर्य नहीं है। आपके जितने भी इन्द्रियों के सुख हैं वे आपके आनन्द का मात्र प्रतिबिम्ब हैं। यदि उस आनन्द-स्वरूप की आपको कभी अनुभूति हो जाये तो वह आनन्द अनिर्वचनीय होता है:–

''क्या बताऊँ मैं, तेरे मिलने से क्या मिला?
मुद्दत मिली, मुराद मिली, मुद्दा मिला,
सब कुछ मुझे मिला जो तेरा नक्शे-पाँ मिला।''

उस एक झलक को पाने के बाद मानव झल्ला हो जाता है। क्योंकि वह इतनी खूबसूरत झलक है, जिसको कोई सहन नहीं कर सकता। जिस पर उसकी विशेष कृपा हो जाये उसी को यह झलक मिलती है। आपमें जिज्ञासा चाहिये व सत्संग चाहिये। सत्य क्या है? अरे! मैंने इतना धन

इकट्ठा कर लिया, मैं सुखी क्यों नहीं हूँ? कई बार लोग हमारे पास आकर अपनी निर्धनता के दिन याद करके रोते हैं कि हम बहुत सुखी थे। हम सब भाई इकट्ठे रहा करते थे। हम अपने माँ-बाप के पास रहते थे, अब हम बँट गये हैं। आपका धन आपको बाँट देता है। उस वक्त अतीत के दिन याद आते हैं आप लोगों को। ये भव्य बंगले, ये सुन्दर कारें, ये सब कुछ बड़ा लुभावना है, मगर यह याद रखना कि इसके साथ आपके आनन्द-स्वरूप का सम्पर्क होना अति आवश्यक है।

यह जो आपका मानव-मन है, यदि यह ईश्वरीय-मन के सम्पर्क में नहीं होगा, तो आपकी बुद्धि हमेशा गलत निर्णय लेगी। आप कितने भी तेज बुद्धि के हों, बहुत जुगाड़ लगा सकते हैं आप। धन कमा सकते हैं आप। किसी की जेब काट सकते हैं बड़े आराम से बातों-बातों में, लेकिन वह निर्णय गलत होगा। हम सब व्यक्तियों के लिए कह रहे हैं कि सुबह उठते ही, सूर्य उदय होने से पहले बिस्तर छोड़ने के बाद, शुद्ध होकर आप प्रथम कार्य आधा घंटा, एक घंटा, डेढ़ घंटा अपने देव-दरबार में अवश्य बैठिये; नहीं तो दिन भर आप गलत निर्णय लेंगे। आपको प्राप्ति हो जायेगी लेकिन उन प्राप्तियों का भोग आपको नहीं मिलेगा, क्योंकि उन प्राप्तियों के भोग से पहले आपको अपने इष्ट से सम्पर्क करना अति आवश्यक है। वस्तुएँ ले लेंगे आप, गाड़ियाँ ले लेंगे, मकान ले लेंगे, रिश्वत खा लेंगे, बहुत कुछ करेंगे आप, लेकिन वह धन आपके लिए घातक हो जायेगा। आपको खा जायेगा, आपके भोग आपको भोग जायेंगे। आपने कोई धन-सम्पदा ली, क्या आपको उसे आनन्दपूर्वक भोगने की सुनिश्चितता है, नहीं है। कोई-कोई धन-सम्पदा आपके लिए सिरदर्द बन जाती है, आपकी हृदय-गति रुक जाने का कारण बन जाती है, क्यों? क्योंकि एक दिव्य कानून है, पहले भी बता चुका हूँ, आज भी बताता हूँ।

आपको कोई वस्तु प्राप्त करने के बाद एक याचिका उस ईश्वर के कोर्ट में देनी होगी। अपने इष्ट के सामने प्रार्थना करनी पड़ेगी कि, "हे प्रभु! हे सच्चिदानंद! हे कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों के मालिक! यह जो वस्तु तुमने

अति कृपा से मुझे दी है, यह तुम्हारी है, मेरी नहीं है, तो कृपा करके इसको भोगने का अधिकार मुझे दो ! **किसी वस्तु के भोग के लिए उस वस्तु पर आपको अधिकार चाहिये।** आपके पास धन होगा, आपके पास संतान होगी, आपके पास धन-सम्पदा होगी व आपका पद बड़ा हो सकता है। जब तक उन पर अधिकार नहीं होगा, तब तक आप उन्हें भोग नहीं सकते। वो अधिकार कहाँ से मिलेगा? उस ईश्वर की कोर्ट से और तब मिलेगा जब उस पर प्राप्ति का अधिकार आप छोड़ देंगे, कि हे प्रभु ! यह मेरा कुछ नहीं है, मैं तेरे चरणों में अर्पित करता हूँ, क्योंकि गंगा की पूजा गंगा जल से ही हो सकती है। प्रभु ! तेरी कृपा से, तेरी इच्छा से मैं तेरे चरणों में अर्पित करता हूँ। इसलिये हे महाप्रभु ! मुझे भोगने का अधिकार दे दो ! यदि वो चाहेगा, उसकी कृपा होगी तो आप उसको भोग सकेंगे। ध्यान रखिये ! आप अपनी देह का भी भोग नहीं कर सकते, क्योंकि यह आपकी नहीं है। जब हम होश संभालते हैं तो हमारा एक नाम रख दिया जाता है और पहली त्रुटि हम करते हैं कि, **मैं यह देह हूँ**। इसको कहा है शास्त्र ने **'देहाध्यास'** ! और उससे छोटी गलती हुई कि, **''यह देह मेरी है''** इसको कहा है **'देहाधिपत्य**'।

यदि पूछा जाय आप पैदा अपनी इच्छा से हुए थे? नहीं ! मरेंगे कब, पता नहीं ! कहाँ मरेंगे, पता नहीं ! अमुक स्त्री से शादी क्यों हुई, पता नहीं ! आप इस व्यापार में क्यों हैं, कि मालूम नहीं ! तो आपकी देह कैसे हुई यह? यह देह आपकी नहीं है। **आपके लिए है।** ईश्वर ने यह चमत्कारिक देह आपको क्यों दी है? इसके लिए आपको ईश्वर से ही पूछना पड़ेगा। किसी ज्योतिषी को, किसी तंत्र-मंत्र वाले को नहीं पूछना। यह बहुत चमत्कारिक देह है। अरे ! हम चिकित्सक इसका एक बाल नहीं बना सकते, इसका एक नाखून नहीं बना सकते। क्या हो रहा है इसके अंदर? हम कुछ नहीं जानते ! आपकी देह का सर्वाधिकार उस ईश्वर के पास है। यह आपकी नहीं है। आप समझ लीजिये। अपने घर में एक मन्दिर या एक ऐसा स्थान अवश्य बनाकर रखिये, जहाँ पर आपके इष्ट की स्थापना हो। जिस घर में

ईश्वर की स्थापना नहीं है, उसका स्थान नहीं है, वह घर प्राणरहित है। जैसे मानव-देह से हृदय निकाल दिया जाये, उसी प्रकार वह घर जितना भी आलीशान हो, वह आपको धक्के मारेगा, घर में बैठने की इच्छा नहीं होगी। बड़े-बड़े सुन्दर मकान लोग बना लेते हैं लेकिन घर में बैठने की इच्छा नहीं होती। पति-पत्नी दोनों बाहर ही भागे रहते हैं। न उनके पास कोई आना पसन्द करता है। दो घन्टे के लिए आयेगा कोई पन्द्रह मिनट में उठकर भाग जायेगा।

अपने घर का पूजन करिये। उसमें एक देव-स्थान बनाइये और सुबह कारोबार पर जाने से पहले, ऑफिस जाने से पहले आप वहाँ पर नतमस्तक होइये कि, प्रभु यह मेरी देह नहीं है। यह मुझे आपने दी है। क्यों दी है? मैं नहीं जानता ! यह प्रार्थनायें करनी बहुत ज़रूरी हैं। हनुमान चालीसा पढ़िये, न पढ़िये ! पाठ करिये न करिये ! लेकिन आप अपनी भाषा में ज़रूर पूछिये, कि, प्रभु ! आपने **यह चमत्कारिक देह मुझे क्यों दी है**? इसका प्रयोग मैं नहीं जानता, आप मुझे बताइये ! यदि आप हृदय से पूछेंगे तो आपको इसका उत्तर अवश्य मिलेगा। यदि आप प्रभु की इच्छाओं के अनुसार काम करेंगे तो वे कार्य **स्वतःभाव से होंगे और वे तीन आनन्दों से युक्त होंगे।** जितनी भी सांसारिक वस्तुएँ हैं, वे मानव ने इसलिए बनाई हैं क्योंकि उनका एक सदुपयोग है, तो क्या इतनी चमत्कारिक मानव-देह ईश्वर ने निरर्थक ही बनाई होगी? इसके पीछे उसका कोई अर्थ है। आप मानव हैं तो आपको ईश्वर के दरबार में बैठकर यह पूछना आवश्यक है। यदि उसका उत्तर न मिले तो आप क्या करें? तब आप जो भी करें उसको ईश्वर के निमित्त अवश्य कर दें। **हे प्रभु ! इच्छा, इच्छुक, इच्छापूरक और इच्छाफल आप हैं।** मुझे आनन्द में जीने दीजिये। आपको नींद अच्छी आयेगी, दारू पीने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। यह दिव्य कानून है। इसका आज से अनुसरण करना शुरू कर दीजिये, वरना इन पाँच-ज्ञानेन्द्रियों द्वारा आप भगोड़े बना दिये जायेंगे। यह इकट्ठा करो, वह इकट्ठा करो। पड़ोस के घर में यह है तो मेरे घर में क्यों नहीं है। विवाह-शादी में लोग कितना खर्च करते हैं और

बाद में ऋणी हो जाते हैं। व्यावहारिक बातें कर रहा हूँ, क्योंकि मैं भी गृहस्थी हूँ।

ईश्वर ने आपको देह क्यों दी? अगर आप यह जाने बिना मर जाते हैं तो आपने अपना सारा जन्म निरर्थक गवां दिया। निरर्थक हो जाये तो भी कोई बात नहीं है, लेकिन जब नकारात्मक बिताते हैं तो उसको आपकी संतानें भुगतती हैं। जो कुछ भी आप कर रहे हैं, वो आपको सब प्रकार से ईश्वर को समर्पित करना पड़ेगा। कभी भी विक्षिप्त मन से कोई निर्णय मत लीजिये और हो सके तो निर्णय सुबह देव-दरबार में बैठकर लीजिये। रात को कई प्रकार के मानसिक विकार होते हैं। शान्त हृदय से निर्णय लीजिये। चाहे आपने किसी बच्चे को स्कूल में प्रवेश दिलाना है, चाहे किसी लड़के-लड़की की शादी करनी है, चाहे धन-सम्पदा खरीदनी है, कोई व्यापार शुरू करना है, अथवा बन्द करना है, चाहे चुनाव लड़ना है, तो आप उसका निर्णय देव-दरबार में करें और हो सके तो सपत्नीक करिये। वह निर्णय आपके लिए हितकारी होगा। कामवश, क्रोधवश, लोभवश, अहंकारवश, वैर-वैमनस्यवश जब आप कोई निर्णय लेंगे तो आपको उसका लाभ हो सकता है, परन्तु हित नहीं होगा। आप किसी की धन-सम्पदा मार सकते हैं। आप हेरा-फेरी करके व लोगों को शराब की बोतलें बाँटकर, चुनाव भी जीत सकते हैं। आप रिश्वत खिलाकर बड़ा पद भी ले सकते हैं, धन देकर बढ़िया व अच्छे स्कूलों में अपने बच्चों को प्रवेश भी दिला सकते हैं लेकिन उसका अन्तिम परिणाम बहुत भयंकर हो जायेगा। आपका धन आपके लिए सिरदर्दी बन जायेगा। आपकी संतान आपके लिए सिरदर्द बन जायेगी, इसलिए इस चकाचौंध से सावधान। **आपकी देह आपकी नहीं है, आपके लिए है और क्यों है**? उसके लिए आपको अपने परम पिता परमात्मा ईश्वर के ध्यान में बैठना होगा। जल्दबाज़ी क्यों करते हैं? कि मेरे पास ध्यान में बैठने का समय नहीं है तो ईश्वर क्या करेंगे? आपके समय के प्रयोग का अधिकार छीन लेंगे। बहुत कम लोग हैं जिनको अपने जीवन के समय पर अधिकार है। जीवन उनका है, समय उनका है, लेकिन उसका

भोग कोई और कर रहा है। धन कोई कमा रहा है, खा कोई और रहा है, सम्पदा किसी की है और उसका भोग कोई और कर रहा है। पद किसी का है और उसका अधिकार कोई और भोग रहा है। क्यों? क्योंकि हम उसको ईश्वर-समर्पित नहीं करते। अतः ईश्वर-समर्पित करते जाइये।

जब भी आप कोई कार्य करें तो साथ में ईश्वर का जाप करते जायें। मैंने जाप के पाँच प्रवचनों में इस पर जोर दिया था। बिना ईश्वर के नाम-जाप के कोई काम करेंगे तो पहले तो उस वस्तु की प्राप्ति की ही गारन्टी नहीं है कि वो प्राप्ति हो, न हो। यदि प्राप्ति होगी भी तो आप उसका भोग नहीं कर पायेंगे और यदि आप उसका भोग भी कर लेंगे तो आपको उसका आनन्द नहीं आयेगा, क्यों? क्योंकि आपको अपने आनन्द-स्वरूप के पास बैठने का समय नहीं है। ईश्वर आपको दूसरों के लिए व्यस्त कर देगा। पढ़ाइयाँ, लिखाइयाँ सब दूसरों के लिए। आपके समय का एक-एक क्षण दूसरों के लिए होता है और आपकी स्थिति दौड़ में लगे घोड़े की तरह होती है। आपकी प्रतिभाओं को कोई और इस्तेमाल करेगा। यह दिव्य अधिनियम है। अपने जीवन के समय को और अपनी समस्त उपलब्धियों एवं प्राप्तियों को आनन्दपूर्वक भोगने के लिए आपको उन्हें ईश्वर-समर्पित करना आवश्यक है और अपने आनन्द-स्वरूप के मुखातिब होना या **मुखातिब सा होना** भी बहुत आवश्यक है। उसके लिए एक छोटी सी कहानी सुनाता हूँ:—

किसी राज्य की राजकुमारी बहुत सुन्दर थी और उसका हृदय बहुत कोमल था। एक दिन उसकी सेविका बीमार पड़ गई, जो सफाई करती थी। उसने सफाई के लिए अपने पति को भेज दिया। बात चल रही है उसके **सम्मुख सा** होने की, स्वांग करने की। उस स्त्री ने अपने पति को भेज दिया, कि मेरी जगह आज तुम सफाई कर आओ। वह कक्ष के बाहर सफाई कर रहा था तो अचानक राजकुमारी कक्ष से बाहर निकली, उसकी सुन्दरता को देख कर पागल हो गया। घर वापिस चला आया और चुपचाप बैठ गया। उसकी पत्नी ने उसको भोजन करने के लिए कहा तो उसने मना कर

दिया। न कुछ खाये, न कुछ पिये, वह गुमसुम हो गया। उसकी पत्नी ने कारण पूछा तो उसने बताया कि मैंने तुम्हारी राजकुमारी देखी है और उसको पाने की मेरी इच्छा है, लेकिन उसको मैं पा नहीं सकता। असंभव है यह। वो बोली, फिर क्या? बोला, फिर क्या? ऐसे ही मरूँगा मैं। अब वह स्त्री सकपका गई, कि यह क्या हो गया! अगर मैं राजकुमारी को बताती हूँ तो वो इसे मरवा देगी और यह वैसे भी भूखा मर जायेगा। तो वह राजकुमारी को जाकर बोली, मुझे और मेरे पति को मरवा तो देंगी ही आप, लेकिन मैं एक बात बता देती हूँ। उसने सारी कहानी सुनाई। राजकुमारी ने कहा, ''चिन्ता मत करो! मैं तुम्हें एक सुझाव देती हूँ''। वह बहुत उदार हृदय की थी। उसने कहा, कि ''तुम अपने पति का साधु का भेष बना दो और हमारे राज्य के बाहर कुटिया बना कर उसमें बैठा दो। उसे कहना कि बोलेगा कुछ नहीं, बस हाथ से आशीर्वाद दे देगा। मेरे पिता को साधुओं का दर्शन करने का बड़ा शौक है और मैं अपने पिता के साथ वहाँ आऊँगी तो आगे का तुम मुझ पर छोड़ दो।'' उसके पति ने साधु का भेष बना लिया और कुटिया में रहने लगा। इधर राजकुमारी ने अपने पिता से कहा कि 'बड़े सिद्ध महात्मा आये हुए हैं वह किसी से बोलते नहीं हैं, बस! आशीर्वाद देते हैं।' महाराजा को रुचि थी महात्माओं के पास जाने की, तो वह राजकुमारी को लेकर और भेंट की अन्य वस्तुएँ लेकर वहाँ गये। दण्डवत् प्रणाम किया, बहुत भेंट चढ़ाई! तो उसने हाथ से आशीर्वाद दिया। महाराज ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की, ''स्वामी जी ऐसा है अगर आप आज्ञा दें तो मैं अपनी सुपुत्री को आपकी सेवा के लिए छोड़ जाऊ? वह सेविका अपने पति को देख रही है कि अब यह क्या कहेगा! मगर उसने कहा, ''नहीं!'' हाथ से इशारा किया, कि ले जाओ इसको! महाराज उसको ले गये और थोड़ी देर बाद वह पत्नी से बोला, कि 'तुम भी यहाँ से जाओ।' वह बोली, 'क्यों, मैंने क्या बिगाड़ा है?' बोला, 'अरे! मैंने तो एक साधु का स्वांग रचाया और महाराज अपनी पुत्री को भेंट करने के लिए आ गये। यदि मैं साक्षात् **उसके** नज़दीक पहुँच जाऊँ, तो क्या होगा?'' उस प्रभु के नज़दीक बैठिये, **समीप सा भी** बैठिये,

तो आपको उसका भी फल मिलेगा। हमें ध्यान रखना चाहिये कि यह देह हमारी नहीं है, हमारे लिए है, जो हम नहीं जानते। इसलिए जिसने इस देह का निर्माण किया है, ब्रह्मा बन कर और जो इस देह का पालन कर रहा है विष्णु बनकर और जो इसका संहार करेगा शंकर बन कर, उसके पास कुछ देर अवश्य बैठना है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(20 जनवरी, 2002)

अमरत्व

आज परम इष्ट-कृपा से एवं उस महामृत्युंजय के आदेश से एक दुर्लभतम विषय आपके सम्मुख रखने जा रहा हूँ, जो मात्र भारतीय संस्कृति से ओत-प्रोत महामानवों की धरोहर है और जिस पर मात्र उन्हीं का अधिकार है, वह है—**'अमरत्व'**। उस मृत्युंजय महादेव के सामने एक बार प्रार्थना करूँगा, उसके बाद इस विषय को शुरू करूँगाः—

''मृत्युंजय महादेव, त्राहिमाम् शरणागतम्
जन्म-मृत्यु जरा-रोगे, पीड़ितम् कर्मबन्धनैः।''

मेरे साथ बोलियः—

''असतो मा सद्गमयः,
तमसो मा ज्योतिर्गमयः,
मृत्योर्मा अमृतम् गमयः।''

ईश्वर सच्चिदानंद है। सत, चेतन और आनन्द का मिश्रण एवं संगम है। उसकी सृष्टि में, उसके द्वारा बनाये जीव-जन्तु और विशेषकर मानव में मृत्यु का प्रादुर्भाव कहाँ से हुआ? जो अविरल है, चेतन है, निरन्तर चेतन है, उसके जन्म और मृत्यु का प्रश्न ही कहाँ से पैदा हुआ? अतः इस **'अमरत्व'** विषय पर चर्चा आज इष्ट-आदेश से कर रहा हूँ। आप सब परम जिज्ञासु हैं। मैं आपको नमन करता हूँ और आपसे आकांक्षा एवं प्रार्थना करता हूँ कि आप अति श्रद्धा से इस विषय को सुनिये।

मानव-देह जो अपने में ईश्वर की परम उत्कृष्ट संरचना है, उसमें जन्म और मृत्यु का प्रादुर्भाव कहाँ से हुआ ? अमरत्व का वर्णन करने से पहले,

विचार करना अति आवश्यक है कि यह जन्म और मृत्यु की धारणा कहाँ से आई? यदि सच पूछिये तो हम भारतीयों का न जन्म होता है और न हमारी मृत्यु होती है। यदि हम पूछें कि क्या किसी ने अपना जन्म देखा है? **नहीं** और किसी ने अपनी मृत्यु भी नहीं देखी। यह जन्म और मृत्यु दोनों क्या कमारी कल्पना तो नहीं हैं? युग-युगान्तरों से, कल्प-कल्पान्तरों से प्रत्येक मानव मृत्यु से भयभीत है। जन्म-दिवस तो हम बड़ी धूम-धाम से मनाते हैं लेकिन मृत्यु के नाम से डरते हैं। यदि जन्म है तो मृत्यु का अस्तित्व है, वरना हमारे यहाँ मृत्यु को मृत्यु नहीं कहा जाता था। अमुक महापुरुष ''स्वर्ग सिधार गये, परलोक सिधार गये, गो-लोकवासी हो गये, वैकुण्ठवासी हो गये, समाधिस्थ हो गये, ब्रह्मलीन हो गये, निर्वाण को प्राप्त हो गये, परम पद को प्राप्त हो गये''–आदि कितने सुन्दर नाम उस महाप्रस्थान के लिए दिये गये हैं। यह मात्र भारतीय संस्कृति में हैं। न किसी ने आज तक अपना जन्म देखा है और न ही अपनी मृत्यु। फिर भी हम मृत्यु से भयभीत हैं, सभी भयभीत हैं। जो चिकित्सक हैं वे भी भयभीत हैं, जो चिकित्सा करवाते हैं, वे भी भयभीत हैं। इसका पर्दाफाश होना चाहिये। यह दुविधा कहाँ से शुरू हुई, जो हमारी संस्कृति में नहीं थी?

जैसाकि मैं कई बार वर्णन कर चुका हूँ कि मानव-शिशु जब लगभग नौ महीने सात दिन, माँ के गर्भ में रहकर इस धरा पर आता है, तो तथाकथित होश संभालते ही, बुद्धि का विकास होते ही उससे एक बहुत बड़ी भूल हो जाती है। अपने प्रारब्ध-वश या अपने आसपास के वातावरण-वश वह इस देह पर अपना अधिकार जमा लेता है। यह जन्म और मृत्यु का सिलसिला वहाँ से शुरू हुआ, कि **''मैं देह हूँ''**, इसको कहा है–**देहाध्यास और 'यह देह मेरी है'** इसको कहा है–**देहाधिपत्य।** महाभूल जो मानव से हुई, वह यह कि इस देह का नाम रखते ही इस देह से तद्‌रूप हो गया, कि **''मैं देह हूँ'', और ''यह देह मेरी है''।** बस, वहाँ से सारी सज़ाओं का सिलसिला शुरू होता है। अति तीव्र बुद्धि के लोग बैठे हैं यहाँ पर। कोई स्वयं से दस-पंद्रह प्रश्न करे हर रोज़, कि मैं अमुक समय पर पैदा क्यों हुआ? मालूम नहीं।

अमुक माता-पिता, अमुक स्थान, अमुक परिस्थितियों में क्यों उत्पन्न हुआ मैं? पता नहीं। मुझे कब मरना है, कैसे मरना है, कहाँ मरना है? मालूम नहीं। अमुक स्त्री से या पुरुष से मेरा विवाह क्यों होता है, मालूम नहीं! अमुक-अमुक संतान, अमुक-अमुक समय पर, विशिष्ट प्रतिभाओं से सम्पन्न, अलग-अलग क्यों होती है, मालूम नहीं! मुझे अगला श्वास आयेगा कि नहीं आयेगा, मालूम नहीं! मेरे हाथ में मेरा एक श्वास, एक पल, एक क्षण भी नहीं है तो यह देह फिर मेरी कैसे हुई? उस देह के साथ हम तद्रूप हो जाते हैं जिसके एक श्वास का भी हमको ज्ञान नहीं है, भरोसा नहीं है।

आज का विषय है–**'अमरत्व'।** इस पर बहुत एकाग्र करना और जब तक यह विषय चले, साधना करना, इसको ग्रहण करना, ऐ भारतीयो, ऐ ऋषियों, मनीषियों की संतानों! यह आपकी धरोहर है, आपका जन्मसिद्ध अधिकार है। आज हम तथाकथित बौद्धिक विकास के बाद भागना शुरू कर देते हैं और ईश्वर के लिये हमारे पास समय नहीं होता। **तो कौन से समय में हम व्यस्त रहते हैं? जो काल-गणना में आता है,** जब आप सोये हुए होते हैं, वह भी एक समय है, जोकि आपकी गणना में नहीं होता। आप मूर्छित हो जायें या शल्य-क्रिया करने से पहले आपको बेहोशी की दवा दे दी जाये, तो वह मूर्छा का समय भी समय होता है, लेकिन आपकी गणना में नहीं आता। पाँच अवस्थायें हमने बताईं थीं–**प्रगाढ़ निद्रा, मूर्छा, विस्मृति, मृत्यु और तुरिया समाधि**–जिनमें काल, गणना में नहीं आता। एक मृतक आदमी पड़ा है चार दिन से, उसको हम कभी नहीं कहते कि यह समय व्यर्थ कर रहा है। **हम व्यस्त किस काल में हैं! जो काल, गणना में आता है। दो** प्रकार का काल है, एक काल, गणना में आता है और एक कालातीत काल है जो गणना में नहीं आता। कालातीत काल आपके जीवन का निर्धारण करता है। जब कोई व्यक्ति दुखी-जीवन बिता रहा है, कष्टों से घिरा **हुआ है** तो उसको दिन बिताने कठिन हो जाते हैं। वो जीवन काटता है, जीवन जीता नहीं है। ऐसा व्यक्ति साल, दो साल बाद मिले तो लगता है दस साल बाद मिल रहा हो, जैसे दस साल उसकी उम्र **बड़ी** हो गई हो। आपने

नोट किया होगा, जब जीवन के **कष्टमय** दिन होते हैं तो समय बिताना बड़ा मुश्किल होता है। एक वर्ष ऐसा बीतता है जैसे दस वर्षों के बराबर हो। ऐसे में व्यक्ति जल्दी बूढ़े हो जाते हैं। जब **सुखद** समय होता है, **आनन्दमय** समय होता है, वो गणनातीत होता है। वह समय, समय से परे होता है। जब आप जीवन उसमें बिता रहे हैं तो दस साल बाद भी मिलें तो भी लगेगा जैसे एक साल ही उम्र बढ़ी हो, इसको कहा है **'अजरता'**, जो योगियों में होती है। वे कभी वृद्ध नहीं होते क्योंकि उनका सारा समय आनन्दमय बीतता है, क्योंकि वो गणनातीत, कालातीत काल में जीवन जीते हैं। हम व्यस्त किसमें हैं, बंधे हुए काल में। बन्दे और खुदा में यही अंतर आ जाता है। **बन्दा जो बंधा हुआ है और खुदा जो खुला हुआ है।** अरे ! जीवन बिताना है तो खुले समय में बिताइये जो काल की गणनाओं से परे है, क्योंकि हम भारतीय काल-गणना में बंधने के आदी नहीं हैं। हम अभी भी कालातीत काल में ही विचरते हैं, क्योंकि हमारे संस्कार ही ऐसे हैं।

प्रत्येक दिन की एक अवधि है। कितने घंटे का दिन है? चौबीस घंटे का, वह दिन भी बँधा हुआ है। वह समय भी बँधा हुआ है। सर्वप्रथम हम किससे बँधे? अपनी देह से कि **'मैं देह हूँ,' देहाध्यास** और इस से सब कुछ बंधन में पड़ता गया। मानव ने शुरू किये सम्बन्धी बनाने, सम्बन्ध बनाये। उस देह को अपना स्वरूप मान लिया, जबकि इसको तहे-दिल से मालूम था कि यह देह एक दिन जायेगी। जो पैदा हुआ है वह एक दिन मरेगा ज़रूर। काल से बँधी हुई इस देह को जब इसने अपना स्वरूप मान लिया तो यह अमरत्व का अधिकारी मृत्यु के जाल में फँसना शुरू हो गया। इसने जीवन को बिताने के लिए, काटने के लिए सम्बन्धी बना लिये। सम्बन्धी मुख्यतः तीन कारणों से होते हैं—प्रथम माता-पिता, दूसरे पति-पत्नी और तीसरे संतान की ओर से, फिर आगे उनके सम्बन्धी। उनको अपना सम्बन्धी बनाया जोकि स्वयं नश्वर थे। जिस समय में जीवन बिताना शुरू किया, वो समय भी बँधा हुआ था काल-गणना में और उसके बाद तथाकथित वह कर्म करने शुरू किये जो **जीवन के लिए** थे। **उस जीवन के लिए जो एक**

अवधि में बँधा हुआ था और जो आपका नहीं था। कर्म करने शुरू किये और कर्मों में बहुत व्यस्त हो गया यह। मैं बता रहा हूँ कि किस प्रकार यह अमरत्व का अधिकारी मानव मृत्यु की ओर बढ़ने लगा। कर्म करने शुरू किये धन कमाने के लिए, पदार्थ एकत्रित करने के लिए, सुख-सुविधाओं के लिए, स्वयं की संतान के लिए जो सभी नश्वर थे। इस नश्वर शरीर के साथ तादात्म्य करके एक के बाद एक भूल होती गई। वे सम्बन्धी बनाये जो नश्वर, उस समय से बँधा जो काल में बँधा हुआ था, उन कर्मों से बँधा जो उसको मात्र अपनी इन्द्रियों के सुख के लिए पदार्थ एकत्रित करने के लिए प्रेरित करते थे और वे पदार्थ जो स्वयं में नश्वर थे। इस प्रकार यह सिलसिला चलता गया, चलता गया। पदार्थ तो एकत्रित कर लिए, लेकिन आनन्द के प्रवाह में अवरोध आ गया। इसकी इन्द्रियों ने इसको सुख देने से इन्कार कर दिया। यहाँ पर एक बात बहुत एकाग्र करने की है, **ईश्वरीय आनन्द मात्र अनुभूति का विषय है।** यह वर्णन नहीं किया जा सकता। कभी-कभी किसी महामानव को उस परम ईश्वरीय सत्ता की मात्र एक झलक मिल जाती है तो वह झल्ला हो जाता है, पागल हो जाता है। उस झलक को कोई बयान नहीं कर सकता। इतना गोपनीय है ईश्वर का वह स्वरूप।

यह समझाने से, बातचीत करने से, सोचने से, लिखने से और पढ़ने से परे का विषय है। **उस परम सत्ता की झलक इसको झल्ला बना देती है और इन्द्रियों का सुख उसका चिदाभास है।** इसे प्रभु ने इतना गुप्त रखा कि हम इन्द्रियों के सुख का भी वर्णन नहीं कर सकते, कि रसमलाई मीठी है, मीठी कैसी होती है? कि आप ही खा लो तो पता चल जायेगा। उस सच्चिदानंद ने अपने आनन्द-स्वरूप का चिदाभास जो इन्द्रियों का सुख भी रखा, उसको भी व्यक्ति बयान नहीं कर सकता, वर्णन नहीं कर सकता। मात्र उसका **अनुभव** हो सकता है। वह इन्द्रियों के सुखों के लिए सुख-साधनों की तरफ भागा। वह यह भूल गया कि सुख प्रकट कब होगा। जब उसका चेतन स्वरूप अनाच्छादित होगा और उसके लिए उसके पास

समय नहीं था। पूछो, ''ईश्वर के ध्यान में बैठते हैं?'' ''मेरी पत्नी बैठ जाती है।'' बोले–आप? समय नहीं होता, सुबह छः बजे जाते हैं, रात दस बजे आते हैं। फिर नींद भी नहीं आती तो दारू के एक-दो पैग ले लेते हैं। सारा जीवन यह पदार्थों को इकट्ठा करता रहता है और मूर्ख यह भी नहीं जानता कि जो पदार्थ मैं एकत्रित कर रहा हूँ अपनी इन्द्रियों के सुख के लिए, उस सुख को प्रकट करने के लिए मेरे भीतर के स्वरूप का, आनन्द का, अनाच्छादित होना, अनावृत होना अति आवश्यक है। अतः इस दौड़ में यह निराशा मोल ले लेता है।

सावधान ! हम ज़िन्दगी काटने नहीं आये हैं, हम ज़िन्दगी जीने आये हैं। अगर ज़िन्दगी जीना चाहते हैं तो सब तरह से उस सच्चिदानंद स्वरूप के सम्मुख होना अति आवश्यक है, वरना यह चमक-दमक आपको निराश कर देगी। मनोरोग चिकित्सक के पास ले जायेगी, गोलियाँ लिख देंगे वे। नींद की गोलियाँ खानी पड़ेंगी, दारू अवश्य पीनी पड़ेगी, यह दिव्य कानून है। ईश्वर ने पाँच महाभूतों से निर्मित मानव-देह में, प्रतिनिधि-रूप में सतर्कता विभाग रख दिया और पाँचों ज्ञानेन्द्रियों को {पृथ्वी का नाक (गन्ध), आकाश का कान (शब्द), वायु का त्वचा (स्पर्श), जल का जिह्वा (रस) और अग्नि का नेत्र (तेज)} इन विभागों के प्रहरी नियुक्त किया, जो बड़ी सजगता से इस पर नज़र रखते हैं कि अगर यह जीव चिदाभास की ओर दौड़ता है तो इसको दौड़ाओ। तब तक दौड़ाओ जब तक निराश होकर, आसक्तियों को छोड़ कर यह मर न जाये, **मृत्यु हो इसकी, निर्वाण नहीं**। ऐसे इन्द्रियों के सुखों के पीछे भागने वालों का निर्वाण नहीं होता, वे स्वर्ग नहीं सिधारते, वे वैकुण्ठवासी नहीं होते, वे स्वर्गवासी नहीं होते, वे ब्रह्मलीन नहीं होते, वे समाधिस्थ नहीं होते, उनकी इहलौकिक लीला समाप्त नहीं होती, वे मरते हैं।

अमरत्व पद सबके लिए नहीं है। मृत्यु अकाल होती है और अकाल मृत्यु के साथ दो बातें अवश्य जुड़ी होती हैं, जिसकी अकाल मृत्यु होती है वह असंतुष्ट होता है। वह अतृप्त होता है और जो असंतुष्ट होता है वह

आसक्त भी होता है। उसके पास जो होता है उससे वह असंतुष्ट होता है, काश ! मेरे पास यह भी होता, काश ! मेरे पास वह भी होता। जो नहीं है उसके लिए आसक्ति है और इन दोनों को लेकर वो अकाल-मृत्यु मर जाता है, चाहे वह दो सौ साल का बूढ़ा होकर क्यों न मरे, वह अकाल-मृत्यु है। आज मृत्यु की बात चल रही है। अमरत्व के पहले मृत्यु का जानना अति आवश्यक है। परमात्मा ने एक विशेष छूट दी है हम भारतीयों को, मात्र हम भारतीयों को, विशुद्ध भारतीय संस्कृति के पोषकों को, जो किसी और को नहीं दी। आसक्तियों को छोड़कर जब मृत्यु को प्राप्त भी होते हैं तो प्रभु हमें पुनर्जन्म देते हैं। अरे ! जिसका पुनर्जन्म होता है, जो पुनर्जन्म में विश्वास करता है, मात्र वही भारतीय है। यह पुनर्जन्म और जन्म-दर-जन्म मिलना हमारा विशेषाधिकार है। ईश्वर हमारे ऊपर बहुत कृपालु रहते हैं क्योंकि हम राजर्षियों की, ब्रह्मर्षियों की और महर्षियों की संताने हैं, हम योगियों की संताने हैं। इसलिए हम भारतीयों को एक विशेषाधिकार दिया है कि चलिये आसक्ति के रहते अगर इसकी देह की अवधि समाप्त भी हो गई तो इसको फिर जन्म दे दो ! अगर फिर आसक्ति लेकर मरता है तो फिर जन्म दे दो, फिर दे दो, फिर दे दो ! हमें जन्म-जन्मांतर मिलते रहते हैं। व्यक्ति जन्म लेता है और फिर आसक्तियों को लेकर मरता है। इस प्रकार जन्म-मृत्यु के चक्कर में जीव घूमता रहता है।

जिन पदार्थों की तरफ हम भागते हैं जीवन-काल में, हम पैदा होते ही उन समस्त पदार्थों को अपने साथ लेकर आते हैं। जो वस्तुएँ हमें जीवन में मिलती हैं, वे वस्तुएँ हम साथ में लेकर पैदा होते हैं। समय-समय पर वे वस्तुएँ हमारे सामने स्वयं आ जाती हैं और हम उनको प्राप्त करने में दौड़ते-दौड़ते यह पूरा जीवन-काल निरर्थक ही नहीं, नकारात्मक बिता देते हैं। जीवन-लीला समाप्त हो जाती है। मृत्यु होती है, उसके बाद पुनर्जन्म होता है। आपका सम्पूर्ण-जीवन जन्म से लेकर मृत्यु तक, प्रारब्ध के नियन्त्रण में चलता है। प्रारब्ध कैसे बनता है, कहाँ से पैदा हुआ? जिस समय हमारे मानस में बुद्धि का विकास होते ही देहाध्यास आ गया कि **मैं**

देह हूँ, मुझे सब कुछ करना है अपने लिए, मुझे कैरियर बनाना है, कर्त्तव्य निभाने हैं मुझे ! वहाँ से यह घटना घटी कि जीव ईश्वर के विमुख हो गया और उस सच्चिदानंद की सृष्टि में इसकी बुद्धि जड़ हो गई। उस सच्चिदानंद की सृष्टि में कुछ भी जड़ नहीं है। सब चेतन ही चेतन है। लेकिन जब यह ईश्वर के विमुख हो गया, उसको शास्त्र ने कहा है **जड़ता।** इसकी बुद्धि जड़ हो गई। **देहाध्यास** से और **देहाधिपत्य** से जब इसकी बुद्धि में जड़ता आ गई तो **इसके मन में जड़ और चेतन की ग्रन्थि तुरन्त बन गई, स्वतः।** उस जड़ और चेतन की ग्रन्थि का नाम है–**प्रारब्ध।**

बुद्धि के अहं-युक्त होते ही मानव के मानस में जड़ और चेतन की ग्रन्थि बनती है, जिसका नाम है **प्रारब्ध**। जन्म से मृत्यु तक उस **प्रारब्ध** की जो रूपरेखा बनती है मानस में, वो चिप की तरह है। एक बार मैंने उदाहरण दिया था कि आपके मोबाइल में एक चिप होती है और यह चिप जुड़ी होती है सेटेलाइट से। इस चिप में आपका नम्बर होता है, आपके सारे विस्तृत खाते होते हैं और इस चिप की वजह से आपको मोबाइल का बिल आता है, सेटेलाइट को बिल नहीं आता। **यह प्रारब्ध, जड़ और चेतन की ग्रन्थि, यह वह चिप है जो आपको पृथक व्यक्ति घोषित करती है।** यह नम्बर है इसका। उसको बिल भेज दो। तो यह चिप सी बन गई और इस चिप पर आपके सारे विस्तृत खाते थे, कितनी हेरा-फेरी की है, क्या किया है, किसका कितना मारा है, किसी को क्या दिया है? यह सब अंकित था। मृत्यु के बाद इस चिप ने आपको एक देह और दिलवा दी, कि लो बेटा ! लाइन में लगे रहो, फिर वही पढ़ो ! कि मैं एम. बी. बी. एस., एम. डी. हूँ, अगले जन्म में फिर क ख ग घ पढ़ो ! पूछो ! कि पिछले जन्म में तो मैं उच्च-शिक्षित था, बोले, चुप रहो ! क ख ग घ दोबारा पढ़ो ! कभी बैंक में पहुँच जायें कि पूर्व-जन्म में मेरा यहाँ पर दो करोड़ रुपया पड़ा था, मुझे पाँच सौ रुपये निकालने दीजिये। वे साथ ही पुलिस को फोन कर देंगे, कि ले जाओ इसे, कोई पागल आ गया है। आप एक कोठी में घंटी दें कि यह कोठी तो मैंने बनाई थी, बहुत पैसा इकट्ठा करके, हेरा-फेरी करके। एक कमरा दे दीजिये एक दिन के

लिए, वे तुरन्त पुलिस को फोन कर देंगे, कि भगाओ इसको। हाँ ! सोचना, कि जो आज तक आपने की है न कसरत, वह दोबारा फिर करनी पड़ेगी। वह टैक्सी का मीटर फिर शून्य पर आ जायेगा, कि दोबारा करो। हाँ ! ऐसा होगा। अगले जन्म में फिर आप छोटे से शिशु की तरह पैदा होंगे, नंगे-धड़ंगे।

जीवन शून्य से शुरू होता है और शून्य पर ही समाप्त हो जाता है। यह शून्य बहुत महत्त्वपूर्ण है। **भारत की खोज है शून्य। जो प्रश्न शून्य से शुरू होकर शून्य में समाप्त होता है, उसके बीच जितनी भी गणना होगी सब शून्य होगी।** आप शून्य इकट्ठी कर रहे हैं क्योंकि आप तथाकथित बहुत बुद्धिजीवी हैं। आप बुद्धि का गलत इस्तेमाल कर रहे हैं। शून्य इकट्ठी करते रहते हैं हम और शून्य इकट्ठी करने में किसी को कैंसर हो जाता है, किसी की हृदय-गति रुक जाती है, किसी को मधुमेह हो जाती है और कोई शून्य में ही मर जाता है। मरने पर गहने कपड़े घरवाले उतार लेते हैं। पहले अँगूठियों पर निगाह जाती है और कफन डोम उतार लेता है। जब पैदा होते हैं तो भूखे-नंगे पैदा होते हैं, तन पर कपड़ा नहीं होता और पैदा होते ही हम सबसे पहले रोते हैं। अगर किसी बच्चे को रोने में देर हो जाये तो हम डाक्टरों को चिन्ता हो जाती है। उसको पीटते हैं कि जल्दी रोये, नहीं तो मस्तिष्क खराब हो जायेगा। तो प्रारब्ध बना किससे? आपके देहाध्यास से। आपके मानस में एक चिप बन गई। **वह चिप आपकी देह रूपी जहाज का एक ब्लैक बाक्स** है। हवाई जहाज दुर्घटनाग्रस्त हो जाता है, लेकिन **ब्लैक बाक्स** नष्ट नहीं होता। वह **चिप** आपको दोबारा जन्म दिलवाती है। आपको दोबारा देह मिलती है। कोई न कोई माता-पिता मिल जाते हैं और कोई न कोई सम्बन्धी मिल जाते हैं। फिर आप पढ़ते-लिखते हैं। दोबारा फिर शादी होती है, कहीं न कहीं और वही कर्म, तथाकथित कर्म, फिर वही वस्तुएँ, फिर वही आसक्तियाँ और फिर चिप में यह सब और जुड़ जाता है तथा वह चिप फिर आपको अगला जन्म दिलवाती है। इस प्रकार जन्म-जन्मांतरों में हम धक्के खाते रहते हैं।

परमात्मा कितने कृपालु हैं कि प्रारब्धवश हमें उन आसक्तियों को पूरा करने के लिए फिर देह दे देते हैं और तब भी हम सजग नहीं होते कि यह देह हमको क्यों मिली? ईमानदारी से सुबह उठकर 3 – 4 बजे के बीच में, आप भगवान का नाम लेना, न लेना, उसको मानना, न मानना, आप स्वयं को तो मान लीजिये और स्वयं से पूछिये, ''मैं कहाँ हूँ, मैं क्या कर रहा हूँ, क्या प्राप्त हुआ मुझे? चेतन सत्ता के प्रवचन में मैंने एक बार कहा था कि हमारी अधिकांश दौड़ भौतिक प्राप्तियों की ओर होती है, हमें वे प्राप्त हो जाती हैं। हमें कोई पद चाहिये, आप उसके लिए पागल हैं, आपको पद भी मिल सकता है, आपको बहुत धन चाहिये, आपको धन भी मिल जाता है और भौतिक प्राप्तियाँ भी हो जाती हैं, भवन, ज़मीनें, मिल जाती हैं सब, लेकिन उसके साथ आप ध्यान करना, आप कुछ खोते अवश्य हैं। जब आप हेरा-फेरी करके, सब कुछ करके, उस सच्चिदानंद से विमुख होकर, भौतिक जीवन में कुछ प्राप्त करते हैं तो आपको कुछ खोना भी पड़ता है। ईमानदारी से सोचना और स्वयं से पूछना कि क्या पाया? नम्बर उतने के उतने। आप अपने आपको पूर्णतया मूर्ख बना रहे हैं। तो इस प्रकार जब यह चलता रहता है सिलसिला, तो कभी न कभी किसी महामानव को कोई संत टकर जाता है। संत टकर जाता है, **मिलता नहीं, टकर जाता है।** मिलने में और टकरने में अंतर है। मिलता उसको है जिसको जिज्ञासा होती है। अभी तक इसको जिज्ञासा नहीं हुई। इसको कोई अचानक टकर जाता है और वह भी **इसके माता-पिता के आशीर्वाद से**:—

''बिन हरि कृपा मिले न संता।''

''महाराज मैं बहुत दुःखी हूँ।'' ऐसे लोग संतों के पास अपने घर का रोना ही रोते हैं पहले आकर, बहुत कष्ट में हूँ, मेरी पत्नी ऐसी है, मेरे बच्चे ऐसे हैं, मेरे बाप ने यूँ किया, माँ ने यूँ किया, नौकरी में मेरी बदली करा दो। सब रोना रोते हैं आकर। सन्त बोला, अरे मूर्ख ! जिस झमेले में तुम फँसे हो, यह इसलिए हुआ कि तुमने बुद्धि का दुरुपयोग किया है। वह संत, वह महामानव इसको बुद्धि के वास्तविक कार्य जिसके लिए परमात्मा ने इसको

इतनी दुर्लभ देह दी थी, जो असली कर्म था बुद्धि का, वास्तविक दिव्य-कार्य था उसका, इसको बताता है कि बुद्धि के मात्र तीन काम हैं, सुनः—

मानव-बुद्धि, यह आध्यात्मिक शक्ति जो ईश्वर ने मानव-देह में प्रस्तुत की, वह मानव के प्रयोग के लिये नहीं थी। सारा संसार, जीव-जन्तु, जलचर, नभचर, थलचर सब बिना बुद्धि के बड़े आनन्द में जी रहे हैं। दुखी है तो मानव ही है, क्योंकि उसने अपनी बुद्धि का दुरुपयोग किया है। वह संत इसको अवगत करवाता है कि बुद्धि तेरे प्रयोग के लिए नहीं है। बुद्धि के तीन काम सुन! ईश्वर ने तुझे बुद्धि क्यों दी? एकदम झटका पड़ता है कि अच्छा, बुद्धि मेरे प्रयोग के लिए नहीं है। बोले, अरे मूर्ख! नौ महीने में यह काया माँ के गर्भ में बनी, तूने स्वयं क्या बनाया अपना? अरे! तुझे उस वक्त ईश्वर ने माँ के गर्भ में यदि बुद्धि दी होती तो तू पसीना पोंछता बाहर आता, कि मैं बहुत व्यस्त था। कोई सुन्दर पैदा होता तो वो बड़ी डींग हाँकता कि मैं माँ के पेट में बड़ा अनुशासित रहा। किसी को ऊत-पटाँग काला-कलूटा शरीर मिल जाये, वह अपने माँ-बाप को गाली देता, कि मुझे मौके पर यह पूर्ति नहीं की गई, मेरी माँ ने ऐसा नहीं किया, मेरे बाप ने ऐसा नहीं किया। अरे मूर्ख! अपनी सोच से तू जिस देह का एक बाल नहीं बना सकता, उस परमात्मा ने तुझे कितनी चमत्कारिक, पूर्णतया स्वचलित, पूर्णतया वातानुकूलित देह दी! जब तू मरेगा तो बुद्धि से सोचकर नहीं मरेगा। जीवन की घटनायें तेरी बुद्धि से विचार-विमर्श करके नहीं होंगी। यह कौन बताता है? वह संत बताता है। जीवन की जो विशिष्ट घटनायें होतीं हैं, कभी विचार करना वे घटनायें होती हैं। उनकी उसी प्रकार परिस्थितियाँ बनती हैं। आपकी बुद्धि वहाँ काम नहीं करती। आपकी बुद्धि उसी के अनुसार स्वतः प्रेरित हो जाती हैः—

''तुलसी जसि भवितव्यता तैसी मिलई सहाइ,
आपुनु आवइ ताहि पहिं ताहि तहाँ ले जाये।''

ताहि तहाँ ले जाये, वो ईश्वरीय शक्तियाँ आपको वहाँ ले जाती हैं, वे परिस्थितियाँ बन जाती हैं, जहाँ वह घटना घटनी होती है। वह आपकी बुद्धि

से सलाह लेकर नहीं होती। तो ऐ मानव! तेरी बुद्धि के क्या कार्य थे? **पहला** कि तू तहे-दिल से, तहे-रूह से, तहे-मन से यह सोच, कि **तेरे हाथ में कुछ नहीं है।** निराश नहीं कर रहा हूँ। बुद्धिजीवी निराश न हों। बुद्धि का समर्पण किये बिना, आप दैवीय कार्य नहीं कर पायेंगे, इसलिए यह कुछ ही देर की निराशा दे रहा हूँ।

दूसरा, उस सर्वशक्तिमान परम पिता ने यह देह बनायी व कर्मेन्द्रियां और ज्ञानेन्द्रियां दीं। **जब वह कुछ चाहेगा तो उनका इस्तेमाल वह खुद करेगा और उसके अनुसार तुम्हारे से काम करवायेगा।** ईश्वर-द्वारा जो कृत्य होते हैं उनमें दो विशेष खूबियाँ होती हैं, एक—ईश्वर द्वारा प्रतिपादित, सम्पादित जितने भी कार्य हैं वे सब स्वतः-भाव से होते हैं। जब ईश्वर ने जो कुछ करवाना होता है, वह बैठे-बैठे वैसी परिस्थितियाँ बना देता है। ईश्वर-द्वारा जितने भी कृत्य होते हैं वे तीन आनन्दों से युक्त होते हैं। कार्य के **प्रारम्भ में आनन्द,** उस कार्य के **मध्य में आनन्द** और उस कार्य की **समाप्ति के बाद भी आनन्द।** हम सभी लोग गृहस्थी हैं, गृहस्थ में जितने भी कार्य हैं, चाहे वह आपके बच्चे को दाखिला दिलवाना हो, चाहे कोई व्यापार करना हो या व्यापार बन्द करना हो, चाहे और कोई भी कार्य करना हो, विवाह-शादी इत्यादि, कोई भी कार्य हो, **यदि वे कार्य ईश्वरीय हैं तो उनमें स्वतः-भाव होगा।** आपने सोचा भी न होगा और वह कार्य हो जायेगा। उसकी परिस्थितियाँ बन जायेंगी और वे कार्य तीन आनन्दों से युक्त होंगे। दारू पीने वालों में दो आनन्द तो रहते हैं। जब बोतल आती है तब आनन्द रहता है और पीते समय बड़ा आनन्द होता है परन्तु जब उसका नशा उतरता है तो वह भुक्त-भोगी ही जानते हैं, कि क्या होता है? तब वह कहेगा, कि बस! आज से नहीं पीऊँगा, लेकिन शाम को फिर घंटियाँ बजने लगती हैं कि पी लो! अगर दारू पीने में तीसरा आनन्द भी होता तो हम सारे विश्व को दारू पीने में लगा देते। ईश्वरीय कार्यों में तीन आनन्द होते हैं जबकि मानविक कर्मों में तीनों में से एक आनन्द का अभाव अवश्य होगा। यदि किसी कार्य को करने से पहले, उसके मध्य में और अन्त में आप तीनों

आनन्दों से युक्त नहीं हैं तो यह मान लीजिये कि वह कार्य आपने अपनी बुद्धि की तथाकथित सोच से किया है और आप भुगतेंगे। आपका प्रारब्ध बनेगा, चिप बन जायेगी। वह प्रारब्ध वाली चिप आपको जन्म-जन्मांतरों में घुमायेगी।

ईश्वर फिर भी बहुत कृपालु हैं। कृपया एकाग्र कीजिये, प्रारब्धवश भी जो आपको पुनर्जन्म मिलता है, उसमें भी अगर आप किसी संत-कृपा से, सद्‌गुरु-कृपा से सावधान हो जायें कि अब मैं हस्तक्षेप नहीं करूँगा, तो वहाँ भी आनन्द ही आनन्द होता है। बुद्धि का **तीसरा कार्य था कि वह उत्कृष्टतम बुद्धि-द्वारा ईश्वर की वाह-वाह करे।** अतः जो संत इसे टकर जाता है वह उसे बुद्धि के उपर्युक्त तीन महत्त्वपूर्ण कार्य बताता है। यहाँ से जीव सोचने पर बाध्य हो जाता है कि मैं तो मूर्खता करता रहा, परन्तु यहाँ भी प्रक्रिया बहुत लम्बी है।

जब सद्‌गुरु, संत कुछ बात बताता है तो पहले आप उसका श्रवण करते हैं, सुनते हैं उसको। श्रवण करने के बाद आपकी बुद्धि उस पर विचार करती है, विचार करने के बाद वो सारी फाइल आपके मन के पास चली जाती है। जब बुद्धि हस्ताक्षर कर देती है, कि हाँ ! ठीक कहा इन्होंने, तो बुद्धि की फाइल चली जाती है आपके मन के पास, तो **मन उस पर मनन करता है।** कई बार आपको कोई बात जँच जाती है, कि कहते तो ठीक हैं। आप कहते हैं कि आप जो कह रहे हैं मुझे जँच रहा है लेकिन मेरा मन नहीं मान रहा है। मन उस पर मनन करता है कि यह बात सत्य है और उसके बाद होता है उस पर नित्याध्यासन, बार-बार पुनरावृत्ति, **कि यही सत्य है, यही सत्य है, यही सत्य है और कुछ सत्य नहीं है, यही सत्य है।** पहले श्रवण हुआ, श्रवण के बाद विचार हुआ, विचार के बाद मनन हुआ, मनन के बाद नित्याध्यासन और नित्याध्यासन के बाद इष्ट-कृपा, माता-पिता की कृपा, गुरु-कृपा और बहुत महत्त्वपूर्ण है आत्म-कृपा। इतनी कृपायें जब हो जाती हैं तो वह बात सिद्धि बन जाती है। आप उसे आत्मसात् कर लेते हैं। वह चिप में अंकित हो जाती है, कि यही ठीक है बस ! कोई भ्रान्ति नहीं है।

संत जो इसे टकरा जाता है, वह जब बुद्धि के उपर्युक्त तीन कार्य इसे बताता है, और जब वे इसके मनन, चिंतन के बाद रूह में, अंकित हो जाते हैं कि पहले मैं गलत था। वहाँ एक घटना और घटती है कि इसके सामने तीन तथ्य आ जाते हैं। **पहला, कि ऐ मानव ! तू पृथ्वी पर आया नहीं है, तू लाया गया है। अतः जीवन उपहार नहीं है, यह कभी भी छीन लिया जायेगा। दूसरा, जिसको तू अपना कर्त्तव्य समझता है वह तेरा कर्त्तव्य नहीं है।** क्यों ? जो कार्य हमारे बिना भी हो सकता है और हो सकता है कि हमारे बिना ज्यादा अच्छा हो। वे लोग जो यह समझते हैं कि अमुक कार्य उनके बिना नहीं हो सकता तो वे यह मान लें कि उनके बिना ज्यादा अच्छा होगा ही। तेरा कर्त्तव्य वह नहीं है जो तूने स्वयं पर लादा हुआ है, समय व्यर्थ करने के लिए। तेरा क्या कर्त्तव्य है तुझे यह ज्ञात ही नहीं है। **तीसरे, जो कुछ भी तू एकत्रित कर रहा है वह तुझे एक दिन यहीं छोड़ कर जाना पड़ेगा।** जीवन के एक भी श्वास का नियन्त्रण मानव के हाथ में नहीं था, पर उसके लिए इसने ईश्वर की दी हुई समस्त शक्तियों को झोंक दिया, पागलपन में और अन्ततः निराश हो गया। देह की अवधि समाप्त हो गई। जो कुछ इसने प्राप्तियाँ कीं और जो इसको प्राप्तियाँ थीं, दोनों ने निराश कर दिया इसको, क्योंकि इसने अपनी बुद्धि का अनुचित प्रयोग किया। असंतुष्ट हो गया यह और जब असंतुष्ट हुआ तो आसक्ति साथ उत्पन्न हुई। जो वस्तुएँ इसको प्राप्त थीं या जो इसने प्राप्त कीं उससे यह असंतुष्ट रहा और जो प्राप्त नहीं थीं अथवा जो यह प्राप्त करना चाहता था, उन वस्तुओं की इसको आसक्ति बनी रही।

असंतुष्टि, आसक्ति, अकाल-मृत्यु तीनों संग-संग चलते हैं। इसको कहा है **मृत्यु !** जोकि भारतीयों की नहीं हुआ करती थी। अब होने लगी है। हम विशुद्ध भारतीय संस्कृति के पोषक कभी भी नहीं मरते थे। दुर्भाग्यवश पाश्चात्यानुगमन हमको मृत्यु के लिए प्रेरित कर गया। हमें इस मृत्यु के शिकंजे से आज ही बाहर निकलना है। मृत्यु कब हुई ? जब हमने जन्म को माना, जिसका जन्म होता है उसकी मृत्यु अवश्य होती है। हम अपने त्यौहार

भूल गये और रह गया याद जन्म-दिवस। जितनी धूमधाम से जन्म-दिवस मनाते हैं, मज़ा तब है कि उतनी धूमधाम से मृत्यु-दिवस भी मनाया जाये, जो अवश्य होगा, उससे सब भयभीत हैं। क्यों भयभीत हैं, जन्म-दिवस में सारी खुशी निकाल देते हैं, मृत्यु-दिवस में क्यों भयभीत रहते हैं हम, क्यों हुई मृत्यु? **किसी मानव को जब देह छोड़ती है तो वो मरता है** और जब कोई महामानव देह को छोड़ता है तो **अमरत्व-पद** को प्राप्त होता है। कृपया ध्यान दीजिये।

अमरत्व-पद में और मृत्यु दोनों में देह छूटेगी लेकिन महामानव देह को छोड़ते हैं और साधारण जीवों को देह छोड़ जाती है। उदाहरण के लिए कोई कितना भी वृद्ध हो जाये वो मात्र देह को इसलिए छोड़ना चाहेगा क्योंकि देह उसके लिए कष्टकारक हो जाती है। उसको तंग करने लगती है। घुटने खराब हो जाते हैं। बुद्धि खराब हो जाती है, आँखें खराब हो जाती हैं, सारी इन्द्रियाँ जवाब दे देती हैं। चेहरा कुरूप हो जाता है, कि हे प्रभु! अब देह छूट जाए, नई देह मिले। लेकिन उसकी आसक्तियाँ नहीं जातीं, कि मेरी बेटी के बेटा हो जाता, वहाँ मैं एक प्लॉट और ले लेता, अपने बेटे के लिए मैं एक कारोबार और शुरू कर देता, लेकिन देह जवाब दे गई। तो वे आसक्तियों को लेकर मरते हैं। उनकी मृत्यु होती है। अमरत्व-पद जिनको मिलता है वो देह को छोड़ते हैं। देह को छोड़ने से मेरा मतलब आत्महत्या करने से नहीं है। आत्महत्या वो मूर्ख करते हैं जोकि इस देह के जंजालों से भयभीत हो जाते हैं, त्रसित हो जाते हैं, वे मूर्खतावश इस देह को समाप्त कर देते हैं। उसके बाद उनको प्रेत-योनि मिलती है, जो उन्हें और तंग करती है। देह छोड़ने का अर्थ क्या है? दो प्रकार के महामानव हुए हैं हमारे देश में। एक तो वे महामानव हुए जिनको देह-धारण करने का अपना कोई काम नहीं था, कोई आसक्ति भी नहीं थी। प्रभु ने कुछ विशेष कार्य देकर उनको पृथ्वी पर अवतरित किया, तो ऐसे महामानवों का जब कार्य समाप्त हो जाता है तो इनको देह से कुछ लेना-देना नहीं होता। देह चलती रहती है। कभी आपने कुम्हार को बर्तन बनाते देखा हो, तो कुम्हार का चक्का घूमता है और उसके

ऊपर वो घड़ा इत्यादि बनाता है। जब घड़ा बन जाता है तो वो घड़े को उतार लेता है, चक्का घूमता रहता है। तो ऐसे महामानवों का जब कार्य समाप्त हो जाता है इष्ट-कृपा से, तो उनको अपनी देह का कुछ भी अर्थ नहीं रहता और जितनी अवधि उसकी होती है वह लेकर समाप्त हो जाती है। ऐसे महापुरुष अमर होते हैं। दूसरे, योगभ्रष्ट होते हैं जो जप, तप, साधना, उपासना, सत्संग करते-करते, अंत समय में संसार में यदि उनकी कोई न कोई आसक्ति छूट जाती है, तो उस आसक्तिवश उनको देह मिलती है। जब उनकी वो आसक्ति समाप्त हो जाती है तो वो अपने परम सत्य-स्वरूप को पा लेते हैं। उस परम सच्चिदानंद-स्वरूप की झलक पा लेते हैं, तब उनके लिए भी देह का कोई अर्थ नहीं रहता। चाहे वो जल्दी छूट जाये, चाहे सौ साल के बाद छूटे, ऐसे महामानव भी जीवन-काल में अमरत्व को पा जाते हैं।

अब यहाँ प्रश्न यह उठता है जैसाकि मैंने प्रारब्ध के दो प्रवचनों में बताया था, कि जहाँ मानव की बुद्धि में ये दो विक्षेप आते हैं– **देहाध्यास और देहाधिपत्य,** तो ईश्वरीय मन आच्छादित हो जाता है और वहाँ पर एक घटना घटती है, जिसको कहा है **जड़ और चेतन की ग्रंथि का निर्माण।** जिसको महामानवों ने कहा है **भाग्य, प्रारब्ध।** एक ऐसी ग्रन्थि जो हमारे प्रत्येक के जीवन को आदि से अंत तक निर्देशित करती है और हमारा सम्पूर्ण जीवन जिसकी धुरी पर चलता है। प्रारब्ध के अनुसार हम जन्म लेते हैं विशिष्ट परिस्थितियों में, विशिष्ट माता-पिता के अंश से, विशिष्ट परिवार में और विशिष्ट प्रकार की हम शिक्षा लेते हैं। इसी के अनुसार विवाह-शादी होती है, हमारी संतान उत्पन्न होती है और संतान के विभिन्न प्रकार भी उस ग्रन्थि के अनुसार होते हैं, इसी के अनुसार हमारी देह का अंत होता है। यह वह ग्रन्थि है जिसके तीन भाग थे, पहला **जड़ और चेतन का अनुपात,** दूसरा **कुल चेतनता** और तीसरा **ईश्वर को पाने की लालसा।** यह लालसा प्रत्येक विशुद्ध भारतीय में होती है। उन्हीं का पुनर्जन्म भी होता है। दिव्य शक्तियाँ विचार करती हैं कि यह ईश्वर को भी पाना चाहता है। पोता भी

चाहता है, नाती भी चाहता है, पद भी चाहता है और ईश्वर को भी चाहता है, इसलिए एक जन्म और दे दो, क्या अन्तर पड़ता है? यद्यपि पुनर्जन्म एक सज़ा है, लेकिन ईश्वर एक मौका और देता है, कि शायद यह मेरी तरफ मुड़ जाये।

पुनर्जन्म मिलता है, फिर वही सिलसिला, सब कुछ वो ही, तथाकथित शिक्षा, विवाह-शादी, संतान, सब कुछ वही सब, मात्र नाम-रूप बदल जाते हैं और जिन आसक्तियों को छोड़कर वह मरा था, उन्हें पूरा करने का ईश्वर विशेष ध्यान रखते हैं। लेकिन दुर्भाग्यवश मरते समय यह अन्य आसक्तियाँ छोड़ जाता है। यहाँ पर एक महत्त्वपूर्ण बात और है, कि प्रारब्धवश भी जो जन्म मिलता है उसका भी सारा ध्यान ईश्वर स्वयं रखते हैं, यदि वहाँ भी हम सावधान हों जायें और बुद्धि का हस्तक्षेप बन्द कर दें तो विवेक-बुद्धिवश किसी मानव में यह विचार आता है कि बार-बार मैं जन्म क्यों ले रहा हूँ, यह कहानी क्या है? तो कोई संत मिल जाता है जो इसकी विवेक-बुद्धि को जाग्रत कर देता है। सत्य-बुद्धि ही विवेक है। बस विवेक की जागृति होने से मानव का अहम्-भाव समाप्त हो जाता है। वह ईश्वर-सम्मुख हो जाता है। प्रारब्ध नामक **'जड़ व चेतन ग्रन्थि'** समाप्त हो जाती है। मात्र तभी से ईश्वर के बारे में जानने की विशुद्ध जिज्ञासा उत्पन्न होती है। उस समय आप सद्शिष्य बन जाते हैं। सद्शिष्य के सम्मुख कभी न कभी सद्गुरु स्वयं प्रकट हो जाते हैं। यदि आप मात्र अपनी भौतिक उपलब्धियों की प्राप्ति के लिए अथवा अपने कष्टों के निवारण के लिये किसी महापुरुष के पास जाना चाहते हैं तो आपको सद्गुरु नहीं कोई गुरु मिल सकता है। **सद्गुरु की प्राप्ति के लिये आपको सर्वप्रथम स्वयं सद्शिष्य बनना परमावश्यक है।** तब आप पुरुषार्थ की ओर प्रेरित होते हैं।

पुरुषार्थ के चार तीर्थों—**अर्थ, धर्म, काम व मोक्ष** का वर्णन मैं पहले कई बार कर चुका हूं। प्रथम दोनों तीर्थों—अर्थ व धर्म में समस्त साधना व उपासना सकाम होती है। इस प्रकार एक कामना की पूर्ति होते ही कोई दूसरी कामना सामने खड़ी हो जाती है। अन्ततः जिज्ञासु सांसारिक

कामनाओं से मुक्ति पाकर पुरुषार्थ के तीसरे तीर्थ–**'काम'** पर पहुँचते ही मात्र ईश्वर को पाने की कामना करता है। वास्तव में उस समय इसको सद्गुरु मिलता है जो इसे ईश्वर के निराकार तत्त्व का आभास करवाता है। लेकिन इससे पहले वह जिज्ञासु को उसके अपने स्वयं के निराकार स्वरूप का आभास करवाता है। पाँच अवस्थाएँ ऐसी हैं जिनमें हम स्वयं में निराकार होते हैं, जैसे सुषुप्ति, मूर्छा, विस्मृति, मृत्यु एवं समाधि। अब निराकार तत्त्व के आभास की आवश्यकता क्या है? जैसा मैंने बहुत पहले यह उदाहरण दिया था कि कोई गहन निद्रा में सोया हो, सुबह जब उठे तो पूछते हैं–क्या अच्छी नींद आई? बोला–बड़ा आनन्द आया। काहे का आनन्द आया। रसगुल्ले खाये थे सोते हुए, बोला, नहीं खाये थे। कोई संगीत सुना था। बोला, नहीं। मैं तो सोया हुआ था। कोई पिक्चर देखी थी, आँखों से कोई सुन्दर दृश्य देखा था, नहीं वो भी नहीं देखा। तो आनन्द काहे का आया तुम्हें? कोई मिठाई नहीं खाई, किसी को स्पर्श नहीं किया, आँखों से कोई सुन्दर दृश्य नहीं देखा, कोई इत्र नहीं सूँघा। तो आनन्द काहे का आया? बस, आनन्द आया। शास्त्र ने इसे कहा है **अभावमय आनन्द। कुछ नहीं होता हमारे पास,** इन्द्रियों का कोई सुख नहीं होता लेकिन हम आनन्द में होते हैं और जब हम आनन्द का स्वाद ले रहे होते हैं तब हम सो रहे होते हैं। बहुत महत्त्वपूर्ण है, तब हम सो रहे होते हैं और जब हम जागते हैं तो उस आनन्द के प्रभाव की स्मृति मात्र होती है। अब योगी वहाँ से एक विचार लेता है कि अगर उस समय मैं जाग रहा होता और मैं उस मानसिक स्थिति में होता कि जब मुझे इन्द्रियों के सुख का अर्थ ही न होता और मैं अपने नाम-रूप की सृष्टि से परे होता तो कितना आनन्द आता! वहाँ से समाधि का दृष्टिकोण शुरू हुआ **सम+धि, धि** अर्थात् **बुद्धि**, जब आपकी बुद्धि स्थिर हो जाती है। यह सारी उथल-पुथल आपकी बुद्धि ही करती है, जिसका आप दुरुपयोग करते हैं। बुद्धि मात्र ईश्वर के प्रयोग के लिए दी गई थी। इसलिए इसमें अधिक हस्तक्षेप मत करिये, नहीं तो यह खराब हो जायेगी। बड़ा कुछ कर देगी यह। बड़ा कुछ करती है यह! कोई मंगल की दशा बताता है, कोई

शनि का प्रकोप बताता है, तो कोई शुक्र का। लोग अँगूठियाँ पहन लेते हैं। जैसा होता है, वही बता रहे हैं।

समाधि जहाँ पर **'धि'** सम हो जाये और आप जागृति में होते हैं उस अवस्था को कहा है **अभावमय आनन्द।** समाधि में जाग्रतावस्था में आप जो आनन्द लेते हैं वो आनन्द अभावमय है। उसमें आप अपनी पाँचों ज्ञानेन्द्रियों का नियंत्रण करते हैं, आँखें बन्द कर लेते हैं। आप मुख में कुछ स्वाद नहीं रखते, न कुछ सूँघते हैं। कान से संगीत सुनना बन्द कर देते हैं और त्वचा से स्पर्श नहीं करते। इन्हीं पाँच-ज्ञानेन्द्रियों का नियंत्रण करके, (दमन करके नहीं, मैं इन्द्रिय-दमन के पक्ष में नहीं हूँ) आप अपने इष्ट का ध्यान करते हैं और आप अभावमय आनन्द की स्थिति में होते हैं, इसको कहा **'समाधि'**। **समाधि आपका निराकार-स्वरूप है और उस समाधि में आप अनुभव करते हैं कि निराकार क्या है? और ध्यान रखिये जिस दिन आपको अपने निराकार का ज्ञान नहीं, आभास हो जायेगा, अनुभूति हो जायेगी, उस दिन आप ईश्वर के निराकार तत्त्व को जानने के, अनुभव करने के अधिकारी हो जायेंगे—अन्यथा नहीं।** सद्‌गुरु जिज्ञासु को उसी इष्ट के निराकार स्वरूप का आभास करवाता है, पहले जिसको उसने नाम-रूप में माना था। अब यह है अवस्था तीसरी, जिसे कहा है पुरुषार्थ का तीसरा आयाम **'काम'**; तो जिज्ञासा का तीसरा आयाम शुरू हो जाता है। पहला था **सामान्य जिज्ञासु**, फिर **जिज्ञासु** हुआ। यहाँ पर आते-आते वो **परम जिज्ञासु** बन जाता है। अब इसमें ईश्वर के बारे में जानने के लिये जो इच्छा पैदा हुई थी, जिज्ञासा पैदा हुई थी, उसके लक्षण प्रकट होने शुरू हो जाते हैं। उसको सद्‌गुरु उसके निराकार तत्त्व का, उस इष्ट के ईश्वरत्व का आभास करवाता है, जिसके बारे में मैंने कहा कि वो छः गुणों से परिपूरित है, **अति सौन्दर्यवान, अति ज्ञानवान, अति ख्यातिवान, अति ऐश्वर्यवान, अति बलवान, अति त्यागवान।** ईश्वरत्व के ये छः सद्‌गुण हैं और वह धर्मातीत, कर्मातीत, कालातीत, देशातीत, सम्बन्धातीत, अजर, अमर, अनादि, अनन्त, लिंगातीत, कर्त्तव्यातीत है—**ईश्वर का ईश्वरत्व ऐसा है**।

जब ईश्वर की कामना होती है तो उसके जीवन का सारा परिदृश्य बदल जाता है। यहाँ तक आते-आते वह दिव्य-पुरुष बन जाता है और उसका दिव्य आपा जाग्रत हो जाता है। उसकी पहचान क्या है—उसके सारे व्यक्तित्व दिव्य हो जाते हैं। इसके तथाकथित सारे विकार, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार दिव्य उत्प्रेरक बन जाते हैं। यह तो उसका भीतरी जगत है और इसका बाह्य जगत भी बदलना शुरू हो जाता है। जितने सम्बन्ध इसने नाम-रूप में बनाये थे, वो सब हट जाते हैं और उसके सम्बन्ध जो मात्र ईश्वर की ओर से होते हैं, वही होते हैं। वे सम्बन्ध कैसे होते हैं? या तो वे स्वजन होते हैं या स्वरूपजन होते हैं। वो उसके होते हैं। स्वार्थजन नहीं होते। सांसारिक सम्बन्ध अक्सर स्वार्थ के होते हैं। सांसारिक सम्बन्धों में सम्बन्ध पहले होता है, अपनत्व हो न हो। दिव्य आपा प्रकट होते ही इसको असीम की संतुष्टि मिल जाती है। ईश्वर ने जो कुछ भी दिया है, वे उसमें प्रसन्न रहते हैं। यहाँ से जिज्ञासु की चौथी अवस्था शुरू हो जाती है और वह महाजिज्ञासु बन जाता है। अब पुनः वह अपने इष्ट की ओर मुड़ता है। उसको साकार रूप में पाना चाहता है।

इष्ट के निराकार ईश्वरत्व का बोध होने के बाद, उसके जीवन का मात्र एक ही उद्देश्य रह जाता है और वह है अपने **'यार से मिलना'**। यहाँ से चौथा तीर्थ शुरू होता है **'मोक्ष'।** परन्तु यहाँ पर एक घटना घटित होती है कि वह स्वयं में सद्शिष्य नहीं रहता और न ही कोई इसका सद्गुरु होता है। सद्गुरु इसको मोक्ष के द्वारा पर छोड़ देता है। वहीं से होता है इसका सच्चखण्ड में प्रवेश। जहाँ जप, तप, दान, पुण्य, हवन-यज्ञ, साधना एवं उपासना के समस्त प्रकरणों का अभिमान छूट जाता है। **अमरत्व पद** के लिए उसको सारा जप, तप के अभिमान का और समर्पण का भी समर्पण करना पड़ता है। मोक्ष पद पर आते-आते जप, तप, दान, पुण्य, यज्ञ, हवन, सब बेकार लगने लगते हैं, तब वह अपने इष्ट को रूबरू मिलना चाहता है। उस इष्ट को जिसके ईश्वरत्व का ज्ञान इसको किसने करवाया—सद्गुरु ने। जिस ईश्वर को एक नाम एक रूप में माना था, वह असंख्य नाम,

असंख्य रूपों में नज़र आने लगता है और उसके साथ ही यह स्वयं को भी असंख्य नाम, असंख्य रूपों में देखने लगता है। तेरे असंख्य नाम, असंख्य रूप हैं, मेरे भी असंख्य नाम, असंख्य रूप हैं। यह स्वयं भी साकार में निराकार हो जाता है। इस समय यह अन्तिम मोक्ष पद का अधिकारी हो जाता है और प्रवेश करता है सच्च खंड में, जहाँ उसकी निगाह होती है, मात्र अपने इष्ट पर कि हे प्रभु ! मैं तुम्हें मिलना चाहता हूँ। सच्चखण्ड में प्रवेश के बाद भी कई जन्म तक इसको अपने इष्ट की झलक नहीं मिलती, कई जन्म वहाँ भी खड़ा रहना पड़ता है:—

''सबकी साकी पे नज़र हो यह ज़रूरी है मगर,
सब पर साकी की नज़र हो यह ज़रूरी तो नहीं।''

कभी-कभी किसी पर नज़रे इनायत होती है तो एक झलक मिल जाती है, उस झलक को पाने के बाद क्या होता है, कि यह झल्ला हो जाता है। आर्त्तनाद उठती है कि हे प्रभु ! **बहुत अरसे से, बहुत वर्षों से, बहुत जन्मों से मैं तेरा इंतज़ार कर रहा हूँ** और तेरी झलक मुझे नहीं मिली ! अब मैं जान गया हूँ कि तेरे दर्शन के मैं योग्य नहीं हूँ। हे महाकारण ! कोई तो कारण होगा जो तुम मुझे दर्शन नहीं देते हो !

''माना तुम्हारी दीद के काबिल नहीं हूँ मैं,
तू मेरा शौक देख, मेरा इंतज़ार देख।''

लेकिन मैं अब तुम्हारा इंतज़ार करूँगा। यदि मेरा कोई कर्म क्षेत्र हो, तो वो तुम से तुम तक हो। चलूँ तुझसे, जाऊँ तुझ तक और कर्म क्या हो ? सारे परिदृश्य बदल जाते हैं। कर्म क्या हो ? कि मैं तेरी उँगली थामे रखूँ, यही मेरा कर्म हो और ज्ञान क्या हो मुझे कि मेरे तुम ही सब कुछ हो। जो कुछ भी मेरा है वो तुम्हीं हो, यही मेरा ज्ञान हो। तुम मुझे दीदार मत देना, क्योंकि तुम प्रदूषित हो जाओगे। मुझे पत्थर की एक शिला बना दो। भक्तों की बहुत बड़ी माँग नहीं होती—मुझे पत्थर की शिला बना दो, क्यों ? जिससे मुझे जीवन का कोई व्यवहार न करना पड़े। उस पत्थर की शिला में एक छोटा सा हृदय दे दो। जो मात्र, तुझे और तुझे ही याद करे और उसमें दो

नेत्र बना दो, जो तुझे याद करके रोयें। एक काम और कर दो प्रभु ! उन नेत्रों के साथ आसुँओं का एक समुद्र जोड़ दो ताकि मैं तुम्हें याद करता रहूँ, रोता रहूँ। कितनी छोटी सी माँग है !

मोक्ष क्या है ? कृपया ध्यान दीजिये ! जब यह अपना सारा कुछ दाँव पर लगा देता है, इसको न अपने नाम की इच्छा होती है, न यश की, न धन की, न सम्पदा की, न धर्म की, न कर्म की। इन सबसे मुक्त हो जाता है यह। इस वक्त उसका प्रारब्ध समाप्त हो जाता है। आपके सम्बन्ध भी वही होते हैं जो ईश्वर के द्वारा होते हैं। आपके सम्बन्ध बदल जाते हैं और तब मिलती है असीम की सन्तुष्टि। इसकी मान्यतायें बदल जाती हैं क्योंकि हम अपनी मान्यताओं में फँसे हैं। अब यह मान्यतायें ईश्वरीय मान्यतायें हो जाती हैं। यह देह किसकी ईश्वर की, कि आप मुझे क्यों मिले ? ईश्वर-इच्छा थी। आप बिछुड़े क्यों ? ईश्वर-इच्छा थी। हम मरेंगे कब ? जब ईश्वरीय इच्छा होगी, पैदा कब होंगे ? जब ईश्वर-इच्छा होगी। **आपकी सारी मान्यतायें ईश्वरीय हो जाती हैं। आप मृत्यु से अमरत्व-पद की ओर बढ़ना शुरू कर देते हैं।** मृत्यु की तरफ कब अग्रसर हुए ? जब आप ईश्वर के विमुख हुए और आपने देहाध्यास और देहाधिपत्य को पाल लिया लेकिन ईश्वर के सम्मुख होते ही आपकी सारी मान्यताएँ ईश्वरीय हो जाती हैं। **आप अमरत्व-पद, जिस पर आपका जन्मसिद्ध अधिकार है** उसकी तरफ अग्रसर होने लगते हैं और आपकी बुद्धि मात्र उन ईश्वरीय तीन कार्यों के लिए सुरक्षित रह जाती है। जिस बुद्धि के, जिस सिर के दुरुपयोग से आपने सारे संसार को जन्म-जन्मांतरों तक झेला, स्वयं को झेला, अपनी देह को झेला। मात्र बुद्धि के दुरुपयोग से हम जन्म-जन्मांतरों में धक्के खाते रहे हैं। सारी दुविधा हमारे सिर से ही शुरू होती है। यहाँ एक कथा मुझे याद आ रही है, कृपया सुनिए :—

कोई स्त्री अपने पति और भाई के साथ अपने मायके जा रही थी, उसका भाई उसको लेने आया था, तो रास्ते में जंगल था और जंगल में चलते-चलते थक गये और एक पेड़ के नीचे बैठ गये तीनों विश्राम के लिये।

इतने में उसके पति को एक पुराना मंदिर नज़र आया और वह मंदिर के अंदर चला गया। मंदिर में जाकर उसने देखा कि वहाँ माँ काली की भव्य प्रतिमा थी, अलौकिक प्रतिमा, चमत्कारिक प्रतिमा थी और उसको देखकर वो आविर्भूत हो गया और उसने सोचा अब संसार से क्या लेना है, इतने सुन्दर दर्शन करने के बाद इस संसार में क्या रखा है? उसने माँ काली के हाथ से खड्ग उठाई और अपना सिर काट दिया। जब एक-दो घंटे तक वो नहीं लौटा तो उस स्त्री ने अपने भाई को भेजा कि देखो जाकर क्या हो गया है? उसके बाद उसका भाई गया, वह भी भला आदमी था, उसने जाकर देखा कि उसका जीजा वहाँ सिर देकर पड़ा हुआ है। वह बड़ा विक्षिप्त हुआ कि अब मैं जाकर अपनी बहिन को क्या मुँह दिखाऊँगा। उसने भी वही तलवार उठाई और अपना सिर काट दिया। काफी देर बीतने के बाद वो स्त्री स्वयं गई कि देखती हूँ, दोनों अंदर क्या कर रहे हैं, अभी तक लौटे क्यों नहीं? वह जाकर अंदर देखती है कि उसका भाई और उसका पति दोनों के सिर और धड़ अलग-अलग पड़े हुए हैं। उस दृश्य को देखते ही वह विदीर्ण हो गई। उसने सोचा, मेरा एक ही भाई था, वह भी चला गया, मेरा पति भी नहीं रहा। मैं जिन्दा रहकर क्या करूँगी? उसने उसी खड्ग को उठाया और अपना सिर काटने लगी, तो उसी समय आकाशवाणी हुई कि रुक जाओ! उसने देखा कि यह माँ के विग्रह से ही आवाज़ आ रही है। पूछा, क्यों? बोली, तुम्हारा पति और भाई दोनों मूर्ख थे। तुम यह मूर्खता मत करो। गृहस्थ में रहते हुए भी तुम मेरी, (ईश्वर की) प्राप्ति कर सकती हो। वह बोली, माँ! अब मैं ज़िन्दा कैसे रहूँगी? माँ बोली, तुम इन दोनों को जिन्दा कर सकती हो। मेरे चरणों के पास जो जल पड़ा है, वह इन पर छिड़क दो और इनका सिर इनके धड़ पर लगा दो, ये दोनों ज़िन्दा हो जायेंगे। तो उस स्त्री ने वैसे ही किया। जल छिड़का और सिरों को धड़ पर लगा दिया। वे दोनों इस प्रकार उठे जैसे किसी गहन निद्रा से उठे हों। बात सिर के अहम् पर चल रही है। तीनों ने देवी को प्रणाम किया और वे अपने गन्तव्य स्थान की ओर चलने लगे, रास्ते में वो स्त्री चीख मार कर रो पड़ी। उससे एक

भयानक भूल हो गई, उसने अपने पति का सिर अपने भाई के धड़ पर रख दिया था और अपने भाई का सिर अपने पति के धड़ पर रख दिया था। विक्षिप्त हो गई, कि मैं क्या कर बैठी? दोबारा देवी के मन्दिर में आई और रो पड़ी कि माँ! मुझ से भयानक भूल हो गई। अब मैं क्या करूँ, मेरा पति कौन है, मेरा भाई कौन है? तो उसको देव-वाणी हुई कि जिसके धड़ पर तुम्हारे पति का सिर है वो तुम्हारा पति है और जिसके धड़ पर तुम्हारे भाई का सिर है वो तुम्हारा भाई है। **महत्त्वपूर्ण सिर है।** आपकी भुजाएँ महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। आपके हाथ-पैर महत्त्वपूर्ण नहीं हैं क्योंकि इन्होंने सिर के आदेश पर ही चलना है।

हर व्यक्ति के अंदर एक पशु छिपा हुआ है। हमारे यहाँ जब हवन होते हैं तो हवनों का महात्म्य क्या है? अंत में हम बलि देते हैं। कई लोग पशु की बलि देते हैं। पशु-बलि का अर्थ यह नहीं था कि हम जानवर मारकर वहाँ चढ़ायें। पशु-बलि का अर्थ था कि हम अपने अंदर के पशु की बलि दें, कि हे प्रभु! इस सिर में जो पशु घुसा हुआ है उसकी बलि ले लो। मुझे मानव बना दो। **यदि हम आनन्दपूर्वक जीवन जीना चाहते हैं तो हमें पाँच-महाभूतों का पूजन करना आवश्यक है।** इनका अनुसरण करिये, आप परम ऐश्वर्यवान जीवन बिताने के अधिकारी हो जायेंगे। श्रीफल, नारियल, उसका विच्छेदन करके, उसको काट के बलि दीजिये। तो उसका बहुत महात्म्य है। आपके सिर की बलि है, कि हे प्रभु! इस सिर ने ही मुझको सारे विक्षेप में डाला था। मैं यह हूँ, मैं वो हूँ क्योंकि इस बुद्धि का बल आपके सिर में है और आपका सिर आपके पूरे जीवन को नियन्त्रित करता है। इस सिर को ईश्वर के अर्पित कर दीजिये। आपका देहाध्यास और देहाधिपत्य ईश्वर के चरणों में समर्पित हो जायेगा और आप सद्मानव बन जायेंगे, क्यों? क्योंकि जब आप ईश्वर के विमुख हुए तो आपको देहाध्यास हुआ कि 'मैं देह हूँ'। आपका मरण, आपका जन्म, आपकी विवाह-शादी, आपकी शिक्षा, आपकी आर्थिक स्थिति, आपके धर्म-कर्म, यह कुछ भी आपके हाथ में नहीं है, तो आपकी देह आपकी कैसे हो सकती है? इस अभिमान ने आपको

जन्म-जन्मांतरों तक काल-चक्र में घुमाया है। रोज़ हवन में या जोत के सामने आप अपने इस सिर का समर्पण करिये। प्रभु, आपके सिर को बदल देंगे। सारी दुविधा, सारा विक्षेप, सारा त्रास, सारी बिमारियाँ और जितने भी तनाव हैं, वे सब इस सिर से शुरू हुए हैं, क्योंकि उसमें अहम् का कीड़ा पला, कि 'मैं देह हूँ'। कभी न कभी सुनवाई हो जायेगी। आप समस्त भारतीय संस्कृति के द्योतक एवं भारतीय संस्कृति के पोषक याद रखिये, आप उस मोक्ष पद को, उस अमरत्व पद को पाने के अधिकारी हैं। क्योंकि आप ऋषियों-महर्षियों की, देवर्षियों की, राजर्षियों की, ब्रह्मर्षियों की संताने हैं।

पुनर्जन्म मात्र भारतीय संस्कृति के पोषकों का होता है और किसी का पुनर्जन्म नहीं होता। इसलिए ऐ ऐश्वर्य के अधिकारियो ! ऐ अमरत्व पद को पाने के मुस्तहक लोगों ! ऐ भारतीयो ! ऐ दिल्लीवासियो ! आज मैं और आप सब सौभाग्यशाली हैं कि हमने एकत्रित होकर उस मोक्ष, अमरत्व पद के श्रवण का रसास्वादन किया है। हम अपनी समस्त दैहिक, दैविक, भौतिक, बौद्धिक शक्तियों से अपने उस परम-स्वरूप को, उस अमरत्व पद को पाने के अधिकारी हैं। बार-बार इस जन्म-मृत्यु के चक्कर से छूटकर हम अमरत्व पद को प्राप्त करें, जो हमारे लिए बहुत आसान है। मैं सबको यह आशीर्वाद देता हूँ, शुभकामनायें देता हूँ कि हम सब अन्ततः अमरत्व पद को प्राप्त करें।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(27 जनवरी, 3 , 24 फरवरी, 3 , 17 मार्च, 2002)

दिव्य-जीवन

इष्टादेश एवं आप सबकी प्रेरणा से बहुत अद्‌भुत एवं अति रहस्यमय विषय आपके सम्मुख प्रस्तुत करूँगा। आपकी अति एकाग्रता परमावश्यक है। विषय है—**दिव्य-जीवन**। सर्वप्रथम हमको यह ज्ञात होना चाहिए कि जीवन की परिभाषा क्या है, जीवन क्या है, मानव-देह का जीवन से क्या ताल्लुक है? जीवन की क्या धारायें हैं, क्या उनमें कोई हस्तक्षेप, उनमें कोई परिवर्तन सम्भव है? यदि परिवर्तन चाहिये तो क्यों चाहिये? यदि हम जीवन से भयभीत हैं, त्रसित हैं, दुःखित हैं, तो क्यों हैं, यदि हम सुखी हैं तो क्यों हैं, यदि हम आनन्दित हैं तो क्यों हैं, आनन्द क्यों है, सुख क्यों है तथा दुःख क्यों है? यह सब हमको स्पष्ट होना परमावश्यक है। इस विषय में हमारे भारतीय मनीषियों का जो वृहत चिंतन और मनन है, इष्ट-कृपा से आपके सामने प्रस्तुत करूँगा।

जैसाकि मैं अपने प्रवचनों में बहुत बार इंगित कर चुका हूँ कि मानव-शिशु माँ के गर्भ में लगभग नौ महीने सात दिन रहने के बाद उत्पन्न होता है, जिसे हम कहते हैं **जन्म** और जिसका जन्म होता है उसकी **मृत्यु** अवश्यम्भावी है। जन्म और मृत्यु के बीच की अवधि को हम कहते हैं **जीवन-काल।** जीवन-काल की, जीवन की यह परिभाषा, यह अवधि, मात्र भौतिक है। यदि हम मानव-देह का सूक्ष्म विश्लेषण करें तो हमें ज्ञात होता है कि ईश्वर के पाँच निराकार प्रतिनिधियों—**पृथ्वी, जल, आकाश, वायु एवं अग्नि** की मुट्ठी है यह साकार मानव-देह। जब जीवन-लीला समाप्त होती है, मानव-देह को जला दिया जाता है, तो यह देह इन्हीं पाँच-महाभूतों में विलीन

हो जाती है। **जल,** जल में, **अग्नि**, अग्नि में, **आकाश**, आकाश में, **वायु**, वायु में और रह जाता है **पृथ्वी** तत्त्व जिसको हम भस्मी अथवा राख कहते हैं। उसको हमारी संस्कृति के अनुसार गंगा, यमुना में बहा दिया जाता है। तो अर्थ यह हुआ कि हम समस्त मानवों का आरम्भ एक ही है, कि आपकी देह कहाँ से बनी? कि पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि व आकाश से, कि मेरी देह भी ऐसे ही बनी है, कि आप अन्ततः क्या बन जायेंगे? कि डेढ़-दो किलो राख। बोला, मैं भी ऐसे ही बनूँगा। एक शहंशाह की राख भी वही होगी जो एक भिखारी की होगी। एक शासक की राख भी वैसी होगी जैसी शासित की होगी। एक डाकू की भी वही राख होगी जो एक साधु की होगी। हमारा आदि एक है, हमारा अंत एक है तो यह मध्य अलग-अलग क्यों हैं? दो बड़े महत्त्वपूर्ण बिन्दु हैं। **एक है हमारा प्रारम्भ और दूसरा, हमारा अंत।** जब आदि और अंत एक ही है तो यह मध्य अलग-अलग क्यों हैं? वास्तव में अगर देखा जाये तो मध्य भी एक ही है। एक-दूसरे की परिपूरक विधाओं के रूप में उस परमात्मा ने खेलने के लिए असंख्य मानव निर्मित किये। एक शासक बनाया तो अन्य शासित भी बनाए। एक वक्ता बनाया तो अनेक श्रोता भी बनाए। यदि हम इस कक्ष में देखें, आप श्रोतागण बैठे हैं और मैं वक्ता बनकर बैठा हूँ। मेरे बिना आपका यहाँ बैठने का कोई औचित्य नहीं है और आपके बिना मेरा यहाँ बोलने का कोई औचित्य नहीं है। तो यह मध्य भी एक है।

वह निराकार परम ब्रह्म ही असंख्य-असंख्य मानवों के रूप में लीला कर रहा है। मध्य में यदि वह वक्ता बना तो उसको श्रोता भी बनना पड़ा। यदि कोई चिकित्सक बनाया तो उसको रोगी भी बनाने पड़े। चिकित्सक लोग बहुत खुश होते हैं कि हम जनता की सेवा कर रहे हैं और यह नहीं मालूम कि भगवान ने जब एक चिकित्सक को बनाया तो उसको कई रोगी पैदा करने पड़े। एक पुलिस ऑफिसर बनाया तो कई चोर पैदा करने पड़े। एक अध्यापक बनाया तो उसके लिए विद्यार्थी बनाये। तो यह परिपूरक विधायें हैं जिनके बिना खेल चल ही नहीं सकता और जब वह चाहता है तो

रूपान्तर भी कर सकता है। कभी शासित शासक भी बन जाता है और कभी डाक्टर स्वयं मरीज़ बन जाता है और मरीज़ डाक्टर बन जाता है। जब वह चाहता है तो रूपान्तर कर देता है। यह मध्य का खेल है जीवन। इस मध्य में जो हमारा अलग-अलग प्रकटीकरण होता है, उसका प्रकटीकरण कहाँ से होता है, यह बहुत महत्त्वपूर्ण विषय है।

जिस प्रकार कि कोई कलाकार, लेखक अथवा उपन्यासकार, एक उपन्यास या नाटक लिखता है, उसमें कोई हीरो बनता है, कोई हीरोइन बनती है, कोई विलेन बनता है, कोई सेवक बनता है, कोई कुछ बनता है, कोई कुछ बनता है या बनाया जाता है और उसके बाद मंच पर नाटक होता है। सब अपना-अपना अभिनय करते हैं, आनन्दमय अभिनय होता है। इसी प्रकार एक ही महाशक्ति ईश्वर ने समस्त मानवों की रचना आदि से अंत तक, एक जैसी की। यह बहुत गम्भीर विषय आपके सामने रख रहा हूँ कि **हमारा आदि और अंत एक ही है,** यह मध्य में जो अनेकरूपता हमको दृष्टिगत होती है, यह भी एक ही है, लेकिन खेल के लिए विभिन्नता आवश्यक थी। यदि कोई कहे कि मैं ज्ञानी हूँ तो इसका अर्थ है कि उसके सामने अज्ञानी भी चाहिये। तो स्वयं को ज्ञानी कहना या स्वयं को अज्ञानी कहना दोनों ही अज्ञान के द्योतक हैं। जो ज्ञान और अज्ञान दोनों का ज्ञाता है, वह परमज्ञानी है। इस प्रकार ईश्वर ने मध्य का खेल भी एक ही बनाया, लेकिन यह सब आनन्दमय खेल उस सच्चिदानंद ने जिस प्रकार रचा, उसमें जीवन की तीन धारायें हो गई :–

प्रथम धारा में बहने वाले मानव दुखित, त्रसित, भयभीत, रुग्ण, कष्टों एवं पीड़ाओं में जीवन जीते हैं। चिन्ता में, असंतोष में, अतृप्ति में, आसक्तियों व अशान्ति में जीवन जीते हैं। वे लोग हमेशा दुःखी ही रहते हैं। जिस आनन्द में, परिपूरक विधाओं में ईश्वर ने मानव की संरचना की थी, उसका आदि एक था, अन्त एक था और मध्य भी एक ही था **जो आनन्दमय था।** लेकिन पहली बहुत विशाल और वेगवती धारा बही जिसमें मानवों ने कष्टपूर्वक जीवन बिताया। जिनके पास कुछ था वे भी कष्ट में थे और

जिनके पास कुछ नहीं था, वो तो कष्ट में थे ही। **दूसरी धारा** बही मानव-जीवन व्यतीत करने के हिसाब से, जिसमें सुखी जीवन बिताने वाले थे और **एक तीसरी** बहुत छोटी सी धारा और बही, जिसमें वे लोग थे, जो सुख-दुख से ऊपर आनन्दमय जीवन व्यतीत करते हैं। तो ये तीनों धारायें क्यों बहीं ? यदि उस सच्चिदानंद की सृष्टि में उसी के द्वारा सारा निर्माण, पालन और संहार हुआ तो यह तीन धाराओं का अर्थ क्या है? कहाँ गलती हुई, इसका निर्णय आज हम करेंगे।

ईश्वर ने मानव में चमत्कारवश जैसाकि मैं कई बार कह चुका हूँ भूल से बुद्धि रख दी। इस बुद्धि के तथाकथित विकसित होते ही मानव ने एक भयानक भूल कर दी, कि इस देह पर अपना अधिकार जमा लिया कि **'यह देह मेरी है'** न केवल मेरी है बल्कि **'मैं देह हूँ',** इसको कहा है **देहाध्यास।** जबकि देह उस अकाल पुरुष ने, उस परमात्मा ने बनाकर इसको दी थी और इस देह को देने का एक अर्थ था। हम मानव भी जब किसी वस्तु का निर्माण करते हैं तो उस निर्माण के पीछे हमारा कोई न कोई कारण अवश्य होता है और इतनी सुन्दर, विशालकाय, पूर्णतया वातानुकूलित और पूर्णतया स्वचलित देह, जो नौ महीने **सात** दिन में एक सेल से निर्मित हुई, तो इसका कोई न कोई कारण अवश्य होगा। ईश्वर के पाँच निराकार महाभूतों से एक साकार रचना, वह अपने में एक बहुत बड़ा ईश्वरीय चमत्कार था। मानव-बुद्धि मात्र इसलिए दी कि ऐ मानव ! मैं किस प्रकार तुम्हें खिलाता हूँ, इस देह को मैं किस प्रकार इस्तेमाल करवाऊँगा? तू इसको देख और वाह-वाह कर, मेरी प्रशंसा कर, क्योंकि पशु ईश्वर की प्रशंसा नहीं कर सकते। तो इसने मूर्खतावश, अभिमानवश, अहंकारवश, संस्कारवश, प्रारब्धवश बुद्धि का गलत प्रयोग करना आरम्भ कर दिया, जोकि इसके लिए थी ही नहीं।

बुद्धि के मात्र तीन कार्य थे, जैसाकि मैं कई बार कह चुका हूँ, **पहला,** कि ऐ मानव ! तेरे हाथ में कुछ नहीं है। **दूसरा,** जो भी तेरे द्वारा करवाना होगा वह मैं करवाऊँगा और उसका लक्षण क्या होगा कि वह कार्य स्वतःभाव

में होगा और वह कार्य तीन आनन्दों से युक्त होगा। उस कार्य के प्रारम्भ में आनन्द, मध्य में आनन्द और कार्य की समाप्ति के बाद भी आनन्द होगा। **तीसरा, कार्य था कि तू मात्र उसकी वाह-वाह कर।** लेकिन इस बुद्धिजीवी ने बुद्धि का दुरुपयोग किया और बुद्धि भ्रष्ट हो गई। खराब बुद्धि ने इसे प्रथम वृहत, महावृहत जीवनधारा (जिसमें कष्ट, रोग, दोष, दुःख, भय और न जाने क्या-क्या था) में बहने के लिए मज़बूर कर दिया। उस बुद्धि के अहम् ने इसको मलिन कर दिया। ईश्वर ने वह जीवनधारा सबके लिए आनन्दमय बनाई थी। लेकिन बुद्धि के दुरुपयोग ने इस धारा को दुःखों में बदल दिया, क्योंकि इसने बुद्धि के अहम् से अपनी देह पर अनधिकृत कब्ज़ा कर लिया। हम सभी अपराधी हैं। **'यह देह मैं हूँ'** जैसे ही यह अभिमान हुआ तो वहीं से सज़ाएँ शुरू हो गईं। उसने एक सज़ा सुना दी, कि इस मूर्ख ने इस चमत्कारिक देह पर अनधिकृत कब्ज़ा किया है तो जो प्राप्तियाँ इसे थीं और जो प्राप्तियाँ इसने अहम्वश कीं, उन दोनों के भोग का अधिकार छीन लो! जीवन, दिव्य कानूनों के अन्तर्गत चलता है, कोई सुप्रीम कोर्ट या सरकार के कानूनों के तहत नहीं चलता। इसके लिए कोई संसद नहीं बैठती कि आज यह बिल पास होगा। सर्वाधिकार उस ईश्वर के हाथ में है, जिसने बुद्धि के अहम् से, मूर्खतावश इस मानव-देह परअधिकार कर लिया कि मैं यह देह हूँ, उसको कहा **देहाध्यास** और इस अपराध की सज़ा क्या मिली? कि इस मूर्ख अंहकारी की देह और उससे सम्बन्धित समस्त सांसारिक सुखों को भोगने का अधिकार छीन लो। जो-जो अपने नाम-रूप के अध्यास में फँसे हुए हैं अपनी बुद्धि के अहम्वश, कि मैंने इतनी डिग्रियाँ लीं, इतनी बड़ी पोस्ट ले ली और मैंने बहुत बड़ा जुगाड़ लगाकर दिल्ली में आकर बिल्डिंग खड़ी कर ली। पाकिस्तान से मैं धोती-लोटा लेकर आया था, अब मैं बहुत बड़ा अफसर हूँ। वह पद उसको खाने को दौड़ता है, वह भवन इसको प्रवेश नहीं करने देता। सारी उम्र मुकदमा चलता है। जहाँ अहम् की मोहर लगी, वहीं आपके जीवन की सारी प्राप्तियों के अधिकार आपसे छिन जाते हैं। ये दिव्य कानून आज से लाखों वर्ष पहले हमारे ऋषियों-महर्षियों ने हिमालय की

कन्दराओं में बैठकर लिख दिये। तो वो लोग जिनकी बुद्धि अहंवश मलिन हो जाती है कि **मैं देह हूँ,** इसको कहा है मलिनता। बुद्धि मलिन हुई और जीवन विक्षिप्त हो गया। मल के साथ विक्षेप का दामन-चोली का साथ है। जहाँ अहम् आया कि **'यह देह मैं हूँ'** तो समझिये वो आदमी विक्षिप्त होगा, तनावित होगा, भयभीत होगा। भले ही चेहरे से वह कितना भी मुस्कुराये लेकिन अंदर से वह भयभीत होगा। उसको कोई न कोई डर ज़रूर लगा होगा। बुद्धि मलिन हुई, जीवन विक्षिप्त हुआ और मन आच्छादित हो गया। ईश्वर ने एक प्रतिनिधि रखा हुआ है सबके अंदर **'मानव-मन'** जो ईश्वरीय था। जो एक चमकदार शीशे की तरह स्पष्ट और पारदर्शी था, **जिसमें यह अपना सच्चिदानंद-स्वरूप देख सकता था, हर रोज़।** अपनी खूबसूरती व हुस्न का दर्शन करके आविर्भूत हो सकता था, वो मन मलिन हो जाता है। वहाँ इसका खूबसूरत चेहरा इसको गन्दा नज़र आने लगता है और यह स्वयं से नफरत करने लग जाता है और रात को दारू पीता है। लोग कहते हैं, डॉ. साहब आपके दर्शन करने आये हैं। मैंने कहा, मेरे दर्शन तो हो जायेंगे, पहले अपने दर्शन करो! जब अपने दर्शन कर लोगे तो किसी के दर्शन की आवश्यकता नहीं पड़ेगी, क्योंकि तुम सब बहुत खूबसूरत हो। जब इसको अपना स्वरूप नज़र आ जाता है, अपने सच्चिदानंद-स्वरूप की झलक मिलती है तो यह झल्ला हो जाता है तो इसको किसी के दर्शन करने की ज़रूरत नहीं रहती। जिसने खुद के दर्शन नहीं किये वह अपने इष्ट के दर्शन भी नहीं कर सकता। अपने दर्शन होना बहुत आवश्यक है और अपने दर्शन के लिए **आपका मानस-पटल बहुत पारदर्शी एवं स्वच्छ होना चाहिये। वह तब होगा जब आपकी बुद्धि की मलिनता समाप्त होगी। यह दिव्य कानून है।**

जब कभी जीवन में कष्ट आते हैं, आपसे कोई नफरत करता है, आपका सगा-सम्बन्धी तो आप समझ लीजिये, आपको स्वयं अपने से नफरत हो गई है। लोग शिकायत करते हैं, अमुक व्यक्ति मुझसे घृणा करने लगा है, मेरी बीबी मुझसे घृणा करती है, मेरे बच्चे मुझको पसन्द नहीं करते,

तो समझ लीजिये आपकी देह भी आपको पसन्द नहीं करती है। जब आपकी देह आपको प्यार करने लगेगी तो सब आपको प्यार करने लगेंगे। बहुत बड़ा रहस्य रख रहा हूँ नारकीय जीवन से निकलने के लिए, यदि आपने जीवन के प्रारम्भ में और मध्य में कष्ट झेले हैं, दुःख झेले हैं लेकिन उसका अंत यदि हसीन है, खूबसूरत है तो समझिये आपका सारा जीवन खूबसूरत बीता है:—

''आग़ाज़ को कौन पूछता है, अंजाम अच्छा हो ज़िन्दगी का''

जीवन का अंत महत्त्वपूर्ण है। यदि जीवन के अंत में यह परम सत्य आपको किसी संत की कृपा से पल्ले पड़ जाये, मात्र सत्य से अवगत होना, श्रवण करना ही महत्त्वपूर्ण नहीं है, उसका अनुभव होना परमावश्यक है। उसका पल्ले पड़ना बहुत आवश्यक है। अन्तिम श्वास में भी सत्य पल्ले पड़ जाये तो आपका जीवन सार्थक है अथवा निरर्थक है, नकारात्मक है। किसी महापुरुष ने एक दृष्टांत सुनाया था, आपको सुनाऊँगा, कृपया ध्यान दीजिये। एक राजा जंगल में शिकार करने गया और वो भटक गया। उसके साथी छूट गये उससे। वह भूखा, प्यासा, घने जंगल में रास्ता भूल गया और विश्राम के लिए एक पेड़ के नीचे बैठ गया। घोड़ा बाँध दिया उसने, तो वहाँ एक गरीब किसान इसको मिला। उस किसान ने इसको जल पिलाया, कुछ खाने के लिए दिया और रास्ता बता दिया। क्योंकि वो राजा था, उसने किसान को एक राजचिन्ह दे दिया, कि यदि तुम्हें कोई कष्ट हो तो हमारे पास आ जाना। कालान्तर में अकाल पड़ गया, खेती-बाड़ी नहीं हुई, भूखे मरने की नौबत आ गई, तो किसान की पत्नी ने उससे आग्रह किया कि आप राजा के पास जाइये, ये राजचिन्ह लेकर, शायद वो आपकी कोई मदद कर दें। किसान राजा के पास गया तो राजा ने उसको एक चन्दन का बाग दान में दे दिया, कि यह बाग तुम्हारा हुआ। उस मूर्ख को यह मालूम नहीं था कि चंदन क्या होता है? वह हर रोज़ वहाँ से लकड़ी काटने लगा और बाज़ार में बेच देता। इससे जो धन मिलता उससे घर में खाने-पीने का सामान ले आता था। इस प्रकार निरन्तर वो चंदन का जंगल कटने लगा। कुछ वर्षों

बाद राजमाता का देहान्त हुआ। राजा ने महामंत्री से सलाह की, कि राजमाता के दाह-संस्कार के लिए चंदन की लकड़ी चाहिये, लेकिन वह बाग तो हम एक किसान को दे चुके हैं। मन्त्री ने कहा, "महाराज ! उससे हम खरीद लेते हैं। बोला, ठीक है, उससे चंदन की लकड़ी खरीद लाओ। जब वो मंत्री उसके बाग में पहुँचता है, तो देखता है कि सारा बाग कट चुका है। अन्तिम एक वृक्ष मात्र बचा था, जिसे वह रोज़ की तरह कुल्हाड़ी से काट रहा था, बेचने के लिए, केवल डेढ़-दो रुपये में। मंत्री ने कहा कि भैया ठहरो ! हमको यह पूरा पेड़ चाहिये। आप उसका कितना पैसा लेंगे ? मंत्री के पहनावे से वह समझ गया कि राज-दरबार का आदमी है। उसने कहा जितना भी दे दीजिये और मन ही मन सोचा चार रुपये में बेचता हूँ। शायद यह दस-बारह रुपये दे दे ! तो मंत्री ने कहा कि हम इसका पचास हज़ार रुपया देंगे। उसके हाथ से कुल्हाड़ी छूट गई, कि पचास हज़ार क्यों देंगे आप ? उसने कहा कि भैया ! आप घबराइये मत ! हम दस हज़ार और दे देंगे, साठ हज़ार ले लेना। उसने पूछा कि इतना क्यों देंगे आप ? तो मंत्री ने कहा कि यह चंदन की लकड़ी है, बड़ी दुर्लभ है। तो उस अन्तिम पेड़ की लकड़ी ने उस निर्धन किसान को धनवान बना दिया। यदि अन्तिम श्वास पर भी आपको अपनी साँसों की कीमत मालूम चल जाये, अरे ! आपकी दुख-दुविधायें समाप्त हो जायेंगी। आप आनन्दमय जीवन समाप्त करेंगे और आपका आनन्द में ही जन्म होगा, आप प्रारब्ध से मुक्त हो जायेंगे।

जीवन को अन्तिम श्वास तक हम दुर्जनों की संगति में, दुराग्रह में, दुर्व्यसनों में, दुराचार में, दुर्भावों में, काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार में, चुगली में, निन्दा में, वैर-वैमनस्य में किस प्रकार कौड़ियों के भाव निकाल देते हैं। अपना जीवन व्यर्थ कर देते हैं और अपने आपको बहुत बुद्धिमान समझते हैं। हमें यह नहीं मालूम कि हमारी एक-एक श्वास की कीमत क्या है ? अरे ! जब एक श्वास की कीमत मालूम हो जायेगी, आप उसी समय शहंशाह हो जायेंगे। आनन्दित हो जायेंगे आप ! **'मल, विक्षेप, आवरण'** समाप्त हो जायेगा। उस किसान को कीमत मिली तो अनुभव हुआ कि

वाकई इस चन्दन के पेड़ की इतनी कीमत है। यदि वह मंत्री मात्र कीमत बता देता, मात्र कीमत बताना काफी नहीं था, उसकी कीमत मिलना भी आवश्यक था। बहुत महत्त्वपूर्ण है, जब आपको आत्मानुभूति हो। संत, महापुरुष, सद्गुरु बहुत बार ये बातें सुनाते हैं लेकिन एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल दी जाती हैं। बुद्धि का अहम् नहीं जाता, देहाध्यास नहीं जाता तो इसलिए अनुभूति नहीं होती। जब तक स्वयं अनुभूति नहीं होगी, आपको आनन्द नहीं मिलेगा। जब तक आपको अपने स्वरूप का दिग्दर्शन नहीं होगा, तब तक उसकी आत्मानुभूति नहीं होगी और आप अपने आपको कष्टों, दुःखों, भय, त्रास, चिन्ता में, निर्धनता, रोगों व दोषों में ही ज़िन्दगी बिताते नज़र आयेंगे। जीवन के जिस काल में भी देहाध्यास छूट जाये, उसी समय आपका जीवन आनन्दमय होगा। आपके एक-एक श्वास की कीमत इतनी भारी है कि आप इस को संभाल नहीं सकते, आप झल्ले हो जाते हैं। इतना कीमती है आपका यह मानव-जीवन।

दूसरी धारा का प्रारम्भ हुआ **देहाधिपत्य से।** देहाधिपत्य का अर्थ है **देह पर अधिपत्य** कि **'देह मेरी है'**। इस विचारक को कभी संत की कृपा से, बुजुर्गों के आशीर्वाद से, स्वाध्याय से, ध्यान से, इष्ट-कृपा से यह ज्ञान हो जाये कि हाँ ! **देह मेरी है** लेकिन मुझे ईश्वर ने दी है और उस देह का वो समर्पण करे कि प्रभु, यह आपने दी है, यह मेरी है। मेरी पर अपनी मोहर वह चाहे न भी छोड़े और ईश्वर को समर्पित कर दे, कि यह आपने मुझे दी है, इसलिए मेरी है तो ऐसे **व्यक्तियों का जीवन सुखी बीतता है।** उनको, उनकी प्राप्तियों का, जो प्राप्तियाँ उन्होंने कीं और जो पहले से साथ में लेकर आये थे, उन प्राप्तियों का सुखपूर्वक भोग मिल जाता है। तो यह **दूसरी धारा** है। यदि उन्होंने समर्पण किया, कि हे प्रभु ! आपने मुझे देह दी है और यह मेरी है। अब मुझे और सब प्रकार के सुख दीजिये, खाने का, पीने का, रहने का, नाम का, सन्तान का आदि-आदि। तो प्रभु उसको सब प्राप्तियों के भोग का अधिकार दे देते हैं। यहाँ पर भी एक कानून लागू होता है। दिव्य कानून बड़े कठिन हैं। उनको तब भोग मिलेगा जब वे प्राप्ति करेंगे और देह का

समर्पण करेंगे, कि देह आपने दी है, इसलिए मेरी है। बहुत सरल कर रहा हूँ। **आपने देह मुझे दी है, यह देह मेरी है। जब अपने आपको समर्पित करता है, लेकिन अपना अधिकार भी नहीं छोड़ता तो ईश्वर इसकी प्राप्तियों के सुखपूर्वक भोग का अधिकार इसको दे देते हैं, पर उसको प्राप्त करना पड़ता है** और उस प्राप्ति का सुखपूर्वक भोग उसे मिल जाता है, जबकि देहाध्यास में उसकी प्राप्तियों का भी उसे भोग नहीं मिलता।

अब **तीसरी श्रेणी** लीजिये, वे व्यक्ति जो आनन्दमय जीवन बिताते हैं। हाँ ! वे व्यक्ति, वे महा-मानव मात्र भारत में ही पाये जाते हैं। आनन्दमय जीवन जो बिताता है, जो बितायेगा भविष्य में, उसको भारत में ही पैदा होना आवश्यक है। क्योंकि मात्र इस मिट्टी में ही वे गुण हैं कि अगर कोई आनन्दमय जीवन बिताना चाहे तो उसका भारतीय संस्कृति का पोषक और द्योतक होना आवश्यक है, यह औपचारिकता अनिवार्य है। अन्यथा कोई आनन्दमय जीवन नहीं बिता सकता। उनका जन्म आनन्दमय, जिसको कहा है–**अवतरण**, आनन्दमय जीवन–**लीला**। आनन्दमय मृत्यु–**निर्वाण**, आनन्दमय कष्ट–**तप**, आनन्दमय खाना–**प्रसाद**, आनन्दमय पीना–**चरणामृत**, आनन्दमय रोना–**ईश्वरीय याद**, आनन्दमय सोचना–**चिंतन**, आनन्दमय सुनना–**श्रवण**, आनन्दमय बोलना–**प्रवचन**, आनन्दमय देना–**दान**, आनन्दमय लेना–**हक**, आनन्दमय खोना–**बर्बादी**, **फकीरी**, आनन्दमय पाना–**आबादी**, **अमीरी**, आनन्दमय बैठना–**उपासना,** आनन्दमय पढ़ना–**स्वाध्याय**। उन महामानवों का समस्त जीवन आनन्दमय होता है। जो आनन्दयुक्त शब्द हैं, इनकी कोई अंग्रेज़ी शब्दावली नहीं है। इन शब्दों का अनुवाद आपको मात्र भारतीय भाषाओं में ही मिलेगा। विदेशी भाषाओं में इसका ऐसा विलक्षण शब्द-कोष नहीं मिलेगा। इसलिए आध्यात्मिक विद्या को भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा में अनूदित नहीं किया जा सकता, कानूनन। क्योंकि अध्यात्म और आत्मज्ञान भारत की ही धरोहर है। यह हमारी आत्मा है, यह बहुत बड़ी धरोहर है जो हमारे महर्षियों ने, ऋषियों ने, मनीषियों ने, हमारे संतों ने हमको दी है। इसलिए प्रभु भी जब

अवतार लेते हैं, मानव-देह धारण करते हैं तो मात्र भारत में ही अवतरित होते हैं। अवतार जितने भी हुए हैं वे मात्र भारत में ही हुए हैं। इसका कारण वे औपचारिकतायें हैं जो मात्र गंगा-जमुना के तटों पर, हिमालय की कन्दराओं में और इस भारत की मिट्टी में ही हैं। इस अध्यात्म को, ब्रह्म-विद्या को यदि आप विदेशों में भेज देंगे तो वहाँ पर नष्ट हो जायेगी, क्योंकि इसको विकसित करने के लिए गंगा-जमुना के तट चाहियें। कहाँ से लायेंगे गंगा-जमुना आप? हिमालय की कन्दरायें चाहियें और इसको विकसित करने के लिए आप जैसे सद्गृहस्थ चाहियें। जहाँ शिव-शक्ति संगम नहीं होगा, जहाँ शिव-शक्ति सामंजस्य नहीं होगा, जहाँ धर्म-पत्नी नहीं अपितु पत्नी होगी, यह अध्यात्म वहाँ फलीभूत नहीं हो सकता। उन सद्गृहस्थों में अध्यात्म फलीभूत होता है जहां आत्मचिंतन होता है, स्वाध्याय होता है, प्राणायाम होता है, दान-पुण्य, यज्ञ-हवन होता है। ये हमारी संस्कृति की धरोहर है जो आच्छादित सी हो गई है। अब भी हम ऐश्वर्यवान हैं, इस संस्कृति की वजह से। इसलिए **भारत ही आज भी जगद्गुरु है, जगदगुरु था और जगद्गुरु ही रहेगा।**

हमारा एकाधिकार अक्षुण्ण है, जिसको हमसे कोई नहीं छीन सकता। आनन्दमय जीवन पर बात चल रही है। आनन्दमय जीवन जीने वालों का सब कुछ आनन्दमय होता है। उनकी सोच आनन्दमय, उनका बोलना आनन्दमय। तो कौन महापुरुष होते हैं ऐसे? जिनको न **देहाध्यास** होता है, न **देहाधिपत्य** होता है, उनको **'देहाध्ययन'** होता है। पहली बार यह शब्द रख रहा हूँ आपके समक्ष। **देहाध्यास** नहीं होता उनको **'कि मैं देह हूँ'**, **देहाधिपत्य** भी नहीं होता कि **'देह मेरी है'**। उनको मात्र यह धारणा होती है कि देह प्रभु ने **मेरे लिए** दी है, मेरी नहीं है। क्यूँ है मेरे लिए? प्रभु जब बतायेंगे तब वही काम करेंगे। इसलिए हम मूलतः निठल्ले और निकम्मे हैं। हम सभी कालातीत हैं। जो काल में नहीं बँधते, उनका सब कुछ आनन्दमय होता है क्योंकि उनको न **देहाध्यास** होता है और न **देहाधिपत्य** होता है। उनको **'देहाध्ययन'** होता है कि मुझे प्रभु ने यह देह क्यों दी है? न **मैं देह हूँ,**

न **यह देह मेरी है** लेकिन देह **मेरे लिए ही** है। क्यों है मेरे लिए? वे महापुरुष बड़े जिज्ञासु होते हैं, उनको देह के समर्पण का आनन्द आता है। दूसरी श्रेणी, देहाधिपत्य वाले भी देह-समर्पित करते हैं कि प्रभु यह देह मेरे लिए है, आपने दी है और मैं इसे आपको ही समर्पित करता हूँ। इनको उसके भोग का और आनन्दपूर्वक भोग का तुरन्त अधिकार मिल जाता है। लेकिन उनको प्राप्तियाँ करनी पड़ती हैं।

हमने अपने ऊपर बड़े कर्त्तव्य थोपे हुए हैं। प्रत्येक व्यक्ति बड़ा व्यस्त है कि मैं देश के लिए कुछ कर रहा हूँ, अपने परिवार के लिए यह कर रहा हूँ। अपने ऑफिस में यदि मैं नहीं बैठूँगा तो मेरा क्या होगा, मेरे घर का क्या होगा, मेरे बच्चों का मेरे बिना क्या होगा। ये कर्त्तव्य हमने अपने ऊपर थोपे हैं। यदि आप विचार करें कि जो कार्य आपके बिना भी हो सकता है, वह आपका कर्त्तव्य कैसे हो सकता है? जो लोग समझते हैं कि मेरे बिना हो नहीं सकता, वे निश्चित रूप से जान लें कि उनके बिना भी होगा और बहुत अच्छा होगा। वे व्यर्थ ही उस कार्य की आनन्दमय पूर्ति में स्वयं रुकावट बने हुए हैं। यह दिव्य कानून है। जब ऐसे महापुरुष विवेक बुद्धि-द्वारा, संत-कृपा द्वारा, सत्संग द्वारा, सद्गुरु-कृपा द्वारा, इष्ट-कृपा द्वारा इस सत्य को पल्ले डाल लेते हैं, अनुभव कर लेते हैं कि उनके बिना भी सृष्टि चल रही थी और उनके बिना भी सृष्टि चलेगी और यह जीवन मध्य का खेल है, तो उसके बाद उनको सत्य का आभास हो जाता है। उनका जीवन आनन्दमय हो जाता है और आनन्दमय जीवन बिताने वाले को किसी भी भौतिक चीज़ की प्राप्ति की आवश्यकता नहीं पड़ती कानूनन, मात्र उनको आनन्दपूर्वक भोग मिलता है।

अतः दूसरी जीवनधारा **'देहाधिपत्य'** वालों को प्राप्ति करनी आवश्यक थी, लेकिन तृतीय आनन्दमय जीवन-धारा **'देहाध्ययन'** वालों को किसी चीज़ की प्राप्ति की आवश्यकता नहीं पड़ती। भोग पदार्थ उनके चरणों में स्वयं चलकर आते हैं। यह भी एक दिव्य कानून है। आजीवन हम प्राप्तियों के पीछे भागते हैं और प्राप्तियों का भोग नहीं कर पाते, क्योंकि हमारी बुद्धि में

मलिनता होती है, जड़ता होती है। ईश्वर के विमुख होकर हम ग़ैरकानूनी काम करते हैं कि **देह मेरी है, मैं देह हूँ** जो कि ईश्वर सहन नहीं करता। साथ की साथ सज़ा शुरू हो जाती है। उनका समय अपना नहीं होता। जैसे रेस के घोड़े होते हैं, रेस लगती है लाखों की और घोड़े को अंत में क्या मिलता है, घास और चारा। बस वे भी घास और चारा ही खाते हैं। उसका भी उनके पास समय नहीं होता। जो लोग उन पर रेस लगाते हैं वे मालामाल हो जाते हैं। यह दिव्य-कानून है। अपने आपको बहुत चतुर नहीं समझना। अपनी बुद्धि का सदुपयोग करिये नहीं तो आप सब मुजरिम बने सज़ा पा रहे हैं। घर में अकेले कमरे में बैठकर सोचना, किसी को बताना मत। पाश्चात्यानुगमन ने हमको भौतिक बना दिया और इसलिए जीवन में निराशा शुरू हो गई, नहीं तो हम बड़े आनन्दित थे। आजकल सब स्वचलित हो गया है। जीवन अति सुख-सुविधाओं से भरपूर हो गया है, लेकिन फिर भी लोगों के पास समय नहीं है। समय बचाने के लिए अनेक उपकरण हो गये हैं हमारे पास, लेकिन हमारे पास समय नहीं है। धन भी बहुत हो गया है लेकिन धन का भोग नहीं है। यातायात व सम्पर्क के साधन बहुत हो गये हैं। यहीं बैठे आप संसार के किसी भी कोने से सम्पर्क कर सकते हैं, लेकिन आपका अपना कोई नहीं है। हमारे यहाँ पहले अपनत्व था लोगों में, भाईचारा था लोगों में। उस संस्कृति का पहलू देखना है तो आज भी गाँवों में जाइये। तो आपको मालूम चलेगा कि आज हम कितने लुट चुके हैं। घर में, परिवार में, देख लीजिये जो आपके निकटतम सम्बन्धी हैं वे भी आपसे नफरत करते हैं। वे भी आपको चालाकी से कहीं न कहीं किसी भी प्रकार से धोखा देने की कोशिश करते हैं, क्यों? क्योंकि आपकी देह पर आपका अनधिकृत कब्ज़ा है, कसूर आपका है। पूजा-पाठ का कोई समय नहीं है। हम तो शुभ कर्म करते हैं, भगवान का नाम लेने की क्या ज़रूरत है, भई, आप कर्मों का निर्णय करने वाले कौन हैं?

अरे ! जो काम आपके बिना भी हो सकता है, वो आपका कर्म कैसे हो सकता है? कर्म की परिभाषा नहीं जानते हम ! सब कर्मठ बने हुए हैं। सब

कर्मयोगी बने हुए हैं, **तथाकथित कर्मयोगी**। जबकि यह भी ज्ञात नहीं है कि कर्म का क्या अर्थ है? अरे! बैल बहुत व्यस्त है, घोड़ा बहुत कर्मठ है, ऊँट बहुत कर्मठ है। इतना काम करने के बाद वह तो आपसे कुछ माँगता भी नहीं है। आप उसे घास दो, न दो। आप से ज्यादा तो पशु कर्मठ हैं। हम तो किसी की मदद करते हैं तो उसके बदले में कुछ आशा करते हैं! श्रद्धा समाप्त हो चुकी है। मात्र भारत में कर्म को पारिभाषित किया गया था और कर्म क्या है? **स्वयं को जानना**! मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ, कहाँ जाना है मुझको, अगर मैं पृथ्वी पर लाया गया हूँ तो क्यों लाया गया हूँ, अगर मैं पृथ्वी पर आया हूँ तो क्यों आया हूँ? मात्र इसको जानना, इसको कहा है—**पुरुषार्थ।** इसको कई बार सन्धिविच्छेद करके आपके सम्मुख रख चुका हूँ। पुरुषार्थ का अर्थ क्या है—**पुरुष + अर्थ।** सुबह से शाम तक पैसे कमाते रहना और अपने नाम के पीछे, अपने यश के पीछे, अखबार वालों के पीछे भागते रहना, यह पुरुषार्थ नहीं है। भारतभूमि ने एक संदेश दिया था, वह था पुरुषार्थ, जो हमारे अध्यात्म की आत्मा है, अध्यात्म की रूह है। आप व्यर्थ ही स्वयं को कर्मयोगी मत समझिये, क्योंकि जो कर्म आप कर रहे हैं वह आपके बिना भी अच्छा होगा। यदि आप समझते हैं कि आपके बिना वह हो नहीं सकता, आपके बिना वो अवश्य ही बहुत अच्छा होगा। आप व्यर्थ ही उसमें रुकावट बने हुए हैं। इसलिए कर्म और कर्त्तव्य केवल थोपे हुए हैं। मैंने एक बार पहले भी सुनाया था, आज भी सुना देता हूँ, आनन्दमय दिव्य-जीवन के संदर्भ में बात चल रही है:—

एक पागल ने एक पेड़ को पकड़ लिया और ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाने लगा, मुझे छुड़ाओ! मुझे छुड़ाओ! मुझे पेड़ ने पकड़ लिया है, मुझे छुड़ाओ! लोग वहाँ से गुज़र रहे थे और हँस रहे थे कि यह क्या कह रहा है? इतने में एक साधु महात्मा वहाँ से निकले। उनके हाथ में चिमटा था। उन्होंने वह चिमटा उसकी पीठ पर मारा और उस पागल के हाथ छूट गये। महात्मा जी के पैरों में वह पड़ गया कि आपने बड़ी कृपा की, मुझे पेड़ से छुड़ा दिया। हम उससे कम पागल नहीं हैं। हँसने वाली बात नहीं है। **आपने संसार को**

पकड़ा है, संसार ने आपको नहीं पकड़ा। जिनके लिए आप बहुत व्यस्त हैं, वो ही यह सोच रहे होंगे कि कब यह चल बसे और उनका जीवन आनन्द में हो। सत्य कह रहा हूँ। हाँ ! तो सद्‌गुरु पीठ पर चिमटा मारता है। क्योंकि पेड़ को आपने पकड़ा है। उस मूर्ख पर हँसने की बात नहीं है, अपने पर हँसिये। अपने साथ बैठिये। आपका एक ही कर्म है और उसका नाम है **'पुरुषार्थ'।**

दिव्य कानून बता रहा हूँ। जो पुरुषार्थी होगा, उसको सांसारिक कर्म करने की आवश्यकता नहीं है। आप जप-तप, ध्यान करो, या न करो, आपका कर्त्तव्य मात्र पुरुषार्थ है। देहाध्ययन करो ! कि आपको देह क्यों दी है ? तब देह के लिए जो सुख-सुविधायें हमें चाहियें, उसके लिए स्वयं प्रबन्ध होता है। अगर कोई महा ऐश्वर्यवान देश है पूरी धरा पर तो वो मात्र, **भारत है, मात्र, भारत**। हमारे पास जो भी होता था, उसमें हम संतुष्ट होते थे। आज घर का प्रत्येक व्यक्ति कमा रहा है लेकिन बरकत नहीं है, पैसे की कमी है। जिस घर में ज़्यादा कमाने वाले होंगे, उस घर में पैसे की कमी, बे-बरकती अवश्य होगी। आप अपनी एक-दो पीढ़ियों को याद करिये। घर में एक कमाने वाला होता था, सब खाते थे और वे अपने गरीब रिश्तेदारों की भी कुछ न कुछ सहायता कर देते थे। खूब समय था लोगों के पास, कीर्तन-भजन होते थे और दशहरा-दीवाली बड़ी धूमधाम से मनाये जाते थे। विवाह-शादी पर सात-सात दिन बारात रुकती थी। बड़ा समय था लोगों के पास, बड़ा आनन्द था, लेकिन आजकल बस लोग घड़ी देखते रहते हैं। इस पाश्चात्य अनुगमन ने हमारा आनन्द छीन लिया। कहीं के नहीं रहे हम ! न हम भारतीय रहे, न अंग्रेज़ बन सके। इसलिए अपनी संस्कृति की तरफ मुड़िये, यदि उस तीसरी धारा में जीवन बिताना चाहते हैं, जिसका नाम है **आनन्दमय जीवन।** आनन्दमय जीवन के लिए आपको प्राप्ति के अधिकार की आवश्यकता नहीं है। इसको शास्त्र ने कहा है **तप आधारित ऐश्वर्य।** क्योंकि जब हम संसार से विदा लेंगे, अपनी देह छोड़ेंगे, तो हमारी सारी प्राप्तियाँ भी यहीं रह जायेंगी। हमारी देह, हमारी देह की खूबसूरती, हमारी

डिग्रियाँ, हमारा धन-बल, जन-बल और हमारी सम्पत्ति, हमारा सब कुछ यहीं रह जायेगा और हमारे साथ जायेगा हमारा तप आधारित मन। उस मन के अनुसार आपको मिलेगी दूसरी देह, आपका रुतबा, आपकी हुकूमत और आपकी प्राप्तियाँ, आपके तप पर आधारित अगले जन्म में फिर आपको मिल जायेंगी। आप विचार करिये मूर्खतावश हम वसीयत लिखवाते हैं, जो हमारी संस्कृति में नहीं था, हमारे यहाँ था **उत्तराधिकार**। जीते जी अपने जीवन-काल में अपनी सम्पत्ति का अधिकार दे दीजिए। **'उत्तराधिकार'** वाले प्रवचन में मैंने इस विषय की विस्तृत चर्चा की है। बहुत कुछ बरबाद कर दिया हमारा पाश्चात्यानुगमन ने। घर में बैठकर दो बूँद आँसू ज़रूर बहाना, हमारा कुछ नहीं लेकर गये अंग्रेज, धन-सम्पदा बहुत है। अरे ! कोई एक पुराना किला खोद लो उसमें से इतना धन निकल आयेगा कि भारत अपना सारा उधार निबटा देगा। आज भी बहुत सम्पदा है हमारे देश में, इस भूमि में, लेकिन लुप्त इसलिए हो गई वह लक्ष्मी, क्योंकि हम **देहाध्यासी** हो गये। जिस दिन आपको अपनी असलियत का ज्ञान होगा, जिस दिन **'देहाध्यास', 'देहाधिपत्य'** छूटकर **'देहाध्ययन'** हो जायेगा आपकी सुषुप्त लक्ष्मी जाग्रत हो जायेगी। आपके देश में पुनः दूध-घी की नदियाँ बहने लगेंगी। आपसी सद्भाव एवं भाई-चारा हो जायेगा। आपके घर में सुख-शान्ति एवं आनन्द की गंगा बहने लगेगी।

यहाँ एक व्यावहारिक प्रश्न उठता है कि देहाध्यास रूपी रोग तो सभी को है, किसी को थोड़ा, किसी को अधिक। इसका उपचार क्या है? सभी जंगलों में जाकर तप नहीं कर सकते, घर-बार छोड़ नहीं सकते। एक बहन कहने लगीं कि मुझे ईश्वर से बहुत प्रेम हो गया है। मैंने कहा कि यदि आपके इष्ट अभी प्रकट हो जायें और कहें कि चलो हमारे साथ, तो क्या चलोगी? वह दुविधा में पड़ गई। बड़ा ही कठिन है **देहाध्यास** छोड़ना। वह ईश्वरीय प्रेम तभी तक रहता है, जब तक सब सुख-सुविधाएँ रहती हैं। जहाँ कोई कष्ट आ जाता है लोग पीरों-फकीरों, बाबाओं के पास भागने लगते हैं। तो इस महारोग से मुक्ति कैसे मिले। हमारे ऋषि, मनीषियों ने इसके लिये

'तीन ऋ़ण' के रूप में बहुत सुन्दर योजना बताई। अरे ! कोई गैर-कानूनी पैसा कमा बैठे हो तो सरकार को घोषित कर दीजिए, कुछ दान-पुण्य कर दीजिए, कुछ तो पिंड छूट जायेगा। अगर आपने जाने-अनजाने में, गलती से या अहम से अपनी देह पर अनधिकृत कब्ज़ा कर लिया है और आप अपनी देह एवं देह से सम्बन्धित संसार को भोगना भी चाहते हैं, जीवन जीना चाहते हैं, तो यह भी आपका अधिकार है, इसके लिये **पितृ-ऋण, देव-ऋण एवं ऋषि-ऋण** दीजिए। बड़े-बड़े योगियों से **देहाध्यास** नहीं छूट पाता। यदि दिव्य-जीवन जीना चाहते हैं तो तीनों ऋणों को चुकाते हुए भी कभी उऋणी न होने का भाव रखें। जब **पितृ-ऋण** देंगे तो माता-पिता की कृपा से आपको सत्संग मिलेगा। जब **देव-ऋण** देते हुए यज्ञ-हवन एवं पंच-महाभूतों का पूजन करेंगे तो आपका अन्तर्ज्ञान जाग्रत होगा, आपको स्वास्थ्य मिलेगा और जब **ऋषि-ऋण** देंगे तो आपका स्वाध्याय, प्राणायाम, जप, तप चलेगा और एक दिन जो **मिथ्याध्यास** था, वह **सत्याध्यास** में बदल जायेगा, अवश्य। हम फँसे थे मिथ्याध्यास में, यहाँ अध्यास महत्त्वपूर्ण नहीं है, **मिथ्या** महत्त्वपूर्ण है। उस देह पर आपने मोहर लगा दी, जो नश्वर थी। अतः जब माता-पिता की कृपा, देव-कृपा एवं ऋषि-कृपा होगी तो धीरे-धीरे उनकी कृपा से **मिथ्याध्यास सत्याध्यास** में परिणत हो जायेगा। मिथ्या देह सत्य बन जायेगी। जिसकी देह सत्य होती है, वह संत होता है। इन तीनों ऋणों की विस्तृत चर्चा मैंने **'तीन ऋण'** शीर्षक प्रवचन में की है।

दिव्य-जीवन व्यतीत करने के लिये परम आवश्यक है कि मानव अपने स्वयं के दिव्य व्यक्तित्व को जाग्रत करे। उस परम दिव्य ईश्वर ने प्रत्येक मानव को एक दिव्य-व्यक्तित्व भी दिया है, जो एक ऐसा मानसिक स्थल है जहाँ से कोई भी मानव जब भी जहाँ कहीं, जैसे भी चाहे अपने ईश्वर से अधिकारपूर्वक सम्पर्क कर सकता है। प्रत्येक व्यक्ति कई व्यक्तित्वों का समूह होता है। विभिन्न परिस्थितियों में, काम, क्रोध, मोह, लोभ, अहं आदि विभिन्न आवेशों में और परिवार में ही विभिन्न व्यक्तियों के सम्मुख एक ही व्यक्ति के विभिन्न रूप होते हैं। साधारण व्यक्ति की परिस्थितियाँ उसके

विभिन्न व्यक्तित्वों को प्रकट करती हैं लेकिन असाधारण व्यक्तित्व होते हैं स्वयं को हर पल ईश्वर के साथ सम्बद्ध रखते हैं और वे परिस्थितियों के अनुसार अपनी मानसिक स्थिति बना लेते हैं। इच्छानुसार अपना व्यक्तित्व चाहे तो प्रकट करते हैं, अन्यथा परिस्थितियों का उन पर कोई प्रभाव नहीं होताः—

''उदित सूर्य जेहि भाँति अथवत् ताहि भाँति'

महापुरुष सूर्य की भाँति जीवन के उतार-चढ़ाव में सम रहते हैं। उनके मुखारविन्द से भीतरी परिवर्तन का प्रकटीकरण नहीं होता। जब वह चाहें तो आनन्द में लीला के लिये अपना विशिष्टतम स्वरूप प्रकट कर लेते हैं। जैसेकि मैंने हनुमानजी का उदाहरण कई बार दिया है कि ***'सूक्ष्म रूप धरि सियहिं दिखावा' 'मसक समान रूप कपि धरि' 'भीम रूप धरि असुर संहारे'*** इस रूप परिवर्तन का दिव्यता से क्या सम्बन्ध है? इसे समझना अति आवश्यक है। साधारण मानवों के लिये यह शिक्षा है कि जैसा समय आपके जीवन में आये, यदि आप मानसिक-स्वरूप भी वैसा ही धारण कर लेंगे, तो आप प्रत्येक परिस्थिति का आनन्द लेंगे। जैसाकि काकभुसुंडी जी ने गरुड़ को बताया कि वे जल-प्रलय में जल का, अग्नि-प्रलय में अग्नि का, वायु-प्रलय में वायु का रूप धारण कर लेते थे। इसलिये उन्होंने प्रत्येक प्रलय का आनन्द लिया। काल-गतियाँ किसी के भी हाथ में नहीं हैं तो भगवान से प्रार्थना करनी है, कि हे प्रभु! मुझे जो भी परिस्थिति दिखाओ उसके जैसा ही स्वरूप मुझे देना, ताकि मैं उस स्थिति का आनन्द भोग सकूँ। तभी आप जीवन का आनन्द लेंगे, नहीं तो अधिकतर लोग आनन्द से जीवन नहीं जीते वरन् जीवन काटते हैं। कर्मों का हिसाब-किताब भी स्वयं करने लगते हैं कि मैंने तो इस जन्म में किसी को कष्ट नहीं दिया फिर मेरे साथ ऐसा क्यों हुआ? इस प्रकार के व्यर्थ चिंतन से वे स्वयं को तो त्रसित करते ही हैं, उनके संगी-साथी भी उनसे तंग आ जाते हैं। चाहे ऊपर से वे उनकी हाँ में हाँ मिलाते हों।

ईश्वर को ज्ञात था कि यह मेरा बनाया हुआ बन्दा जिसको मैंने विशिष्ट कारणों से उत्कृष्टतम बुद्धि दी है, उसका दुरुपयोग करेगा और

फँस जायेगा। अतः उसने सब मानवों में एक व्यक्तित्व सुरक्षित रख दिया, जिसका नाम था—**'दिव्य-व्यक्तित्व'**—कि बेटा, जब फँस जाओ तो गलती पर गलती मत करना। रो कर आत्म-समर्पण कर देना। हे प्रभु ! मैं बल, बुद्धि-विद्याहीन, अशक्त, असमर्थ हूँ। मैं नहीं जानता आपने मुझे पृथ्वी पर क्यों बुलाया है? तो मैं अपनी बुद्धि को, शक्ति को, तेरी कृपा, शक्ति एवं प्रेरणा से तेरे चरणों में समर्पित करता हूँ, मुझे क्षमा कर। जब आपकी अश्रुधारा बहने लगती है तो समझिये आपने अपने दिव्य-व्यक्तित्व में प्रवेश पा लिया है। इन प्रार्थनाओं के साथ अविरल अश्रुधारा बहनी अत्यन्त आवश्यक है, तभी आप अपने दिव्य-व्यक्तित्व में प्रवेश पा सकते हैं। दिव्य-व्यक्तित्व तो सभी में है, परन्तु वह मलिनता के कारण आवृत्त हो जाता है। मन प्रदूषित है, इसकी पहचान कैसे हो? जब आप अपने इष्ट, अपने सच्चिदानन्द-स्वरूप के सामने ध्यान में नहीं बैठ पाते तो समझिए आपका मन प्रदूषित है। जब आप विक्षिप्त, दुःखी तनावित होते हैं, तो आपका इष्ट में ध्यान नहीं लगेगा। ईर्ष्या, द्वेष, वैर, वैमनस्य, चुगली, निन्दा, भय आदि के कारण आपका मानस आच्छादित हो जाता है और आपका दिव्य व्यक्तित्व ढक जाता है। काम, क्रोध, लोभ, मोह, अंहकार—ये सब मन को ढकते हैं। दुर्व्यसन, दुराग्रह, दुर्भाव, दुर्जनों का संग एवं दुराचार मन को मैला करते हैं।

जीव और ब्रह्म में भी यही अन्तर है। जैसे **'हीरा'** और जलाने वाला **'कोयला'** दोनों कार्बन हैं, हीरा विशुद्धतम कार्बन है और कोयला अशुद्धतम कार्बन। जब हमारी मलिनता समाप्त हो जायेगी तो हम भी हीरा बन जायेंगे। प्रश्न उठता है कि हम मन को स्वच्छ कैसे करें? हमारे महापुरुषों ने इसके लिये **पहला** साधन बताया **नाम-जाप,** जिसकी विस्तृत चर्चा मैंने **ईश्वरीय-जाप** वाले प्रवचन में की है। **दूसरे,** यदि घर में मिट्टी अधिक हो जाये तो हम वैक्यूम क्लीनर का प्रयोग करते हैं, तो संतों ने प्राणायाम का साधन बताया। प्राणायाम सांसों का व्यायाम नहीं है, बल्कि पाँचों-प्राणों की साधना है। यह हमारी आत्मा का दण्ड है। **तीसरे,** जब ज़्यादा कूड़ा-करकट हो तो आग भी लगानी पड़ती है, इसी प्रकार जन्म-जन्मान्तरों

के संचित कर्म, आगामी कर्म, कितने संस्कार, धारणाएँ, विचार हमारे मन में एकत्रित हैं, उन्हें ज्ञानाग्नि से दग्ध कर दीजिए। जिस प्रकार बड़ी-बड़ी हवेलियों में अजायबघर होते हैं, वहाँ यदि आग लग जाए तो सब कुछ जलकर खाक हो जाता है। इसी प्रकार जब आपके अन्दर परम जिज्ञासा की अग्नि उत्पन्न हो जाए, ज्ञान-अग्नि प्रज्ज्वलित हो जाये तो आपके मानस के शुभ-अशुभ, पाप-पुण्य सभी नष्ट हो जाते हैं। सबसे बड़ा उपाय है कि जैसे जगह ज्यादा गन्दी हो तो धुलाई करते हैं, वैसे ही यदि आप मन को धोना चाहते हैं तो प्रेमाश्रुओं से धोइए। उसके दरबार में बैठकर रो पड़िए, 'त्राहि माम्, त्राहि माम्' कह कर अपने समस्त अभिमान को छोड़कर ईश्वर के चरणों में ढह पड़िए, तो आपका मन स्वच्छ होने लगता है। अब यहाँ प्रश्न उठता है कि यह सिलसिला भी कब तक चलेगा? अरे! हम तो सफाई कर्मचारी बन गए कि हर रोज़ मन मलिन होगा फिर साफ करें और फिर करें। अन्ततः मन का समर्पण कर दीजिए:–

'त्वदीयं वस्तु प्रभु तुभ्यमेव समर्पये'

दिव्य-जीवन व्यतीत करने के लिये अपने इष्ट के अतिरिक्त और किसी की महत्ता अपने हृदय में न रखें। आप किसी भी वस्तु को जब आनन्दपूर्वक भोगना चाहते हैं, तो उस वस्तु की अहमियत को समाप्त कर दीजिये। प्रत्येक व्यक्ति आज भयभीत है, अपने दिल से पूछिये! कभी आप खुद के साथ बैठिये तो आपको लगेगा कि कोई न कोई भय आपको खा रहा है। किसी को देह का भय, किसी को धन का भय, किसी को संतान का भय, किसी को पोस्ट का भय, किसी को मृत्यु का भय। कोई न कोई भय हर व्यक्ति के साथ चिपका हुआ है और **इस भय की जो नींव है, वह है–आपकी देह।** मेरे बेटे को ऐसा न हो जाये, मेरी बेटी को ऐसा न हो जाये, मेरी धन-सम्पदा को ऐसा न हो जाये। हर भय का जो आधार है, वह है आपकी देह। सबसे बड़ा भय है मृत्यु का। हाथी के पैर में जिस प्रकार सारे पाँव समा जाते हैं, इसी प्रकार एक मृत्यु के भय में सारे भय समाहित हो जाते हैं। यदि आपके हृदय से मृत्यु का भय निकल जाये तो आपके सारे

भय समाप्त हो जायेंगे। ज्ञात अथवा अज्ञात मृत्यु का भय लोगों को बहुत होता है। तो प्रश्न यह उठता है कि मृत्यु क्या है?

जन्मदिन हम बहुत आनन्द से मनाते हैं, कि आज मेरा जन्मदिन है। बड़े खुश होते हैं। यह मत भूलिये कि मृत्यु-दिवस भी आयेगा। जिसका जन्म हुआ है उसकी मृत्यु भी अवश्य होगी। जो जन्मा है वह मरेगा भी ज़रूर। एक ऐसा निश्चित परिलक्षित भविष्य है, जिसका नाम है–**मृत्यु।** किसी का हाथ देखो और बताओ कि आपकी रेखा बता रही है कि आप मरेंगे ज़रूर, कि यह क्या बात है, मरना तो है ही। परिलक्षित भविष्य है, जिसका नाम है–**मृत्यु।** तो अवश्य आयेगी मृत्यु, कब आयेगी? किसी को पता नहीं। क्योंकि जन्म कब हुआ, किसी को पता नहीं। क्यों हुआ जन्म, क्यों होगी मृत्य्? किसी को पता नहीं। कोई नहीं जानता। यदि हम जन्म को अहमियत दिये हुए हैं तो हम उतनी अहमियत मृत्यु को भी दें। **आप जीवन को आनन्दपूर्वक जीना चाहते हैं तो Art of living के लिए Art of dying आपको आनी चाहिये**:–

> ***''विचार लो कि मृत्य हो न मृत्यु से डरो कभी,***
> ***मरो परन्तु यूँ मरो कि याद जो करें सभी।''***

कुत्ते, बिल्लियाँ भी मरते हैं। मच्छर-मक्खियाँ भी हर रोज़ मरते हैं। अरे! आप मानव हैं। जन्म को अहमियत दी है तो मृत्यु को भी अहमियत दीजिये। आपको अपना मृत्यु-दिवस मालूम नहीं है, लेकिन मृत्यु अवश्य होगी। अवश्य होगी मृत्यु। चुपचाप किसी एकान्त स्थान पर अपने ऊपर कफन सा लेकर पन्द्रह-बीस मिनट तक स्वयं धारणा करिये। यह नहीं कि **मुझे मरना है, बल्कि मैं मर गया हूँ।** कोई हर्ज नहीं है। **भविष्य में घटने वाली एक निश्चित घटना की प्रत्यक्ष अनुभूति मात्र करनी है।** क्योंकि जब वह घटना प्रत्यक्ष घटेगी तब आप नहीं होंगे, जोकि परम सत्य है। **सत्य का ही आनन्द है। सत, चेतन और आनन्द, इन तीनों का आपस में** दामन-चोली का साथ है। जहाँ सत्य होगा वहाँ चेतनता निखरेगी, उभरेगी चेतनता और जहाँ सत्य और चेतन होगा वहाँ आनन्द अवश्य होगा। आप

जीवन का भरपूर आनन्द लेना चाहते हैं और जीवन जीना चाहते हैं, तो यदि जन्म को महाम्त्य दे रहे हैं तो आप मृत्यु को भी उतना ही महात्म्य दीजिये। मृत्यु-दिवस आपको मालूम नहीं है, इसलिए मृत्यु का समय स्वयं पैदा कर लीजिये, कोई हर्ज नहीं है। थोड़ा सा कठिन समीकरण है, कि आप एकान्त में बैठकर **मात्र 15 – 20 मिनट सम्पूर्ण विश्वास एवं एकाग्रता के साथ यह धारणा कर लीजिये कि मैं एक शव हूँ।** यह नहीं कि मृत्यु होनी है। मृत्यु तो होनी है ही, 15 – 20 मिनट के लिए मृत्यु की मात्र अनुभूति कर लीजिये, तो क्या होगा? बहुत कुछ होगा, जिसको मैं यहाँ से वर्णन नहीं कर सकता हूँ। शास्त्र में इसको कहा है– **लययोग।** यह **महायोग** प्रकरण है। आप स्वयं अपनी देह को भस्मीभूत कर दिव्यता के साथ सम्बद्ध होकर दिव्य-जीवन बिताते हैं। हम चिकित्सक क्या करते हैं? हम बीमारी के जीवित या अर्धजीवित रोगाणुओं को बच्चे की देह में इंजेक्शन अथवा ड्रॉप्स द्वारा प्रवेश करवा देते हैं, तो क्या होता है? उसकी देह की आत्म-सुरक्षा-प्रणाली को उन रोगाणुओं से लड़ने की आदत पड़ जाती है। उसका शरीर रोगाणुओं से लड़ने के लिए सशक्त हो जाता है, यदि भविष्य में वह बीमारी अपने भयानक रूप में आक्रमण करती है तो शरीर की सुरक्षा-प्रणाली सक्रिय होकर, उन रोगाणुओं से लड़कर उनके प्रभाव को समाप्त कर देती है। यह मानसिक टीकाकरण है। 15 – 20 मिनट जब आपने अपने आपको एकाग्रचित्त से मृतक मान लिया, कि मैं मृतक हूँ तो आपने अपने मानस में उस मृत्यु का भय निश्चेष्ट कर दिया। तो क्या होता है ? कुछ दिनों के बाद आपको मृत्यु का भय समाप्त हो जायेगा और आप जीवन का आनन्द ले पायेंगे, अन्यथा ले ही नहीं सकते। आप खेलेंगे जीवन से। आपकी देह आपकी मुरीद हो जायेगी :–

''मैं तो नाला हूँ ज़िन्दगी से मगर,
ज़िन्दगी मुझसे प्यार करती है,
मैंने कितना इसे ज़लील किया,
फिर भी कमबख्त मुझ पे मरती है।''

अरे ! आपकी ज़िन्दगी आप पर मरेगी, कि सर ! मुझे अपने साथ रखिये ! उस दिन से लोग आपसे मुहब्बत करने लगेंगे। जिन लोगों में मृत्यु का भय समाप्त हो जाता है, वे महामानव ही इतिहास की रचना करते हैं। इतिहास उनके द्वारा लिखा जाता है और उनका अनुसरण करने वाली पीढ़ियाँ उनके स्वर्णिम पदचिन्हों पर चलकर अपने आपको स्वाभिमानी महसूस करती हैं। यदि किसी को मृत्यु का भय समाप्त हो जाय तो यह अध्यास मृत्यु का मानसिक टीकाकरण है। उस अवस्था में दूसरा क्या होता है, जैसाकि मैं **अमरत्व** के पाँच प्रवचनों में बहुत स्पष्ट कर चुका हूँ कि जब कोई मानव आसक्तियों को लिए हुए मरता है तो उसकी देह उसको छोड़ती है। इसको कहा है—**मृत्यु**। हमारी भारतीय संस्कृति में मृत्यु नाम की कोई चीज़ नहीं होती थी। हमारा निर्वाण होता था। जब हम आसक्तियों को लेकर जीते हैं तो एक न एक दिन देह अवश्य छोड़ती है और देह उस व्यक्ति को छोड़ती है, जिसकी आसक्तियाँ होती हैं। वह हमेशा अकाल मृत्यु को पाता है, क्योंकि 200 वर्ष का होकर भी कोई मरे और यदि उसकी सांसारिक आसक्तियाँ भी हैं, तो इसका अर्थ वह व्यक्ति अकाल मृत्यु को ही प्राप्त होता है और फिर उसका अकाल जन्म होता है। ऐसे जीव पैदा होते ही घर-बार में, देश में, विदेश में कष्ट पैदा कर देते हैं। घर में आते ही वे सारा वातावरण प्रदूषित कर देते हैं। उनका जन्म भी अकाल होता है और आसक्तियाँ किसकी वजह से हुईं? देह की वजह से। लेकिन जब आप उस मानसिक स्तर में होते हैं—**मृत्यु के** और आप मात्र भस्मी, एक राख की ढेरी होते हैं। जिसको कहा है **भस्मीयोग**। लययोग को भस्मी योग भी कहा है। इस भस्मीयोग की स्थिति 10 – 15 मिनट भी हम पैदा कर सकें, जोकि परम सत्य है, मात्र कल्पना नहीं है, तो उसमें आपकी सारी आसक्तियाँ समाप्त हो जायेंगी, न केवल समाप्त होगीं बल्कि **आसक्ति, भक्ति** में बदल जायेगी। **वासना, उपासना** में बदल जायेगी। **राग, महाराग** में बदल जायेगा।

राग और आसक्ति में अंतर है, बहुत छोटा। जो चीज़ हमको प्राप्त नहीं

है, उसमें हमारी आसक्ति होती है और यदि वह वस्तु प्राप्त हो जाये तो उसमें होता है–**'राग'**, कि यह वस्तु मेरे हाथ से कहीं छूट न जाये। तो राग, महाराग में बदल जायेगा और **महाराग, वैराग** में बदल जायेगा। वैराग भी एक राग है। तो आपको ईश्वर में राग हो जाता है। जब आपकी देह आपके सामने डेढ़-दो किलो राख के अलावा कुछ नहीं होती तो आपका राग, वैराग में बदल जाता है और **वैराग, अनुराग** में बदल जाता है और आप हो गए **राम-चरण अनुरागी।** आपके राग का कितना बढ़िया इस्तेमाल हो गया। **आप रागी से महारागी, महारागी से वैरागी और वैरागी से क्या बन गये? अनुरागी।** चाहे वो बने पाँच मिनट के लिए ही सही। ऐसा होता है, ऐसा ही होता है। अनुराग सांसारिक वस्तुओं में नहीं होता। वह ईश्वर के चरणों में होता है। अनुराग भक्ति का पोषक है। आपकी वासनायें उपासना में बदल जाती हैं। यह तब होता है जब आप अपने सम्मुख राख की ढेरी में परिणत हुई अपनी देह को देखते हैं, जो एक समय होगी ही। अरे ! जब वह होगी तो आपकी जानकारी में नहीं होगी। अपनी चेतनता में अपना वह स्वरूप देखिये। कठिन है। जब आपकी राख की ढेरी बनेगी तो आप नहीं देख पायेंगे उसको। बोले क्यों देखें, तो जन्मदिवस क्यों मना रहे हो फिर, मृत्यु देखनी नहीं तो क्या जन्म देखा था? यदि जन्म को अहमियत दी है तो मृत्यु को भी दीजिये, यदि आनन्दमय जीवन जीना चाहते हैं तो। वरना जीवन काटेंगे आप। सभी जीवन काट रहे हैं। उसके बाद जब आप उठते हैं उस भस्मी के स्तर से, तो कुछ क्षणों के लिए, कुछ मिनटों के लिए, कुछ घन्टों के लिए आपके चेहरे पर एक मस्ती होती है और उस मस्ती का जिसको नशा पड़ जाता है, **वो दिव्य मानव होता है।** संसार की दौड़-भाग समाप्त हो जाती है। एक बात और होती है। मैं उतनी ही बातें बताऊँगा जो आपके सामने बोल सकता हूँ। लययोग, भस्मी-योग ब्रह्मविद्या का बहुत गहन रहस्य है जोकि इस प्रकार सार्वजनिक तौर पर बोलने का शास्त्रीय अधिकार नहीं है। अपने परम शिष्यों को जाँचकर, परखकर उनके सम्मुख ही कहा जा सकता है।

आप मुझसे सहमत होंगे कि जब भी कोई संरचना होती है अथवा कोई आर्किटैक्ट जब किसी बिल्डिंग का नक्शा बनाता है तो उसको पहले कोरा कागज़ चाहिये। अगर कागज़ में कुछ लिखा होगा तो वह फेंक देगा, कहेगा, कि साफ कागज़ लाओ ! जब भी कोई संरचना होती है तो वह निराकार से होती है। साकार और निराकार में कोई भेद नहीं है। लोगों ने भेद पैदा कर लिया है। जहाँ साकार है वहाँ निराकार होता है और जहाँ निराकार है, वहाँ साकार होता है। जितनी साकार संरचना है पूरे विश्व की, जिसमें हमारी देह भी आती है, यह सारी ईश्वर के निराकार मानस से प्रकट हुई है। इसको कहा है **माया**। माया का अपना कोई अस्तित्व नहीं है। यदि माया का कोई अस्तित्व है, तो वह है **ईश्वरीय मन।** यह आध्यात्मिक विज्ञान है जो भारत ने विश्व को दिया है। जितनी भी विश्व में हम साकार संरचना देख रहे हैं, इसका कोई अस्तित्व है, तो वह है **ईश्वरीय निराकार मन**। किसी भी संरचना से पहले उसका निराकार होना परमावश्यक है। मान लीजिये, आप या कोई बच्चा एक कुम्हार के पास जाये कि मुझे मिट्टी का हाथी बना दो। पहले वह मिट्टी का एक गोला बना देगा। उस गोले से ही वो हाथी बनायेगा। हाथी उसको पसन्द नहीं आया, तब बच्चे ने कहा कि इसका घोड़ा बना दो। कुम्हार उस हाथी को तोड़कर फिर वैसा ही गोला बनायेगा और उस गोले से ही फिर वो घोड़ा बना देगा। अतः जब भी कोई नया निर्माण करना है, तो साकार का निराकार में आना अति आवश्यक है। रात्रि में जब हमें कोई स्वप्न भी आता है तो उसके लिये सोना बड़ा आवश्यक है। जब तक कोई सोयेगा नहीं तो उसको स्वप्न नहीं आयेगा। पहले हम अपने साकार से निराकार स्वरूप में जायेंगे और उस निराकार से बाद में स्वप्न की सृष्टि होगी। इसी प्रकार जब ईश्वर साकार संरचना करते हैं तो वह अपने निराकार मानस से करते हैं। यहाँ पर एक बहुत महत्त्वपूर्ण बात है, जो जीवनोपयोगी भी है कि जब निराकार मानस में कोई सत्य संकल्प हो जाये और उस पर ईश्वर के हस्ताक्षर हो जायें तो वह वस्तु आपके सामने प्रकट हो जायेगी। निराकार मानस में जब विशुद्ध संकल्प होते हैं तो उन संकल्पों

की पूर्ति के लिए किसी कर्म की आवश्यकता नहीं है। वह पदार्थ, वह वस्तु आपके सामने प्रकट हो जायेगी।

जैसे किसी संत ने वरदान दे दिया कि जाओ ऐसा हो जायेगा, तो वैसा ही होगा। उसके लिए किसी कृत्य की आवश्यकता नहीं है। बस, वह हो जायेगा और आपके सामने प्रकट हो जायेगा। परमात्मा का एक संकल्प होता है, तो करोड़ों ब्रह्माण्ड बन जाते हैं, करोड़ों समाप्त हो जाते हैं। इसे कहा है **ईश्वर का भृकुटि-विलास।** उसकी भृकुटि उठती है तो हज़ारों नये ब्रह्माण्ड बन जाते हैं, क्योंकि उसमें सत्य-संकल्प होता है। उस लययोग, उस मृत्युलोक के धरातल पर जब आप मात्र एक मुट्ठी राख हैं, उस समय आपका मन विशुद्ध होता है, ईश्वरीय होता है क्योंकि उस समय आसक्ति, भक्ति में बदल जाती है। आपकी वासनायें समाप्त हो जाती हैं, वे उपासना बन जाती हैं। आपका राग–अनुराग बन जाता है और आपका मन परम विशुद्ध होता है और उस विशुद्ध मन से जो भी चाहें आप अपनी इस देह में परिवर्तन ला सकते हैं, कि हे प्रभु ! मुझे दिव्य देह दे दो ! संकल्प हो गया और ईश्वर के हस्ताक्षर हो जाते हैं, तब आपके हृदय में भक्ति जाग्रत हो जाती है कि मैं हर्ष, उल्लास से भर जाऊँ। दिव्य देह क्या होती है, उसके लक्षण क्या हैं, क्योंकि दिव्यता क्या है? इसका वर्णन नहीं किया जा सकता। जिस प्रकार क्रोध क्या है, हम नहीं बता सकते लेकिन क्रोध में क्या होता है, वह सभी बता सकते हैं। प्रेम क्या है? कोई नहीं बता सकता। प्रेम में क्या होता है, इसका वर्णन किया जा सकता है।

दिव्यता क्या है? कोई नहीं जानता। दिव्यता में क्या होता है? **हर्ष, उल्लास, अभय, आरोग्यता**–हर्ष उल्लास क्या है, कि आप क्यों प्रसन्न हैं? बस ! प्रसन्न हैं। **अभय** ! जब आपको मृत्यु का भय ही नहीं रहा तो आपके सारे भय समाप्त हो जाते हैं। तो आप जीवन से खेलते हैं, विभिन्न रूपों में, क्योंकि आपका कोई क्या बिगाड़ लेगा? क्योंकि आप जानते हैं, जीवन शुरू होता है शून्य से और समाप्त होता है शून्य पर। आप जीवन से खेलते हैं। जो कुछ भी आप कर रहे हैं अहम्-बुद्धि के बल पर, वह आप सब शून्य कर

रहे हैं। यदि आप शून्य को अहमियत देना चाहते हैं तो उसके बाईं तरफ **एक** लगा दीजिये। तो वह एक क्या है? आपके ईश्वर का नाम। जो कुछ भी करिये आप ईश्वर के नाम से करिये। वह उसका हस्ताक्षरित होगा, आपको आनन्द आयेगा और उसके अतिरिक्त जो करेंगे वह आपको तनावित कर देगा क्योंकि वह मात्र शून्य ही होगा। यह दिव्यता के लक्षण बता रहा हूँ। दिव्य-जीवन में क्या होता है? हर्ष, उल्लास, सहज मुदिता, अभय किस बात का भय? पद-पोस्ट, जायदाद, सब छूटने वाली हैं। जब आप शून्य में उतर जाते हैं और यह भाव आपमें अन्तर्निहित हो जायेगा तो आपका जीवन का भय समाप्त हो जायेगा। आपका जीवन कैसा हो जायेगा? **अभय।** हर्ष, उल्लास, अभय, आरोग्यता—आरोग्यता का अर्थ यह नहीं है कि आप शारीरिक रूप से ठीक हों! अगर आपको रोग का भय भी है, तो भी आप रुग्ण हैं। आज प्रत्येक व्यक्ति मानसिक रूप से रुग्ण है। जब रोग आपके मानस से हट जाये, दैहिक रोग होते हुए भी यदि आपका मानस आरोग्य हो तो वह आरोग्यता है। जब आप देह से कुछ क्षण के लिए परे हो जाते हैं तो आपका मानस परम विशुद्ध और आरोग्य हो जाता है। जब कुछ क्षण के लिए वैराग, अनुराग एवं उपासना द्वारा ईश्वर के साथ, उस महासागर के साथ जुड़ जाते हैं, तब आपको असीम की संतुष्टि मिल जाती है और उस संतुष्टि के मिलने के बाद आप **सर्वसम्पन्न** हो जाते हैं:—

''गोधन, गजधन, बाजधन और रत्नधन खान,
जब आवै संतोष धन सब धन धूलि समान।''

विश्व की सारी सम्पदा तब आपको धूलि के अलावा कुछ भी नज़र नहीं आती। उसको कहा है **सर्वसम्पन्नता**—हर्ष, उल्लास, अभय, आरोग्यता, शक्ति, भक्ति, मस्ती, साहस, उत्साह—आनन्द-मिश्रित कर्म का नाम है **उत्साह।** जो दिव्य मानव हैं, वे उत्साहपूर्वक जीवन बिताते हैं। उत्साह-सम्पन्न होते हैं वे और जितनी भी विभूतियाँ हैं, वे उनके चरणों में स्वयं चलकर आती हैं। सांसारिक मोह, ईश्वरीय मोह में बदल जाता है, कि ''हे प्रभु! मैं जिऊँ तो तेरे साथ और जब मैं मरूँ तो तू मेरे सामने हो। मैं तेरे

बिना जी भी न सकूँ और तेरे बिना मर भी न सकूँ। ऐ मेरे आका! मेरा कर्मक्षेत्र हो तुम से, तुम तक और कर्म क्या हो? सब तरह से सिर्फ आपके साथ रहूँ। मैं जहाँ भी होऊँ, जो भी होऊँ, जो भी करूँ, जैसा भी करूँ तो मैं यह देखता रहूँ, तेरी उँगली पकड़ी हुई है कि नहीं। अगर वह कर्म तुम्हारे बिना है तो वह मेरे लिए विष है और ज्ञान क्या हो? कि मेरे सब कुछ तुम ही हो। मेरा जो भी सम्बन्ध किसी से हो वह तुम्हारी वजह से हो। कोई दोस्त हो तो तुम्हारी वजह से, कोई दुश्मन हो तो तुम्हारी वजह से, बस इतना ही मुझे ज्ञान हो।'' तो यहाँ ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग का संगम हो जाता है। किनके जीवन में? उनके, जो लोग दिव्य-जीवन बिताते हैं।

ईश्वरीय मोह के बाद आती है **ईश्वरीय कृपा।** कृपा तो सब पर होती है, लेकिन सब तक पहुँचती क्यों नहीं है, बीच में रुकावट क्यों है? कभी किसी हाथी से इश्क हो जाये और उसका आना-जाना शुरू हो जाये तो अपने घर का दरवाजा ऊँचा करना पड़ेगा, नहीं तो हाथी अंदर कैसे आयेगा? अरे! खुदा से इश्क करते हो तो दिल-दिमाग खोल दो! खुदा और बन्दे में अंतर क्या है? **खुदा जो खुला हुआ है और बंदा जो बँधा हुआ है।** अगर हिम्मत है तो खुदा को भी बन्दा बना लो। कभी-कभी भक्त बना लेते हैं खुदा को भी बन्दा। कभी-कभी उस खुदा को भी अवतार लेने पड़ते हैं मानव-रूप में, अपने भक्त की वजह से। ऐसा भी हुआ है भारत-भूमि में और ध्यान दीजिये, परमात्मा जब भी अवतार लेता है तो मात्र, भारत-भूमि पर ही लेता है क्योंकि भारत-भूमि में ही ईश्वर के अवतरित होने की सारी औपचारिकतायें पूर्ण करने की शक्ति है। बात चल रही है कृपा पर। कृपा कब होती है? कृपा तो वह सब पर करता है। कृपा को प्राप्त करने के लिए श्रद्धा चाहिये। श्रद्धा एकतरफा होती है। जब आप उसकी याद में, उसके इश्क में मर मिट जाते हैं, खाक बन जाते हैं! खाक बनकर उसको पुकारते हैं, कि हे प्रभु! यह मेरी खाक नहीं है, मैं खाक हूँ। बड़ा अंतर है। जब आप कहेंगे मेरी खाक है तो आपको अपना नाम-रूप, अपनी हैसियत याद रहेगी। एक-एक शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण है।

यह नहीं कहना कि, मेरी खाक है, कि मैं खाक हूँ। कि ऐ मेरे आका ! ऐ मेरे प्रभु ! अब मैं खाक हूँ। मैं तेरी तरह धर्मातीत हूँ, मेरा कोई धर्म नहीं, खाक का क्या धर्म होगा? मेरा कोई कर्म नहीं है, कोई कर्त्तव्य नहीं है मेरा। मैं लिंगातीत, देशातीत, कालातीत, मैं भी तुम्हारी तरह ही हूँ, पुण्यातीत, पापातीत, मैंने कोई कर्म नहीं किया है। मैं पुण्य, पाप से परे हूँ, अब तू आ के मुझे छू। यह अधिकार आपको उसी वक्त होगा, जब आप खाक होंगे। अरे ! जब-जब मैंने देह धारण की, तब-तब तूने आकर मुझे अपना दीदार नहीं दिया। कुछ कारण थे, मैं मानता हूँ कि मैं पुण्यी था, पापी था, मैं पाखण्डी था, धूर्त था, लेकिन अब तो मैं खाक हूँ। अब तो आप मेरा दोष नहीं निकाल सकते। इसलिए मुझे आके छू! अगर आप मुझे छूते नहीं हो, तो आपको इसका कारण बताना पड़ेगा। यह हकूक आपको कब मिलेगा? जब आप खाक होंगे। उस वक्त कृपा की बाढ़ आ जाती है। कृपा आपकी तरफ बहने लगती है। कृपा आपको घेर लेती है। तो कृपा के लिए चाहिये श्रद्धा और श्रद्धा के लिए चाहिये समर्पणः—

''जान दे दी, जो दी, उन्हीं की थी,
हक तो यह है कि हक अदा न हुआ।''

अरे ! मैंने तुम्हारे इश्क में अपनी जान दे दी और हकीकत यह है कि मैं कुछ नहीं दे सका, हक अदा नहीं कर सका क्योंकि जान तुमने मुझे दी थी। यह तो तुम्हारी ही दी हुई थी, ऐ मेरे आका ! जब आपके समर्पण का समर्पण हो जाये, कि मैं अपनी जान, अपने जीवन का एक-एक पल, एक-एक श्वास, आपको अर्पित करता हूँ, यह भी जो मुझे आप ही का दिया हुआ है, क्योंकि गंगा की पूजा अगर किसी जल से होती है तो वो गंगा-जल ही होता है। ऐ माँ गंगें ! मैं तेरी, तेरे जल से ही पूजा कर रहा हूँ, हे प्रभु ! यह श्वास, यह समय का एक-एक पल, एक-एक क्षण, मेरे जीवन की एक-एक धारा तुम्हारी है और तुम्हारी शक्ति से एवं कृपा से तुम्हें अर्पित कर रहा हूँ। इसके कारण आप हैं। मैं तो इसे अर्पित भी नहीं कर सकता क्योंकि मुझको इस देह से मोह हो गया हैः—

''जिस्म और रूह का रिश्ता भी क्या रिश्ता है?
उम्र भर साथ रहे मगर तआरूफ न हुआ।''

अरे ! मेरी रूह और मेरी देह की मुलाकात नहीं हुई, सारी उम्र। इसकी वजह भी आप ही हैं। यह हकूक, यह प्रार्थनायें उस वक्त निकलती हैं जब **आप खाक होते हैं।** मैं खाक हूँ अतः, मुझे आकर जल्दी छुओ, क्यों? क्योंकि यह बादल बरसेंगे, मुझे बहाकर ले जायेंगे। यह हवा चलेगी, मुझे उड़ाकर ले जायेगी। इसलिए मुझे अभी आकर छू लो। जब आपकी रूह से यह शब्द निकलते हैं तो वह आपको छूता है। पूछता है, कि क्या चाहिये? दिव्य-देह आपको माँगनी नहीं पड़ती, वह स्वतः मिल जाती है। हर्ष, उल्लास, अभय, आरोग्यता, सर्वसम्पन्नता, शक्ति, भक्ति, मस्ती, साहस, उत्साह, कृपा और आनन्द ! मुझे अपना अविरल नाम-जाप दे दो, आप अपनी माँग रखते हैं। अरे ! दुनिया को तो भज के मैंने देख लिया। अब मैं तुम्हें भजना चाहता हूँ। अविरल नाम-जाप दे दो और मुझे उस कर्म-बन्धन से मुक्त कर दो ! क्योंकि मैं जन्म-जन्मांतरों से गधे की तरह अपने पुण्य-पापों का निरर्थक बोझा ढोता आ रहा हूँ,। मेरे आका ! मुझे कर्म-बन्धन से मुक्त कर दो !

''सन्मुख होई जीव मोहि जबहीं, कोटि जन्म अघ नासेहिं तबहीं।''

जब जीव मेरे सन्मुख होता है तो मैं उसके करोड़ों जन्मों का पाप नष्ट कर देता हूँ, और पाप नष्ट करते ही एक काम और करता हूँ कि उसकी उँगली किसी संत को पकड़ा देता हूँ ताकि आगे से भूल न हो। संत और सत्संग का मिलना भी एक बड़ी चमत्कारिक घटना है और संत-शरण में जीवन में दिव्यता सहज ही आ जाती है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(14 अप्रैल, 12 मई, 2 ,16 जून 2002)

उत्तराधिकार

आज इष्ट-इच्छा से एवं आप सब परम जिज्ञासुओं की सद्प्रेरणा से, आपके सम्मुख अति व्यावहारिक विषय, जोकि लगभग सभी गृहस्थियों के लिये चिंतन का विषय बना रहता है, वो प्रस्तुत करूँगा, जिसका नाम है–**'वसीयत', WILL, 'उत्तराधिकार'**।

उत्तराधिकार शब्द से बहुत कम लोग परिचित हैं, जो हमारी भारतीय संस्कृति का एक मूल था। हमारे मनीषियों का एक निर्देश था **'उत्तराधिकार'।** यह शब्द लोप सा हो गया है। आज एक नया दृष्टिकोण, जोकि है बहुत पुराना, उसको ग्रहण करिए, उसको आत्मसात् करिए और उसको सद् भारतीयों में उजागर करिए। यह मेरी आकांक्षा है। हम बहुत बड़े तनावों से मुक्त हो जायेंगे और आने वाली पीढ़ियों को भी उन तनावों से मुक्त करने में परम सहायक होंगे। हमारी भारतीय संस्कृति में WILL अथवा वसीयत नाम की कोई भी चीज़ अभी तक अस्तित्व नहीं रखती। कितना दोषपूर्ण है यह अधिनियम, जिसको दुर्भाग्यवश सरकारों ने, कोर्ट-कचहरियों ने मान्यता दी है और जिसका हम बहुत अन्धानुसरण कर रहे हैं। आज मैं एक कार्य दे रहा हूँ प्रत्येक जिज्ञासु को, कि एक भी व्यक्ति ऐसा हमारे पास ले आइये जिसने अपने सगे-सम्बन्धी के नाम कोई WILL लिखाई हो और उस WILL लिखाने के बाद वो भयभीत न हुआ हो, विक्षिप्त न हुआ हो। एक प्राकृतिक और दैवीय नियम है, कि जब कोई व्यक्ति वसीयत लिखवाता है, तो वह भयभीत हो जाता है, भ्रमित हो जाता है, त्रसित हो जाता है और बार-बार अपनी वसीयत को बदलवाता है वह, उस त्रास

को, उस भय को, उस भ्रम को मिटाने के लिये। 80 – 90 प्रतिशत लोग ऐसे हैं जो जल्दी-जल्दी वसीयत बदलते रहते हैं और बदलने के नाम पर उनको थोड़ी बहुत राहत महसूस होती है। आप एक भी व्यक्ति हमारे पास ले आइये जिसने अपने किसी पूर्वज से वसीयत की हुई सम्पदा अथवा धन प्राप्त किया हो और उसको भोगा हो और आनन्द के साथ भोगा हो। यह हो नहीं सकता। यह दिव्य-अधिनियम के खिलाफ है, क्यों है? आज हम इसका अति सूक्ष्म विश्लेषण करेंगे।

वसीयत की परिभाषा से सभी परिचित हैं। अभी मैं उत्तराधिकार की बात नहीं कर रहा हूँ, अभी वसीयत की बात कर रहा हूँ। वसीयत एक उर्दू शब्द है और WILL एक अंग्रेजी का शब्द है। इन दोनों में से कोई भी हिन्दी अथवा संस्कृत का शब्द नहीं है। मानव, होश संभालते ही वस्तुओं की, डिग्रियों की, धन की प्राप्ति की ओर भागने लगता है। नाम के लिये, यश के लिये सभी दौड़ रहे हैं। कुछ प्राप्तियाँ लोगों को जन्मजात भी होती हैं और कुछ अपने जीवन-काल में प्राप्त करते हैं। जीवन के निश्चित समय पर सबके मन में एक चिंतन उठता है कि मेरे बाद इस सबका क्या होगा, इसे कौन भोगेगा? यहाँ मेरे बाद का अर्थ है—जीवन समाप्त होने के बाद और बाद का अर्थ जो हमारे मनीषियों ने लिया था, वह था—**'उत्तराधिकार'** कि जब मैं अपने जीवन-काल में इन वस्तुओं को छोड़ूँगा। क्योंकि हमारे मनीषी बहुत स्वाभिमानी एवं प्रतिष्ठित थे। हमारी भारतीय संस्कृति में जीवन बहुत प्रतिष्ठित था, तो जब स्वाभिमानी व्यक्ति को ऐसा ज्ञात होता है कि कोई वस्तु छोड़नी पड़ेगी तो उसको समय से पहले ही छोड़ देते हैं और निकृष्ट लोग उसको पकड़े रखते हैं, जब तक वो मर न जायें और मरने के बाद भी नहीं छोड़ते। उस मरने के बाद भी न छोड़ने की वृत्ति का नाम है **वसीयत**, कि अमुक जायदाद, अमुक धन, अमुक ऑफिस, **'मेरी मृत्यु के बाद'** अमुक-अमुक व्यक्ति को जाये।

कोई वसीयत लिखने वाला अपने से दस-बीस प्रश्न पूछे, कि जिस धन की, सम्पदा की, मैं वसीयत कर रहा हूँ क्या वह मेरी है? हम अपने अनेक

प्रवचनों में बार-बार इंगित कर चुके हैं कि **इस धरा पर हमारा कुछ भी नहीं है।** यह देह भी हमारी नहीं है। हम अमुक समय पर पैदा क्यों हुए, अमुक माता-पिता से पैदा क्यों हुए, अमुक स्थान पर पैदा क्यों हुए, अमुक शिक्षा हमारी क्यों है, अमुक स्त्री-पुरुष से हमारा विवाह क्यों हुआ, एक विशेष समय पर विशेष प्रतिभाओं से युक्त हमारी सन्तान क्यों होती है, कहाँ हमको मरना है, कब मरना है, जीवन में प्रमुख घटनाएँ घटित क्यों होती हैं और भविष्य में आगे क्या घटेगा? हमको कुछ मालूम नहीं है। हमें अपने जीवन के अगले आने वाले श्वास की भी कोई निश्चितता नहीं है, तो इस देह से प्राप्त वस्तुओं की क्या गारन्टी है? हमारा इस संसार में कुछ भी नहीं है। जिस वस्तु की आप वसीयत कर रहे हैं तो क्या वो वस्तु आपकी है? तो आपकी आत्मा कहेगी **'नहीं ! नहीं यह तुम्हारी नहीं है।'** जिस समय आप वसीयत कर रहे हैं कि मेरी मृत्यु के बाद यह वस्तु अमुक व्यक्ति को मिले, अरे ! बुद्धिजीवियो ! स्वयं से पूछो कि क्या मृत्यु के बाद उस वस्तु पर आपका अधिकार होगा? अरे ! आपके शानदार बंगले में आपकी राख तक लाने का नियम नहीं है। आपकी मृत्यु के बाद आपकी डिग्रियाँ, आपका पद, आपका धन, आपकी सम्पदा आपकी कैसे हो सकती है? आप अपनी मृत्यु के बाद भी उस पर अधिकार नहीं छोड़ना चाहते कि मेरी मृत्यु के बाद, मेरी अमुक वस्तु, अमुक व्यक्ति के पास जाये। अरे ! वह जीते जी आपकी नहीं, तो आपकी मृत्यु के बाद आपकी कैसे होगी? वसीयत में हम लिखते हैं कि मेरी मृत्यु के बाद, मेरा यह धन, मेरी यह सम्पदा उस व्यक्ति के पास जाये। अरे ! मृत्यु के बाद तो आपका अधिकार ही नहीं होगा उस पर। हम अज्ञानवश उस वस्तु व सम्पदा पर अपनी मृत्यु के बाद भी अधिकार छोड़ना नहीं चाहते। जिस व्यक्ति के लिये आप वसीयत कर रहे हैं क्या आपकी मृत्यु के समय तक उसके ज़िन्दा रहने की कोई सुनिश्चितता है? कुछ मामलों में ऐसा देखा जाता है कि **जिसके नाम वसीयत की जाती है, वह पहले चल बसता है।** जो वस्तु, सम्पदा, धन आप वसीयत कर रहे हैं, क्या वह मृत्यु के समय भी आपकी होगी? आप नहीं जानते। जिसके नाम आपने

वसीयत की है, अगर वह व्यक्ति उस समय ज़िन्दा भी रहे तो क्या उस सम्पदा की या धन की, भौतिक प्राप्ति का अधिकार उसको मिलना सुनिश्चित है। किसी बुज़ुर्ग की मृत्यु बाद में होती है और WILL के झगड़े पहले शुरू हो जाते हैं। उसके भोग के अधिकार की बात छोड़िए, उसकी प्राप्ति का अधिकार भी सुनिश्चित नहीं है।

आप जो यह वसीयत का वक्तव्य लिख रहे हैं क्या आप उस पर अडिग रहने के लिये बाध्य हैं और अगर नहीं हैं, तो क्या? आप नहीं जानते। वसीयत लिखने के बाद आप घबरा क्यों रहे हैं? आप नहीं जानते। आप कुछ भी नहीं जानते। क्या आप अपनी उन प्रतिभाओं की वसीयत कर सकते हैं जिनके द्वारा आपने धन-सम्पदा कमाई? प्रत्येक व्यक्ति जब धन कमाता है तो उसमें कुछ न कुछ प्रतिभाएं अवश्य होती हैं। कोई गायक है, कोई लेखक है, कोई पेंटर है, कोई बढ़ई है, कोई मोची है, कोई नाई है, कोई धोबी है, कोई व्यापारी है, कोई चिकित्सक है। कुछ न कुछ प्रतिभाएँ हर व्यक्ति में होती हैं। तो उनसे पूछें कि **क्या अपने हुनर की भी वसीयत कर सकते हैं,** कि मैं बहुत अच्छा गायक हूँ, मेरी मृत्यु के बाद मेरा बेटा भी गायक बने। कैसे हो सकता है? मैं बहुत अच्छा लेखक हूँ और मेरे बाद मेरा बेटा या बेटी भी लेखिका बने, यह नहीं हो सकता। आप उन प्रतिभाओं की वसीयत नहीं कर सकते। **प्रतिभाओं के उत्पाद की वसीयत कर सकते हैं लेकिन प्रतिभा की वसीयत नहीं कर सकते।** बड़ा विचारणीय विषय है। क्या आप अपनी आध्यात्मिक सम्पदा की वसीयत कर सकते हैं? आपका जप, तप, ध्यान, यज्ञ-हवन, मन्त्र, चिन्तन—क्या आप इन सबकी वसीयत कर सकते हैं? आप नहीं कर सकते। उसका उत्तराधिकार आपके सेवक, आपके शिष्य, आपकी सन्तान, जो आपमें श्रद्धा रखती है, विश्वास रखती है, जिसकी नीयत सही है, उसको स्वतः मिल जाता है। याद रखिए, जितनी धन-सम्पदा आपके तप पर आधारित है, आप अपने जीवन-काल में मात्र उसी धन-सम्पदा का सुख और आनन्द ले सकते हैं। अन्यथा जो सम्पदा आपने हड़पी है, अपनी बुद्धि की शक्ति से, अपने भौतिक प्रभाव से, जनबल

से, धनबल से, वह सब भौतिक प्राप्तियाँ आपके लिये आजीवन सिरदर्द बनी रहती हैं। वे सब आपको भोगती हैं। आपने अपनी बुद्धि की चतुरतावश जो चीज़ें इकट्ठी की हैं या हड़पी हैं, वे आपके लिये भय का हेतु बन जायेंगी। जाकर देखिए कोर्ट में। आपको उन लोगों की भीड़ मिलेगी जिन्होंने वस्तुएँ हड़पी हैं। जिनके चरणों में वस्तुएँ आयी हैं, वह तप पर आधारित होती हैं। **जब आपका तप फलीभूत, उजागर एवं प्रकाशित होता है, तो उसके ऊपर आधारित जितनी भी आपकी सम्पदा है, जो आपका श्रद्धालु होगा, वह उसका आनन्दपूर्वक भोग अवश्य करेगा।**

इतने प्रश्न जब कोई वसीयत लिखने वाला स्वयं से करता है, तो उसके हाथ काँपने लग जाते हैं। ऐसा क्यों होता है? वसीयत लिखवाने के बाद आदमी घबरा क्यों जाता है और वसीयत से प्राप्त सम्पदा एवं धन को पाने वाला उस सम्पदा को भोग क्यों नहीं पाता? सदियों से पाश्चात्य-अनुगमन के कारण यह परम्परा चल रही है, यह कानून बन गया है। आज तक यह किसी ने विचार ही नहीं किया कि 99.9% लोग उस सम्पदा को, उसके धन को, उन पदार्थों को भोग क्यों नहीं पाते? वे पदार्थ उनको भोगने लग जाते हैं। धक्के शुरू हो जाते हैं, कोर्ट-कचहरियों के। कई वकील पीछे लग जाते हैं, कोई डाक्टर पीछे लग जाता है, कोई तथाकथित सगा-सम्बन्धी पीछे लग जाता है, जो सदा उसको अनुचित सलाह देता है। ऐसा क्यों है, इसके पीछे आध्यात्मिक दर्शन क्या है? इसका संक्षेप में वर्णन करूँगा। यह मैं अन्य प्रवचनों में भी कर चुका हूँ।

सम्पदा कौन सी बड़ी है? अरे! आप भौतिक सम्पदा के पीछे भागते हो और जीवन-दर-जीवन व्यर्थ करते हो। एक बार उस प्यारे से अपनी निगाह लगा लो, उसके साथ अपना ध्यान लगा लीजिये, उसमें समाहित हो जाइये, लीन हो जाइये। अगर उसको मिलने की खुशी आपको प्राप्त न हो सके, तो उससे बिछुड़ने का ग़म ही विकसित कर लीजिए, कि प्रभु! मैं तुमसे मिलने का अधिकार खो चुका हूँ। तुम भी जानते हो, मैं भी जानता हूँ, कि मैं तुमसे नहीं मिल सकता:—

''माना तुम्हारी दीद के काबिल नहीं हूँ मैं
तू मेरा शौक देख मेरा इन्तज़ार देख।''

'अगर मैं तेरी दीद के क़ाबिल होता तो मैं तुम्हें पा गया होता और तुम्हारा दर्शन कर चुका होता। मैं तुम्हें पाने का अधिकारी नहीं हूँ। अरे ! अपने से बिछुड़ने का ग़म ही दे दो मुझे।' इस ग़म में भी आपके पास इतनी ज्यादा आध्यात्मिक सम्पदा आ जायेगी कि आपकी दृष्टि पड़ते ही आप किसी को शहंशाह बना सकते हैं।

सारी उम्र मृत्यु तक व्यक्ति भयभीत रहता है, असुरक्षित रहता है। जो चीज़ें **'प्राप्त थीं'** और जो चीज़ें **'प्राप्त कीं'** उनसे उसको हमेशा अतृप्ति ही रही। अतृप्ति के बाद वो चीज़, वो सम्पदा उसको प्राप्त हो भी गई तो यदि उसको संतुष्टि हुई भी तो वह भी क्षणिक थी। वह फिर से असंतुष्ट हो गया। इस प्रकार हम अपने जीवन-काल में अपने से बड़ी चीज़ों की प्राप्ति करने वालों को और उन वस्तुओं को देखकर अन्ततः असंतुष्ट ही रहते हैं। अतृप्ति समाप्त होती है असंतुष्टि में और असंतुष्टि से मृत्यु तक कोई न कोई आसक्ति बनी रहती है। जिसे मैंने अमरत्व के पांच प्रवचनों में विस्तार से स्पष्ट किया है कि किस प्रकार आसक्तियों को लिये हम अकाल मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

जिस सम्पदा की वसीयत किसी ने लिखा दी है, तो मृत्यु तक वह धन-सम्पदा उसके दिल-दिमाग में, उसकी रूह में घूमती रहती है कि पता नहीं मेरी बेटी उसको सम्भाल पायेगी कि नहीं। मेरा दामाद उसको ले भी पायेगा या नहीं। पता नहीं, भाई आपस में लड़ न पड़ें। तो एक भाव और उत्पन्न होता है, इसे कहते हैं—**'असुरक्षा'**। अतृप्त था वह, असन्तुष्ट था वह, आसक्त था वह और साथ में अशान्ति हुई उसको और अशान्ति के साथ हुई असुरक्षा और उस असुरक्षा के साथ वह भयभीत तो था ही, विक्षिप्त भी हो गया। तो ये सातों मिलकर उसको प्रेत-योनि में ले जाते हैं, दुर्गति हो जाती है उसकी।

सावधान ! आसक्त व्यक्तियों की मृत्यु होती है, हमारी भारतीय

संस्कृति में मौत नाम की कोई संज्ञा नहीं थी, हम उसको निर्वाण कहते थे। स्वर्ग सिधारते थे हम, वैकुण्ठवासी होते थे हम, गोलोकवासी होते थे हम, समाधि लेते थे हम। यह आसक्तियाँ हमको मृत्यु के द्वार पर ले जाती हैं। मृतक कर देती हैं। मृत्यु उसकी होती है जिसको उसकी देह छोड़ती है। देह की एक अवधि है। उस निश्चित अवधि पर ईश्वर ने आपसे यह नहीं पूछना कि आपका पोता हो जाये, तब लेके जायेंगे, उसने ले जाना है। तो देह आपको छोड़ती है। आसक्त व्यक्ति को देह छोड़ती है। जब देह किसी को छोड़ती है तो इसको कहा है **'मृत्यु'**, और जब कोई महापुरुष देह छोड़ता है कि भई, काम हो गया अब, जब चाहे जान चली जायेः–

''मैं तो नाला हूँ ज़िन्दगी से मगर,
ज़िन्दगी मुझसे प्यार करती है,
मैंने कितना इसे ज़लील किया,
फिर भी कमबख्त मुझ पे मरती है।''

कि अब तो देह रहे, या चली जाये, अपना काम तो हो गया है। उनका होता है **निर्वाण**। वे समाधिस्थ होते हैं। जैसे हमारे ऋषि, महर्षि, राजर्षि, देवर्षि हुआ करते थे। हमारे बुज़ुर्ग हुआ करते थे। तो आसक्ति से हुई, अकाल मृत्यु और अशान्ति जुड़ गई तो हुई अधोगति। विशुद्ध भारतीय कौन हैं? जिसको जन्म के बाद भी जन्म लेने का दिव्य अधिकार है।

अतृप्ति, असंतोष, आसक्ति, अशान्ति, असुरक्षा, भय एवं विक्षेप–सातों वृत्तियों से युक्त व्यक्ति की जायदाद एवं सम्पदा जिसको वसीयत के तहत प्राप्त होगी, उसको ये तामसी वृत्तियाँ भी उस सम्पदा के साथ उपहार के रूप में मिलेंगी और कुछ न कुछ बनके चिपक जायेंगी। किसी को तो ऐसा चतुर वकील टकरेगा कि सारी उम्र उसको कोर्ट में घसीटे रखेगा, कि नहीं-नहीं बस दो पेशियों की बात है, उसके बाद तो केस आपके हक में जायेगा। लगे रहो सारी उम्र। वह केस चल रहा है और उसकी छुट्टी हो जाती है अथवा कोई डाक्टर ऐसा मिलेगा कि बस आप हर पन्द्रह दिन बाद हाज़री भरते रहा करिये। जाँच करवाते रहिये, होता कुछ नहीं लेकिन

डाक्टर उसको एक प्रेत-वृत्ति बन कर चिपक जायेगा। बहुतों के चिपक जाते हैं और या किसी को ऐसा कोई तथाकथित प्रियजन या सगा-सम्बन्धी मिल जायेगा जो उसको ऐसी सलाह देगा जोकि उसको किसी गर्त में ज़रूर गिरा कर छोड़ेगी और उसे वह अपना परम हितैषी ही मानेगा। वह भी प्रेत बनकर चिपका होगा। उसे बड़ा अच्छा लगता है वह और उसे देखकर और खुश हो जाता है। लेकिन वह सलाह देगा मन्थरा की तरह। किसी के घर में इन छः-सात वृत्तियों के उत्पाद को लेकर कोई ऐसी सन्तान पैदा हो जायेगी कि यह तो मेरे पिताजी का ही कोई स्वरूप लगता है या कि मेरे दादा जी का ही पुनर्जन्म है। वह सन्तान उसे न जीने देगी और न मरने देगी। यह बड़ी व्यावहारिक बातें बता रहा हूं। मैं भी गृहस्थी हूँ, आप भी गृहस्थी हैं। सावधान ! किसी लालच में मत आना। वसीयत मत लिखना क्योंकि अन्तिम श्वास तक आपकी वृत्ति, आपकी सम्पदा से नहीं जायेगी, आपकी संतान से नहीं जायेगी। जिसके नाम वसीयत लिखी है उसकी तरफ से आपकी वृत्ति नहीं जायेगी और आपकी वो वृत्तियाँ आपकी सम्पदा के साथ उपहार-रूप में मिलेंगी उसको। अथवा कोई ऐसा किरायेदार मिल जायेगा, कि लो बैठ गये शेषनाग की तरह और धक्के खाते रहिये। बस जी किरायेदार निकल जायें फिर मैं स्वतन्त्र हो जा ऊँगा। अक्सर आप देखेंगे कि किरायेदार और मालिक मकान का झगड़ा रहता है। हमने सुनाया था एक बार, फिर सुना देते हैं आज, कि एक किरायेदार और मालिक मकान का बड़ा झगड़ा था आपस में। एक दूसरे को देखकर दोनों का मन खराब हो जाता था। तो एक दिन किरायेदार एक पुष्पों की थाली सजाकर, धूप-बत्ती, नैवेद्य और मिठाई इत्यादि सब रखकर मालिक मकान के घर पहुँचा। जाकर घंटी बजाई। मकान मालिक बड़ा हैरान हुआ कि पहले हर रोज़ तो यह मुझे गाली निकालता था आज इसे क्या हो गया ! बोला 'क्या कर रहे हो यहाँ।' वह बोला—'आपकी पूजा कर रहा हूँ,' बोले 'क्यों कर रहे हो पूजा,' कहा ''कि आज नाग-पंचमी है।'' उसने थाली उठाकर फेंक दी। वह बोला—''देखिये नाग हैं न आप, कैसे फुंकार मारी आपने ?'' और या

उसको ऐसा किरायेदार मिलेगा जो कुछ नहीं देगा और उसका खर्चा करवाता रहेगा। वह भी उसके बुजुर्गों की कोई वृत्ति आकर मिलती है। कइयों को बहुत अच्छे किरायेदार मिलते हैं, जो घर आकर किराए के पैसे देते हैं।

जीवन में हर व्यक्ति खेलता है कुछ न कुछ, बनता भी है। एकत्रित भी करता है, इन सबसे मुक्ति के लिये हमारे मनीषियों ने एक शब्द दिया था, एक परम्परा उसका नाम था **'उत्तराधिकार'**। हम कभी नहीं कहते हैं कि **'उत्तराधिकार नामा'** लिखवाने जा रहा हूँ। कहते हैं **'वसीयतनामा'**। **'उत्तराधिकर'** क्या था? उत्तराधिकार का अर्थ है–**'मेरे बाद का अधिकार'**। बाद के अधिकार का अर्थ, मरने के बाद का नहीं है।

हमारे ऋषि-मनीषियों ने एक भारतीय मानव के जीवन को चार आश्रमों में विभाजित किया था जो बहुत व्यावहारिक तो नहीं है, लेकिन कुछ सार्थक अवश्य है। **ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और सन्यास**। जीवन के प्रथम 25 वर्ष **'ब्रह्मचर्य'** जिसमें आप अपनी समस्त शक्तियों को प्रदीप्त करें, उत्पन्न करें, बढ़ावें, एकत्रित करें क्योंकि आपको फिर गृहस्थ में उतरना है। गृहस्थ कोई आसान आश्रम नहीं है। यह कोई भोग-आश्रम नहीं है। **महायोग है गृहस्थ।** उसके बाद के 25 वर्ष **'गृहस्थ'**। गृहस्थ-आश्रम में महारति आदि क्रीड़ाओं द्वारा संतान उत्पन्न करना। देवऋण, ऋषिऋण, पितृऋण से अपने आपको उऋण करने के लिये सतत् प्रयास करना और यह भाव रखना कि मैं इनसे कभी उऋण नहीं हो सकता हूँ। यह मैं **'तीन ऋण'** शीर्षक प्रवचन में सविस्तार वर्णन कर चुका हूँ। गृहस्थी के बहुत कर्त्तव्य होते हैं, समाज, देश और सम्पूर्ण विश्व के लिये, जिसको हम लोग भूल चुके हैं। पच्चीस वर्ष में वो जिस भी किसी कारोबार को, सम्पदा को, धन को विकसित करता है, पैदा करता है उसके साथ उसकी स्वाभाविक आसक्ति हो जाती है। उसके बाद पच्चीस वर्ष यानि पचास वर्ष की आयु के बाद हमारे मनीषियों ने विराम लगाने के लिये कहा था कि ''सावधान! आप अपने तथाकथित कृत्यों से उपराम होते जाइये'' और उसको पच्चीस वर्ष

'वानप्रस्थ' का समय 50 वर्ष से 75 वर्ष दिया। इन पच्चीस वर्षों में वह कारोबार को छोड़ दे धीरे-धीरे और उसके बाद अपने अनुभवों का लोगों में प्रचार-प्रसार करे, आपके ऐसे अनुभव जिससे किसी को शिक्षा मिल सके। क्योंकि जिस कार्य को विकसित करने में आपने पच्चीस वर्ष लिये हैं इससे आसक्ति छूटने में मानसिक रूप से 25 वर्ष लग जाते हैं, और होता क्या है कि पचास वर्ष के बाद ही अक्सर लोगों का मन बनता है कि मेरा लड़का योग्य हो जाये तो उसके बाद मैं कारोबार को त्याग दूँगा। लेकिन ऐसा होता नहीं है। लड़का योग्य हो जाता है, उसके भी लड़के हो जाते हैं, लेकिन बुज़ुर्गों का मन कारोबार से नहीं हटता। बड़े कर्मठ हैं जी। हमारे दादा जी बड़े कर्मठ हैं। सुबह से शाम तक दुकान पर बैठे रहते हैं, तो इसका अर्थ वह सातों वृत्तियों को अवश्य साथ में लेकर जायेंगे। अतृप्ति, असंतुष्टि आदि और वो जो मैंने सारी श्रंखला बताई थी।

कर्म क्या है, कर्मठता क्या है? एक ही कर्मठता है और कर्त्तव्य है, और वह है—**'पुरुषार्थ'।** पचास वर्ष की आयु तक आपने जो कुछ भौतिक रूप से किया उससे छुटकारा पाने के लिये और ब्रह्मचिंतन के लिये आपको पुरुषार्थ नामक कर्म करना पड़ता है। जिसके दो आयाम हैं—**'साधना' और 'उपासना'**। इसका अर्थ यह नहीं है कि आप पचास वर्ष की आयु के पश्चात साधना और उपासना शुरू करिये। वह तो आपके ब्रह्मचर्य-जीवन से चली आ रही है, उसे प्रदीप्त करना है। यह नहीं कि आज पचासवाँ जन्म-दिवस हो गया है कल से साधना शुरू हो जायेगी। ऐसा नहीं है, आप धीरे-धीरे अपने कार्य को कम करते जाइये। अगर किसी ने नियम से गृहस्थ-आश्रम बिताया है तो पचास वर्ष की आयु में वह स्वतन्त्र हो सकता है। अगर उसको आसक्तियाँ न हों तो अपने बेटे को या किसी उचित पात्र को अपनी धन-सम्पदा या कारोबार का अधिकार देकर वह वानप्रस्थ जीवन बिताये। जब तक उसकी सम्पूर्ण आसक्ति अपनी देह, परिवार, कारोबार, सम्पदा, धन आदि से न हट जाये तब तक वो वानप्रस्थ में रहे और वानप्रस्थ के बाद अन्तिम है **'सन्यास'**। यह वर्गीकरण बहुत उपयुक्त व व्यावहारिक

नहीं है। इसमें ऐसा रखें कि जब हम गृहस्थ में पड़ गये हैं तो धीरे-धीरे 50 – 55 की आयु में अपनी आसक्तियों को कम करते जायें और अपनी आध्यात्मिक उन्नति को बढ़ाते जायें। किसी चीज़ को छोड़ने के लिये आपको कुछ पकड़ना होगा। आप कभी आम के बाग में जायें और आपने कभी टपका हुआ आम खाया हो या टपका आम देखा हो तो आप पाएँगे कि जब आम अति परिपक्व हो जाता है, तो स्वयं पेड़ को छोड़ देता है। तो आपकी अनासक्ति ऐसी हो, आप इतना पक जायें गृहस्थ में, आप इतना भरपूर स्वाद लेकर उसकी निरर्थकता को आत्मसात् कर लें कि उसकी अहमियत आपके दिल-दिमाग से समाप्त हो जाए। क्योंकि किसी वस्तु की, धन-सम्पदा की, या पद की जब तक आपको अहमियत रहेगी वो चीज़ आपको खायेगी, आपको भोगेगी और जब आप उसकी अहमियत समाप्त कर देंगे तो आप उसको भोगेंगे। जब आपको ईश्वर के नाम का चस्का पड़ जाये, सत्संग का चस्का पड़ जाये तो धीरे-धीरे आपके भौतिक कार्यक्रम शिथिल होने लग जाते हैं। अनासक्ति कैसे करें? लोग कहते हैं कि अवकाश प्राप्त करने के बाद फिर क्या करेंगे? बोले ! लगे रहो फिर। वो सात का फार्मूला याद रखना और उस आदमी से दूर रहना क्योंकि वह जहाँ बैठेगा वहाँ सभी को अशान्त करेगा, अपने आपको भी और अपनी संतान को भी। इसलिये ऐसे वृद्धों की वृद्धावस्था में परिवार में दुर्गति होती है, जीते जी दुर्गति होती है। उनको उनकी औलाद भी नहीं पूछती। लोग कहते हैं कि यदि अभी हम बच्चों को धन-सम्पदा दे देंगे, तो वे हमें घर से बाहर निकाल देंगे। अरे ! आप घर में रहते हुए भी घर से बाहर निकले हुए के समान हैं। वे सामाजिक बहिष्कार कर देंगे आपका। **जिस व्यक्ति को पदार्थों में आसक्ति है, उसका परिवार भी उसका सम्मान नहीं करता।**

अतः धीरे-धीरे पचास वर्ष की आयु के करीब जाते-जाते आप अपनी सांसारिक आसक्तियों को समाप्त करते जायें और ईश्वर-चिंतन में, भजन में, सत्संग में, संत-सेवाओं में समय दें। यदि आप अपने आपको इस काम के योग्य नहीं समझते, कोई यज्ञ-हवन, जप-तप कुछ नहीं करना आता, तो आप

देश-सेवा करिए, समाज-सेवा करिए। आपके पास अनेकों प्रतिभाएँ हैं। यदि आप चिकित्सक हैं तो आप चिकित्सक के नाते मरीज़ों की सेवा कर सकते हैं। ग्रामीणों की सेवा कर सकते हैं। कोई भी कारोबार ऐसा नहीं है जिसमें आप सेवा न कर सकते हों। उस सेवा को करते-करते आपके अन्दर आपका दिव्य आपा जाग्रत हो जायेगा।

हम उत्तराधिकार देते थे **'उत्तराधिकार' का अर्थ अपने जीते जी अपने बाद का अधिकार देना,** अपना स्वास्थ्य ठीक रहते हुए छोड़ना वास्तविक उत्तराधिकार है। यदि आप किसी अपंगता के कारण या अपनी अस्वस्थता के कारण किसी वस्तु का उत्तराधिकार किसी को दे रहे हैं, तो वह कोई उत्तराधिकार नहीं है। आपका पूर्ण हस्तक्षेप अपने जीवन-काल में उस कारोबार में, धन में और सम्पदा में रहेगा। जिसको आप उत्तराधिकार देंगे उसको भी दुखी रखेंगे। अगर मेरा स्वास्थ्य अच्छा होता तो मैं काम कितना आगे बढ़ा लेता, कि तुमने तो अभी तक इतना ही किया है! तो वे एक दिन दुखी होकर सम्पदा आपको वापिस कर देंगे, कि बाबा यह लीजिये, मुझे छोड़िये। **'उत्तराधिकार'** का यदि आप आनन्द लेना चाहते हैं तो उत्तराधिकार में एक शर्त है, कि आप किसी उच्च प्राप्ति के लिये अपनी भौतिक वस्तुओं का अधिकार छोड़ रहे हैं। उच्च प्राप्ति में क्या आ गया? समाज-सेवा, देश-सेवा और सर्वोच्च लाभ ईश्वर-प्राप्ति। अब उससे क्या लाभ तथा हित होगा? जब आप अपने जीते जी अपनी किसी वस्तु की प्राप्ति का अधिकार किसी को देते हैं, अपनी सम्पदा, अपना मकान, अपनी दुकान, किसी भी उचित पात्र को (आपका पुत्र हो, आपकी बेटी हो, या आपका शिष्य हो या कोई सेवक हो, कोई हो) जब अपने जीवनकाल में छोड़ते हैं तो क्या होता है? तुरन्त आपको ईश्वर की तरफ से उससे कई गुणा अधिक वस्तु को आनन्दपूर्वक भोगने का अधिकार मिल जाता है। उदाहरण के लिये आपने एक मकान छोड़ दिया, जो आपको नहीं चाहिये तो आप विश्व में जहाँ भी जायेंगे उससे बड़ी जायदाद, उससे बड़ा मकान आपको रहने के लिये अवश्य मिलेगा। जो आपका नहीं होगा, लेकिन आपके लिये होगा।

जब यह आप अनुभव करने लगेंगे तो आप में एक दिव्य गुण जाग्रत हो जायेगा कि मैं वस्तुओं पर अपना अधिकार क्यों जमाये बैठा था? अरे ! जब मैं किसी चीज़ को अपनी कहता हूँ तो वो मेरे लिये सिरदर्दी बन जाती है। जिस-जिस वस्तु पर आप अपना अधिकार जमायेंगे वही वस्तु आपके लिये एक ज़िम्मेदारी बन जायेगी। उसकी देखभाल और उसका उचित रख-रखाव आपको करना पड़ेगा। उसके खराब होने या खोने का भय भी बना रहेगा। जिस वस्तु का भय बनेगा, उसे आप भोग नहीं सकते क्योंकि, **भय और भोग दोनों कभी एक मंच पर साथ-साथ खड़े नहीं होते।** यदि आपको अपने 'पद' से बहुत लगाव है तो वह पद भी आपके लिये तनाव का हेतु बन जायेगा। ऑफिस में जाने की खुशी नहीं होगी। घर से चलते ही आपका मन खराब हो जायेगा। ऐसे भी कई लोग मिलेंगे जो अपनी खुद की बिल्डिंग में जाने से भयभीत रहते हैं। जायदाद छोड़िये अपनी संतान से, अपनी पत्नी से बात करते समय घबरा जाते हैं।

इन सबका कारण है—**'देहाध्यास'** कि '**मैं देह हूँ।'** जब देहाध्यास से आप ग्रसित हो जाते हैं, तो देह से प्राप्त जितनी भी वस्तुएँ हैं, वे सब आपको भयभीत और तनावित कर देंगी। आज तनाव का मुख्य कारण यही है। इसलिये, सुबह उठते ही अगर आप कोई संस्कृत के श्लोक पढ़ना जानते हैं या नहीं जानते, हनुमान चालीसा जानते हैं या नहीं जानते, कोई बात नहीं परन्तु ईश्वर के सामने बहुत सरल शब्दों में यह प्रार्थना करनी है कि ''हे महाप्रभु ! यह जो देह आपने मुझे दी है, यह मेरी नहीं है। इसका एक-एक श्वास, समय का एक-एक पल, एक-एक क्षण, एक-एक गति आपकी है। यह आप भी जानते हैं और आपने मुझे भी जनवा दिया है, इसलिये मैं यह देह आपकी इच्छा से, आपकी कृपा से, आपकी शक्ति से आपके चरणों में समर्पित करता हूँ:—

''त्वदीयं वस्तु प्रभु तुभ्यमेव समर्पये।''

इन प्रार्थनाओं का भी अभिमान न लेना कि 'मैं आपसे प्रार्थना कर रहा हूँ।' अरे ! प्रार्थना भी ईश्वर की इच्छा के बिना नहीं कर सकते। हे ''प्रभु ! मैं

आपकी इच्छा से, आपकी कृपा से, आपकी शक्ति से इस देह को आपके चरणों में समर्पित कर रहा हूँ। प्रभु ! इस देह से मुझे बहुत प्रेम हो गया है, इसलिये क्षमा करिये। आपकी आँखों से अश्रु बहें, प्रार्थना करते वक्त। तो आप उस दिन का आयाम देखिए, किस प्रकार आपका दिन आनन्दमय बीतता है। यह आप आज से ही शुरू कर दीजिये। सुबह उठते ही जब आप यह प्रार्थना करेंगे तो आपका सम्पूर्ण दिन आनंदमय बीतेगा। आप जो कुछ करेंगे आनन्द में करेंगे। क्योंकि हमारा **एक दिन का जीवन है।** शास्त्र ने कहा है **नित्य-नूतन।** रोज़ उठते ही हमारा नया जन्म होता है। रोज़ अपना जन्म-दिवस मनाना है सुबह उठते ही। देह-शुद्धि करके देव-दरबार में जाइये और प्रभु-दरबार में ज्योति जलाइये, अपना जन्म-दिवस मनाइये कि 'प्रभु आपने मुझे देह दी है जो मेरे लिये है पर मेरी नहीं है,' और शाम को सोते समय रोज़ आपको वो देह छोड़नी पड़ती है। जिस वक्त आप सो जाते हैं उस वक्त आपका कोई नहीं होता, कोई रूप नहीं होता, कोई सन्तान नहीं होती, कोई पदवी नहीं होती, कोई हैसियत नहीं होती, कोई धन नहीं होता, कोई सम्पदा नहीं होती, कोई रुतबा नहीं होता। आप निराकार होते हैं और आप अपनी देह के रूप और नाम रूपी उपाधि से परे होते हैं, अगर यह उपाधि नहीं छूटती तो यह उपाधि, व्याधि बन जाती है और वो व्याधि आपको रात को सोने नहीं देती। रात भर सपने आते रहते हैं और उससे बचने के लिये पीनी पड़ती है दारू। रात को भी आपकी देह आपको नहीं छोड़ती। इसलिये सोने से पहले आप निर्वाण की स्थिति में चले जायें, कि हे प्रभु ! यह देह जो आपने मुझे दी थी, वो आपके चरणों में समर्पित कर रहा हूँ। आज दिन भर जो आपने मुझसे करवाया उसके कारण आप हैं। तो आपको रात में निद्रा अच्छी आयेगी। सुबह उठकर फिर से अपना जन्मदिवस मनाइये—नित-नूतन। इस प्रकार आपका जीवन आनन्दपूर्वक बीतेगा।

तो बात चल रही है **उत्तराधिकार** पर। जब हम किसी उच्च अथवा सर्वोच्च लाभ के लिये अपने सगे-सम्बन्धी को अपनी सम्पत्ति का अधिकार दे देते हैं, तो उससे हमारे जीवन में दिव्यता आ जाती है। दिव्य गुण आ जाते

हैं और हमारा दिव्य व्यक्तित्व जाग्रत हो जाता है। जैसे हमने कहा था कि ईश्वर ने मानव को एक विशेष व्यक्तित्व दिया है, जिसका नाम है **'दिव्य-व्यक्तित्व'।** जब हम ईश्वर से सम्पर्क करना चाहते हैं तो हमें एक विशेष मानसिक स्तर पर आना पड़ता है जिसका नाम है **'दिव्य-व्यक्तित्व'।** दिव्य-व्यक्तित्व कब पैदा होगा, जब आप अपने जीते जी अपनी प्राप्तियों का अधिकार किसी को दे देंगे । आपको क्या मिलेगा? वस्तु की प्राप्ति तो आपने दे दी लेकिन उससे कई गुणा अधिक वस्तु के आनन्दपूर्वक भोग का अधिकार आपको मिल जायेगा और वही आपको चाहिये। आपको रहने के लिये मकान चाहिये, वह आपका नहीं है, तो आपको क्या लेना है? लेकिन आपको वो मिला हुआ है। आप जब तक रहिये आनन्द से रहिये। उस पर पैसा कोई और खर्च कर रहा है। पानी का बिल कोई और दे रहा है, बिजली का बिल कोई और दे रहा है। आप उसमें आनन्द से रहिये। कितना अच्छा लगेगा। इसी प्रकार देह के भोग का अधिकार मिल जायेगा आपको। पहले जहाँ बैठते थे, आप घड़ी देखते रहते थे। फिर आपको अपने जीवन का जितना काल है जितना समय है, वो समय आपका अपना होगा। अन्यथा समय भी अपना नहीं होता। लोग कहते हैं बड़ा दिल कर रहा था मसूरी घूमने के लिये, लेकिन बस समय ही नहीं था। मिलने पर ज़रूर सुनायेंगे कि गर्मियों में गये थे मसूरी। कितने दिन रहे? बस चार-पाँच घंटे। समय ही नहीं था। कि चार-पाँच घंटों के लिये क्यों गये थे आप? किसी के यहाँ से वातानुकूलित उपकरण उधार लेकर घर में ही लगा लेते।

आपको चिंतन-मनन का और सत्संग का समय होगा। आप अपना स्वयं का ध्यान कर सकते हैं। काहे के लिये यह देह मुझे मिली, जीवन क्या है? उसके लिये आपको मानसिक रूप से स्वतन्त्र होना अति आवश्यक है। जब आप स्वस्थ हैं, उसी दौरान यदि आप अपना उत्तराधिकार किसी को दे देते हैं, अपने भौतिक कार्यों से निजात पा लेते हैं तो यह मात्र तभी सम्भव है, जब आपका समय आपका होगा। आपका दिव्य-आपा जाग्रत हो जायेगा। आपको उस छोड़ी हुई वस्तु से कई गुणा अधिक वस्तुओं के आनन्दपूर्वक

भोग का अधिकार भी मिल जायेगा। जिसको आपने वस्तु दी है, आप उसको आशीर्वाद भी देंगे और जिसको आपने उत्तराधिकार दिया है, वे व्यक्ति भी आपकी दी हुई वस्तु को आनन्दपूर्वक भोगेगा।

अब यहाँ एक विशेष घटना और होती है। महाराज दशरथ ने अपने राज्य का अधिकार अपने सुपुत्र भगवान श्रीराम को दिया। श्रीराम स्वयं त्रिलोकीनाथ हैं, भगवान विष्णु हैं, लेकिन किसी घरेलु परिस्थिति के कारण भगवान राम ने वह राज्य छोड़ दिया। समर्पित किया था राजा दशरथ ने, अपने बड़े पुत्र राम को और भगवान श्रीराम ने अपने पिता के वचनों को पूरा करने के लिये उस राज्य को छोड़ दिया। इसको कहा है **'समर्पण का समर्पण।'** अपने पिता के वचन निभाने के लिये प्रभु श्रीराम चौदह वर्ष वनों में रहे और श्रीराम ने उस समय विश्व के महाप्रतापी सशक्त राजा रावण को इस तरह पराजित किया कि उसके कुल में कोई दीपक जलाने वाला भी नहीं छोड़ा। ऐसे भगवान श्रीराम का आज भी पूरे विश्व के हृदय में साम्राज्य है। जब आप अपने माता-पिता, गुरु अथवा बुज़ुर्ग की आशीर्वाद से दी गई वस्तु का अधिकार अपने किसी सर्वोच्च हित के लिये छोड़ते हैं, किसी नैतिकता के लिये छोड़ते हैं, तो उसका इतना अथाह फल आपको मिलेगा जिसकी गणना भी आप नहीं कर सकते। यह एक दैवीय अधिनियम है।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या हम अपनी प्रतिभाओं का किसी को अधिकार दे सकते हैं? प्रतिभा का अधिकार दिया नहीं जाता बल्कि लिया जाता है। प्रतिभा का अधिकार कि ''मैं अच्छा नर्तक हूँ, मैं अच्छा गायक हूँ, मैं बहुत अच्छा कवि हूँ, लेखक हूँ और मैं इसका अधिकार अमुक व्यक्ति को देना चाहता हूँ,'' ऐसा नहीं हो सकता। यदि आप किसी की प्रतिभा लेना चाहते हैं आशीर्वाद सहित, तो आपमें उस व्यक्ति के प्रति तीन चीज़ों का होना आवश्यक है। **श्रद्धा, विश्वास और आपकी नीयत का सही होना।** श्रद्धा, विश्वास और नीयत यदि आपकी किसी व्यक्ति के प्रति सही है तो आपके अन्दर उसकी प्रतिभाएँ प्रवाहित होनी शुरू हो जायेंगी। उदाहरण के लिये गुरु द्रोणाचार्य मात्र राजगुरु थे और राजाओं के लड़कों को ही वे

धनुर्विद्या की शिक्षा देते थे। एक भील सरदार का लड़का एकलव्य उनके पास पहुँचा, उसको भी धनुर्विद्या ग्रहण करने का बहुत शौक था। गुरु द्रोणाचार्य से प्रार्थना की कि 'महाराज मुझे अपना शिष्य बना लीजिये।' बोले–'नहीं बना सकते।' 'क्यों?' 'कि मैं राजगुरु हूँ। चले जाइये।' तो प्रणाम करके एकलव्य वन में लौट आया। गुरु द्रोणाचार्य की मिट्टी की एक प्रतिमा बनाई पीपल के वृक्ष के नीचे। रोज़ धूप-बत्ती, नैवेद्य चढ़ाकर वह उनकी प्रेरणा से उनमें श्रद्धा रखते हुए धनुर्विद्या का अभ्यास करने लगा। बहुत सालों बाद एक दिन गुरु द्रोणाचार्य, अर्जुन, भीम आदि अपने शिष्यों के साथ वन-विहार के लिये गए। एकलव्य को जब ज्ञात हुआ कि गुरु महाराज घोड़ों पर सवार होकर वन में आ रहे हैं तो एक कुत्ते ने भौंकना शुरू कर दिया। एकलव्य को अच्छा नहीं लगा कि गुरु महाराज आये हैं और कुत्ते ने भौंकना शुरू कर दिया है। उसने कुत्ते के मुहँ में इस प्रकार बाण मारे कि कुत्ता सुरक्षित रहा लेकिन भौंक नहीं सका। अब गुरु द्रोणाचार्य ने यह दृश्य देखा कि किस सावधानी और कुशलता से कुत्ते के मुहँ में बाण मारे गए हैं कि कुत्ता ठीक-ठाक है और उसने भौंकना बन्द कर दिया है। हैरत में आ गये कि ऐसा धनुर्धर कौन हो सकता है? इतने में एकलव्य उनके सामने प्रकट हुआ। प्रणाम किया कि 'गुरुदेव प्रणाम! बोले–'गुरुदेव मत कहिये क्योंकि तुम मेरे शिष्य नहीं हो।' 'महाराज! आप ही मेरे गुरु हैं।' बोले–'प्रमाण दीजिये।' बोला–'आप मेरे साथ आइये।' तो वो उस बड़े पीपल के वृक्ष के नीचे गुरु महाराज और उनकी शिष्य-मण्डली को ले जाता है। वहाँ गुरु द्रोणाचार्य की एक प्रतिमा बनी हुई है। धूप-बत्ती जल रही है। नैवेद्य रखा हुआ है–'महाराज! आप ही मेरे गुरु हैं। आप ही ने मुझे शिक्षा दी है।' ऐसा शिष्यत्व केवल हमारे भारत में ही हुआ है–'आपने शिक्षा दी है प्रभु मुझे और आप की ही दी हुई शिक्षा के कारण मैं यह हुनर आपको दिखा पाया हूँ।' गुरु द्रोणाचार्य बड़े भावुक हो गये कि 'तुम हमें गुरु मानते हो।' 'जी हाँ महाराज! मैं आप ही को गुरु मानता हूँ। 'बोले–'गुरु-दक्षिणा दीजिये।' बोला–''महाराज! आज्ञा दीजिये।' गुरु ने कहा 'अपने दाएँ हाथ

का अगूँठा काटकर दे दो।' एकलव्य ने अपनी कटार निकाली, अगूँठा काटा और दे दिया।

अपने गुरु की प्रतिमा बना कर उसमें श्रद्धा और विश्वास करके, अपनी सही नीयत से उस भील बालक ने इतनी बड़ी धनुर्विद्या ग्रहण कर ली थी कि जो गुरु द्रोणाचार्य के अपने किसी शिष्य में नहीं थी। द्रोणाचार्य ने जब अगूँठा माँगा तो लोग आज भी आलोचना करते हैं कि ऐसा क्यों किया? लेकिन गुरु हमेशा अपने शिष्य का हित करता है। आज भी जब अर्जुन, कर्ण आदि इन धनुर्धरों का नाम लिया जाता है तो एकलव्य का नाम भी लोग लेते हैं और यदि उस समय वे अगूँठा न लेते तो लोग एकलव्य को भूल जाते। तो अर्थ क्या है? **जब हम किसी की श्रद्धा से, विश्वास से और अच्छी नीयत से सेवा करते हैं** तो उसकी प्रतिभाएँ हमारे अन्दर स्वतः ही आ जाती हैं। आपके बुजुर्ग, आपके माता-पिता जब भी शारीरिक दृष्टि से अक्षम हो जायें, असमर्थ हो जायें, चिकित्सालय में हों तो तमाशा मत करिये, घर में बैठकर उनके लिये साधना करिये, उपासना करिये। देव-दरबार में बैठकर उनके लिये प्रार्थना कीजिये, उनकी सेवा कीजिये। ऐसे समय में यदि आप उनकी सेवा करेंगे तो उन बुजुर्गों की आध्यात्मिक सम्पदा का अधिकार भी आपको मिल जाता है। यह दिव्य अधिनियम है। **आध्यात्मिक सम्पदा किसी को उत्तराधिकार में नहीं दी जा सकती। यह ली जाती है।** यदि आध्यात्मिक सम्पदा का किसी को अधिकार मिल जाये तो उसका बहुत बड़ा चमत्कार होता है। जब आपकी भौतिक प्राप्तियाँ अहम् पर आधारित होंगी, आपकी डिग्रियों पर आधारित होंगी और आपकी तथाकथित मेहनत पर आधारित होंगी, तो आप उनका आनन्दपूर्वक भोग नहीं कर सकते। जब वो आशीर्वाद पर आधारित होंगी, जब आपकी संतान आपके बुजुर्गों के आशीर्वाद से उत्पन्न होगी, जब आपकी फैक्ट्रियाँ, आपकी मिलें, आपकी सम्पदा, आपका मकान, आपकी दुकान, आपके बुजुर्गों के आशीर्वाद से युक्त होंगी तो आप इसका आनन्दपूर्वक भोग करते हुए, आध्यात्मिक जीवन बिताते हुए, अन्ततः निर्वाण प्राप्त कर सकते हैं। तो बहुत संक्षेप में इस विषय का मूलमंत्र आपके

सामने इष्ट-कृपा से रखा है। मैं प्रार्थना करता हूँ कि इस **'उत्तराधिकार'** के शब्द को पूरी दिल्ली में विस्तृत करिये। मरने के बाद की वसीयत नहीं लिखनी और यदि लिखेंगे तो प्रेत बनने की बहुत सम्भावना है। आज आप बहुत लोगों को जीते जी इस योनि में देख सकते हैं जो अतृप्त हैं, असंतुष्ट हैं, आसक्त हैं, असुरक्षित हैं, अशान्त हैं, भयभीत हैं और विक्षिप्त हैं। यह सात चीज़ों से युक्त जो व्यक्ति होगा वो जीते जी भी प्रेत है और उसने अवश्य अश्रद्धा से, ज़बरदस्ती से, अहम् से किसी की सम्पदा पर अपना अधिकार किया हुआ है। इसलिये यदि आप शान्ति, भक्ति, मस्ती, साहस, उत्साह, ईश्वर-प्रेम में, निष्ठा में, विश्वास में, कृपा में आनन्दपूर्वक जीवन बिताना चाहते हैं, एक सद्मानव की तरह, एक सद्भारतीय की तरह तो आज से इस मूलमंत्र को आप स्वयं आत्मसात् करिये, अपने सगे-सम्बन्धियों को करवाइए और भारत में ही नहीं बल्कि विश्व में जो-जो इसके अधिकारी हैं, उन तक पहुँचाइए। इससे बड़ा पुण्य कोई और नहीं हो सकता।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(7 जुलाई, 2002)

पुरुषार्थ

आज इष्ट व सद्‌गुरु के आदेश से और आप सब परम सौभाग्यशाली जिज्ञासुओं की प्रेरणा से एक बहुत अद्‌भुत विषय, जिसका अक्सर प्रत्येक प्रवचन में जिक्र होता है, आपके सम्मुख रखूँगा। विषय का नाम है **'पुरुषार्थ'**। **'पुरुषार्थ'** वह शब्द है जो मात्र भारतीय है। यदि भूतकाल में, या भविष्य में विश्व में कहीं भी भारत की चर्चा होती है, प्रशंसा होती है तो मात्र हमारे ऋषियों-मनीषियों के पुरुषार्थ की वजह से। यदि यह **'पुरुषार्थ'** की धरोहर हमारे पास न होती तो आज हम जगद्‌गुरु न होते। बहुत विचित्र घटना है यह **'पुरुषार्थ'**। भारतीय संस्कृति रूपी अडिग एवं भव्य मन्दिर की आधारशिला है यह **'पुरुषार्थ'**। इसकी निर्माणशिला है यह **'पुरुषार्थ'** और इसकी सुसज्जा है यह **'पुरुषार्थ'**। भारतीय संस्कृति रूपी कुलीन स्त्री पर कुदृष्टि पड़ी बड़े-बड़े रावणों की, जिसको कुचेष्टा करके उन्होंने अपहरण करना चाहा। बड़े-बड़े अपहरणकर्त्ता आए, लेकिन आज भी हमारी संस्कृति इसी **'पुरुषार्थ'** के कारण अछूती है।

आज भी इस पुरुषार्थ के कारण भारतीय संस्कृति महाज्ञानवती है, परम सौन्दर्यवती, प्रखर सशक्त, महाऐश्वर्यवती, विलक्षण ख्यातिवान एवं अद्वितीय त्यागवान है, यह वह कल्पतरु है जिसके बीज उत्पन्न हुए हिमालय की कन्दराओं में, जिसको सींचा गंगा-यमुना के पावन जल ने और यह तरु उगा आप जैसे परम जिज्ञासुओं के आगँन में, जिसके फलों को खाकर भारत की साध्वी माताओं ने अपनी कोख से जन्म दिया

महारथियों को और उन सशक्त महामानवों को, जिनकी एक हुँकार सारे विश्व को कम्पायमान करने में सक्षम थी एवं आज भी है। इसी कल्पतरु के फलों को खाकर उन साध्वी भारतीय माताओं ने पैदा किया मनीषियों को, ऋषियों को, महर्षियों को, देवर्षियों को, राजर्षियों को, ब्रह्मर्षियों को। जिन्होंने रचना की वेद-वेदान्तों की, शास्त्रों की, उपनिषदों की, पुराणों की, गीता, गुरुग्रन्थसाहब इत्यादि महाग्रन्थों की; जो लबालब भरे हुए हैं, मात्र पुरुषार्थ से। गुरु, सद्गुरु और सद्शिष्य के बीच का सम्पूर्ण व्यवहार पुरुषार्थ ही है। कथनी हो, करनी हो, दृष्टि हो, कोई स्पर्श हो, कुछ भी हो, यह सद्गुरु और सद्शिष्य के बीच का समस्त व्यवहार पुरुषार्थ ही है। इसी पुरुषार्थ की वजह से हमारा यह महान देश जगद्गुरु था। इसी पुरुषार्थ के कारण आज भी जगद्गुरु है और भविष्य में भी भारत ही जगद्गुरु रहेगा।

हमारी अक्षुण्ण सम्पदा है यह, धरोहर है यह एवं अस्मिता है यह— **पुरुषार्थ।** पुरुषार्थ का हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त किसी विदेशी भाषा में कोई भी अनुवाद नहीं है, क्योंकि वहाँ पुरुषार्थ की कोई धारणा नहीं है। क्या है **'पुरुषार्थ'**? इसका सन्धिविच्छेद करिये **पुरुष + अर्थ।** मानव भौतिक जगत में धक्के खाते-खाते, जन्म-जन्मान्तरों में बार-बार जन्म लेते हुए और वही कृत्य बार-बार करते हुए, अन्ततः जब थक जाता है तो उसमें एक आर्तनाद पैदा होता है। पुरुष का अर्थ है मेरी चेतनसत्ता, मेरा सच्चिदानंद स्वरूप। मेरे पुरुष का अर्थ क्या है, मैं कौन हूँ, कहाँ से आया हूँ मैं, कहाँ जाना है मुझे? यदि मैं इस संसार में इस पृथ्वी पर स्वयं आया हूँ तो मैं क्यों आया हूँ और यदि मैं लाया गया हूँ तो क्यों लाया गया हूँ? मेरा यहाँ कर्त्तव्य क्या है? जो कार्य मेरे बिना भी हो सकता है वो मेरा कर्त्तव्य कैसे हो सकता है? क्या मैं समय व्यर्थ तो नहीं कर रहा, जो मैं जन्म-जन्मान्तरों में एकत्रित करता हूँ भौतिक पदार्थ, वे मुझे छोड़कर जाने पड़ेंगे तो क्यों मैं एकत्रित करता हूँ उनको? मानव-देह क्या है, मुझे क्यों मिली है और मेरी बुद्धि का क्या कार्य है? वह ईश्वर से पूछता है कि तुम

कौन हो, कहाँ रहते हो तुम? तुम साकार हो या निराकार, यदि तुम साकार हो तो पूरे विश्व में एक ही नाम से क्यों नहीं जाने जाते! यदि तुम निराकार हो तो सारे संसार की साकार रचना करने वाले तुम्हें यह विचार कहाँ से आया? जो सम्पूर्ण दृष्यमान साकार बाह्यसंसार है, इसका निर्माण करने वाले हे प्रभु! इसका दृष्टिकोण तुम्हें कहाँ से मिला? यदि तुम निराकार हो तो बार-बार जन्म-मृत्यु क्यों होती है? तुम सत्-श्री-अकाल हो, तुम सच्चिदानंद हो, तो मैं जन्म-मृत्यु के जंजाल में क्यों फँसा हूँ? तुम सत्य हो तो यह देह और संसार मिथ्या क्यों है, तुम चेतन हो तो जन्म-मृत्यु का प्रश्न कहाँ से पैदा हुआ? तुम कालेश्वर हो, कालातीत हो, अकालपुरुष हो तो मैं काल में बँधा हुआ क्यों हूँ? आदि-आदि असंख्य, आत्मा को झकझोरने वाले प्रश्न जब उठते हैं किसी मानव के हृदय में तो शास्त्रकारों ने उसे कहा है—**'जिज्ञासु'।**

जिज्ञासा के पाँच स्तर हैं—सामान्य जिज्ञासु, जिज्ञासु, परमजिज्ञासु, महाजिज्ञासु, अतिजिज्ञासु। जब इसमें जिज्ञासा की आग प्रज्ज्वलित होती है और वह उन प्रश्नों के उत्तर जानना चाहता है तब इसके सामने सद्‌गुरु स्वतः प्रकट हो जाता है, सद्‌गुरु ढूँढना नहीं पड़ता। जब आप सद्‌शिष्य बन जाते हैं, जब आप सत्य को जानना चाहते हैं और मात्र सत्य को जानना चाहते हैं तो दिव्य कानून के तहत आपके सम्मुख सद्‌गुरु प्रकट हो जाता है। हमेशा फकीर मुरीदों के पीछे भागे हैं। इतिहास गवाह है इसका। रामकृष्ण परमहंस बैठे हैं अपनी मस्ती में, समाधि में और एक बहुत सुन्दर नवयुवक आकर उनके पास खड़ा हो जाता है आधुनिक कपड़े पहने हुए। तो वह उससे लिपट जाते हैं कि बेटा! तुम मेरे शिष्य बन जाओ। महागुरु ने उस शिष्य में सारे लक्षण देख लिये, कि मेरे शिष्य बन जाओ तुम जो चाहोगे मैं दिला दूँगा। मैं तुम्हें भगवती के दर्शन करवा देता हूँ। वही महापुरुष बाद में बने स्वामी विवेकानन्द। उसी स्वामी विवेकानन्द को लाहौर में एक प्रवचन देते-देते एक सद्‌शिष्य मिल गया प्रो० राम, जो बाद में प्रख्यात हुए विश्व में स्वामी रामतीर्थ के नाम से। गुरु नानक देव महाराज ने अपने बेटों को गद्दी

नहीं दी, उनको एक सद्शिष्य मिला **लहना।** अतः इस प्रकार जब किसी महामानव के हृदय में परम जिज्ञासा जाग्रत हो जाती है तो उसको सद्गुरु स्वयं ढूँढ लेता है।

बात चल रही है **पुरुषार्थ** पर। पुरुषार्थ हमारी विशेष धरोहर है। हमारी अन्तःयात्रा रही है, पुरुषार्थ बाहर की दौड़-धूप नहीं है। अपनी अन्तःयात्रा के लिये, समस्त प्रश्नों के उत्तर ढूँढने के लिये, इस पुरुषार्थ के दो आयाम हैं, जिनका नाम है **'साधना' और 'उपासना'**। इसके चार सोपान हैं जिनको मैं चार तीर्थों के नाम से सम्बोधित कर चुका हूँ। अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष। पुरुषार्थी व्यक्ति मात्र दो कार्य ही करता है **'साधना' और 'उपासना'।** यहाँ पर मैं संक्षेप में यह रहस्य और बता देना चाहता हूँ, जो मैं बता भी चुका हूँ कि जितना बाह्य जगत है आपकी अपनी देह सहित, यह बाह्य जगत मात्र आपके भीतरी जगत का बाह्य प्रकटीकरण है। दुर्भाग्यवश हम बाह्य जगत में भागते-भागते अपना जीवन व्यर्थ कर देते हैं। न केवल एक जीवन बल्कि जीवन-दर-जीवन। बाह्य जगत की दौड़-धूप में हम भागते रहते हैं, लेकिन वास्तव में यह हमारे भीतरी मानस का बाह्य प्रकटीकरण है। गुरु महाराज ने कहा **'जो ब्रह्माण्डे सो पिंडे'।**

यह **'दृष्टा-दृश्यवाद'** है कि जो बाह्य जगत में हम देख रहे हैं हमारी देह, माता-पिता, भाई-बन्धु, पति-पत्नी-सन्तान, शिक्षा, आर्थिक-स्तर, आस-पड़ोस, धर्म-कर्म और सब कुछ जो हम बाह्य जगत में देख रहे हैं, उसकी कैसेट पहले से ही हमारे भीतर अंकित है। वह बाहर हृदयपटल पर, एक पर्दे पर समय-समय पर आती रहती है, जो मैं अपने प्रारब्ध के प्रवचनों में बहुत स्पष्ट कर चुका हूँ। यह परम रहस्य फिर से आज इंगित कर रहा हूँ कि जन्म से मृत्यु तक मानव का सम्पूर्ण जीवन और इस मानव-देह पर आधारित सम्पूर्ण जगत पहले से ही अंकित है। आपको इसके लिये कुछ नहीं करना पड़ता। समय-समय पर वैसी परिस्थितियाँ बन जाती हैं और आप उसी के अनुसार कार्य करते हैं। जो आपको मिलता है वह आपको मिलना ही होता है। अर्थात् भौतिक जगत में जो कुछ हम तथाकथित अपने

परिश्रम द्वारा पाने की घोषणा करते हैं कि यह अमुक वस्तु मैंने पाई, मैंने परिश्रम किया, वह हम पैदा होते ही अपने साथ लेकर आते हैं। अरे बुद्धिजीवियो ! एक बात सोचिए कि आपको जब होश आया तो आपने अपनी चमत्कारिक देह को अपने साथ पाया। यह महाचमत्कारिक देह, पूर्णतया वातानुकूलित व पूर्णतया स्वचलित, जिस देह के एक बाल का, एक नाखून का निर्माण हम नहीं कर सकते। अरे ! किसी महाबुद्धि ने इसकी रचना तो की है। यह देह हमने अपने साथ पाई। उस देह को पाने के बाद जब होश सम्भाला मानव-शिशु ने और तथाकथित बुद्धि का विकास होने लगा, तो यह भूल ही गया कि यह देह मुझे स्वतः मिली है। मैंने इसके लिये कुछ नहीं किया। वहाँ से इसकी भाग-दौड़ शुरू हो गई, अपना भविष्य बनाने लगा, अपनी देह के पालन के लिये जो देह इसे स्वयं मिली थी, जिसको प्राप्त करने के लिये इसने कुछ भी नहीं किया। इसने इन्द्रियों के सुख के लिये, सुख-साधनों के पीछे भागना शुरू कर दिया, **देह के लिये भागना शुरू किया और देह से भागना शुरू किया।** देह का पालन करने के लिये देह का इस्तेमाल शुरू किया।

पुरुषार्थ में और प्रारब्ध में क्या अन्तर है वो आपके सामने रख रहा हूँ। देह मिली **प्रारब्धवश।** पूछिये कि आप अमुक समय पर पैदा क्यों हुए, आप दो-चार दिन आगे-पीछे क्यों पैदा नहीं हुए, आपने अमुक-अमुक माता-पिता से जन्म क्यों लिया ? बहुत से लोग अपने माता-पिता से संतुष्ट नहीं होते कि हम अपने निर्माता स्वयं हैं तो अपने माता-पिता का चुनाव आपने क्यों नहीं किया ? इसका कोई उत्तर नहीं है, लेकिन बुद्धिजीवी इसका भी कोई न कोई उत्तर अवश्य देंगे। आपने तथाकथित विशेष शिक्षा क्यों ली, अमुक स्त्री से या पुरुष से आपका विवाह क्यों हुआ, अमुक-अमुक प्रतिभाओं से युक्त आपकी संतान क्यों हुई, कब मरेंगे आप और कैसे मरेंगे आप ? क्या मरने के बाद अपने कफ़न, लकड़ी इत्यादि का प्रबन्ध भी आप स्वयं करेंगे ! कितने आराम से मुर्दा लेटा रहता है शमशान में। सभी व्यस्त होते हैं। कोई लकड़ी इकट्ठी कर रहा है, कोई पंडितों को बुला रहा है, कोई कुछ कर रहा

है। किसी गृहस्थ से पूछिए कि यह कारोबार, यह धन क्यों कमा रहे हो? कि बच्चों को पालने के लिये। कि बच्चे क्या करते हैं? कि वे तो खाली हैं। हम कमा किसके लिये रहे हैं जो निठल्ले हैं। अगर आप अपने जीवन का पुनर्निरीक्षण करें कि सबसे ज्यादा आनन्द हमने जीवन का कब लिया होगा? जब हम छोटे बच्चे थे। कोई कारोबार का लेना-देना नहीं, अपना जो खाना-पीना अपनी माँ को ज़बरदस्ती आदेश देना, कि ये खायेंगे। माँ-बाप बच्चों के पीछे लगे रहते हैं अपनी सामर्थ्य के अनुसार हर माता-पिता अपने बच्चे को उत्तम सुविधाएँ देते हैं और अत्यधिक सुविधाएँ कब मिलती हैं जब बच्चा निठल्ला होता है। बच्चे को माँ गोद में कब उठाती है? जब उसकी टाँगों में चलने की शक्ति नहीं होती। अरे! क्या पुरुषार्थ के द्वारा आज आप बच्चे बन सकते हैं? आपको भी कोई उठाने वाला मिल जायेगा। आपको भी कोई पालने वाला मिल जायेगा। **यह ज्ञानमय अबोधता है।** उसके लिये भी पुरुषार्थ चाहिये।

हम बाह्य प्राप्तियों से जो भी सुख लेते हैं अपनी इन्द्रियों द्वारा उसके लिये हमारे भीतर के आनन्द का जाग्रत होना आवश्यक है। आवश्यक ही नहीं परमावश्यक है। यदि भीतर का आनन्द लुप्त हो गया है, आच्छादित हो गया है तो हम अपनी इन्द्रियों के स्वस्थ होते हुए भी और समस्त सुख-साधनों के होते हुए भी सुख नहीं ले सकते। तो होता क्या है? जब बुद्धि का विकास होता है, हम अपने चारों तरफ चकाचौंध देखते हैं तो हम सुख-साधनों की ओर भागने लगते हैं। जब सुख के साधनों की ओर मानव भागता है, तब उस दौड़ में वह अपने आनन्द-स्वरूप को आच्छादित कर देता है। इसका आनन्द-स्वरूप ढक जाता है और तब वह उन पदार्थों को यद्यपि प्राप्त भी कर ले तो उनको प्राप्त करने के बाद उनका सुख नहीं ले सकता। क्योंकि दिव्य नियमानुसार उसका आनन्द-स्वरूप ढक जाता है और यह विचार नहीं करता। इसको निराशा हो जाती है कि मेरे पास सब सुख-साधन हैं, लेकिन मुझे सुख क्यों नहीं मिल रहा है, मुझे आनन्द क्यों नहीं आ रहा है:—

''यूँ तो तेरे बग़ैर मुझे कुछ कमी नहीं,
यह और बात है कि मयस्सर खुशी नहीं
जिस ज़िन्दगी पे नाज़ है इतना हुज़ूर को,
उस ज़िन्दगी का क्या है अभी है अभी नहीं।''

कि हे माधो ! मेरे पास सब कुछ है। गाड़ियाँ हैं, बंगले हैं, जन-बल है, धन-बल है, सारे सुख-साधन हैं लेकिन मैं दुखी क्यों हूँ ? तेरे बगैर मुझे कुछ कमी नहीं, यह और बात है कि खुशी नहीं है। मेरी खुशी कहाँ गई ? क्योंकि यह अपने माधव से हट जाता है, अपने स्वरूप से विमुख हो जाता है। **जब यह साधना के पीछे भागता है**, साधना करता है तो इन्द्रियों को निग्रह कर के भीतर की ओर दौड़ता है, अन्तःदौड़ हो जाती है इसकी। बाहर दौड़िये या भीतर दौड़िये। यज्ञ, जप, तप, हवन, प्राणायाम, उपासना व साधना जब यह समस्त पुरुषार्थ करने लगता है तो इसकी दौड़ भीतरी हो जाती है। बाहर से यह हटना शुरू हो जाता है। **पहले साधनों के पीछे भाग रहा था—अब यह साधना के पीछे भागता है।** जब यह साधना के पीछे भागता है तो साधन, सुख-सुविधा की वस्तुएँ और सब पदार्थ इसके चरणों में स्वयं आ जाते हैं। जब यह साधनों के पीछे भागा तो इसका आनन्द-स्वरूप आच्छादित हो गया और उनको पाने के बावजूद भी उनका सुख नहीं ले पाया, क्योंकि इन्द्रियों के पास अपना सुख नहीं है। जब यह अपने आनन्द-स्वरूप की तरफ गया, साधना द्वारा या उपासना द्वारा या दोनों द्वारा, तब जो सुख-साधन थे वे समस्त इसके चरणों में आने लगे।

आप जब साधना की तरफ प्रवृत्त होंगे तो सुख-साधन चलके आपके पास आयेंगे, तब आप जो कुछ चाहेंगे आपके सामने प्रस्तुत हो जायेगा। आप उसकी मांग करें या न करें। इतना हकूक स्वयं ही मिल जाता है योगी को। साधनों के पीछे जब हम भागते हैं और बहुत जुगाड़ करके जिन साधनों को पाते भी हैं जो हम अपने साथ लेकर पैदा हुए थे, वे उस समय हमको मिलने ही थे जैसेकि हमको देह बनी बनाई मिली। एक-दो बार मैं यह व्यंग पहले भी कर चुका हूँ कि अगर ईश्वर ने मानव-शिशु को माँ के गर्भ में बुद्धि

दे दी होती गलती से, तो वो पसीना पोंछता पैदा होता। कोई छोटे कद का, अपने माँ-बाप कोसता, कोई काला होता तो माँ-बाप कोसता कि मेरी माँ ने मुझे यह नहीं दिया, मेरे बाप ने मुझे वह नहीं दिया। मैं तो अपना बहुत अच्छा निर्माण कर सकता था। कुछ न कुछ कोसता हुआ ही आता कि मैं बड़ा व्यस्त रहा, नौ महीने सात दिन।

अरे, इतनी सुन्दर देह आपको मिल गई बनी बनाई। उस देह के साथ आपको माता-पिता मिले, आपको तथाकथित शिक्षा मिली, वह भी स्वतः मिली। आपकी जहाँ विवाह-शादी होनी होती है, वहीं होती है। वहाँ भी लोग बुद्धि का प्रयोग करते हैं तो उनका पारिवारिक जीवन कैसा होता है, वे स्वयं जानते हैं। अरे ! जो अपने आपको नहीं जानता वो किसी लड़के या लड़की को देखकर क्या जानेगा? लड़की देखनी है, ऐसी हो, वैसी हो। ज्यादा लड़की देखने वालों को फिर वैसी ही मिलती है ! अब बच्चे पैदा होते हैं वह भी ईश्वर-इच्छा से। कोई बहुत अच्छा प्रतिभायुक्त सुशील बच्चा पैदा हो गया तो सारी दुनिया में हम ढिंढोरा पीटते थकते नहीं हैं कि मैं बड़ा अनुशासित व्यक्ति हूँ। मैंने अपने बच्चों को शुरू से बड़ा अनुशासित रखा है और कोई विकृत अथवा दुर्व्यसनी पैदा हो गया, तो समाज खराब है क्या करें? हम बहुत अधूरे हैं। जीवन की प्रमुख घटनाएँ स्वतः घटती हैं। कभी आप सुबह उठकर विचार करना कि जीवन में जो विशिष्ट घटनाएँ हुईं वो घटनाएँ आपसे सलाह लेकर नहीं होतीं। घटनाएँ स्वतः घटित होती हैं।

आप जाना कहीं और चाहते हैं, पहुँच कहीं और जाते हैं। आप मिलना किसी को चाहते हैं और मिल कोई और जाता है। करना कुछ और चाहते हैं, हो कुछ और जाता है। सबको उनके जीवन का दिग्दर्शन करवा रहा हूँ। कुछ भी हमारे हाथ में नहीं है। अरे ! जो आपको मिलना था, वह आपको मिलता है और ज्यादा भाग-दौड़ करने के बाद यदि हम और अधिक, और अधिक इकट्ठा करना चाहते हैं तो उसमें क्या होता है सुनिए : एक ठण्डे पानी का गिलास लीजिये और उसमें चीनी या नमक घोलना शुरू करिये, तो एक बिन्दु पर आकर उसमें चीनी या नमक घुलना बंद हो जायेगा। यदि

आप उसमें और चीनी या नमक डालेंगे तो वह तले पर बैठना शुरू हो जायेगा। लेकिन यदि उसमें हम और घोलना ही चाहते हैं तो उस पानी को हमें गर्म करना पड़ेगा। गर्म करेंगे तो कुछ और घुल जायेगा और गर्म करेंगे तो और घुल जायेगा। पानी का जो उबलने का स्तर 100^0C है, उस तक आते-आते उसमें आप जितना पदार्थ घोलना चाहते हैं, उतना ही घुलेगा। यदि पानी ठण्डा होना शुरू हो गया तो जो अतिरिक्त घुला है, वह नीचे बैठना शुरू हो जायेगा। यही सत्य आध्यात्मिक जीवन में है, कि जो वस्तुएँ आपको प्रारब्धवश मिलनी थीं, मिलने के बाद आप और प्राप्त करना चाहते हैं और अपनी सारी शक्ति उसमें झोंक देते हैं। आपको वस्तुएँ तो प्राप्त हो जाती हैं लेकिन उनको सम्भालने के लिये आपके मन में शक्ति नहीं होती। जब मन में शक्ति नहीं होती तो वो वस्तुएँ आपके लिये सिर-दर्द बन जाती हैं। 99.9% सिरदर्द उन वस्तुओं की वजह से है जिनको सम्भालने की आपके मन में क्षमता नहीं है लेकिन मूर्खतावश आप फिर भी और इकट्ठी करते जा रहे हैं। अब उसके लिये आपको चाहिये **तप की अग्नि।** पुरुषार्थ के **साधना** और **उपासना** दो आयाम हैं। **साधना** द्वारा हम मनोबल उत्पन्न करते हैं अपनी इन्द्रियों का निग्रह करके जप द्वारा, तप द्वारा, हठयोग एवं प्राणायाम द्वारा हम अपने मनोबल को बढ़ाते हैं ताकि जो भोग-पदार्थ हमारे पास हैं, हम उनका आनन्दपूर्वक भोग कर सकें।

प्रारब्धवश मिली वस्तुओं के अतिरिक्त जब आप और वस्तुओं को एकत्रित कर रहे हैं तो उनका भोग करने की क्षमता भी आप में होनी चाहिये। अन्यथा वे वस्तुएँ आपके लिये विभिन्न रोगों का कारण अवश्य बन जायेंगी। **'घर को लगी आग घर के चिराग से'।** आपकी वस्तुएँ ही आपकी बिमारियाँ बनती हैं। आप स्वयं बिमारियाँ खरीदते हैं। लोभवश, मूर्खतावश, अज्ञानवश, सत्संग के अभाववश क्योंकि लोगों के पास सत्संग का समय नहीं है। उन वस्तुओं और साधनों के पीछे भागने का समय है जिनको सम्भालने की शक्ति नहीं है। बड़ा नग्न सत्य आपके सम्मुख रख रहा हूँ।

साधना जीवन में आवश्यक है, अगर आप जीवन को जीना चाहते हैं। मैं **सरस साधना** और **उपासना** के बारे में बहुत कुछ कह चुका हूँ। आज उसका पृथक आयाम आपके सामने रख रहा हूँ कि जब तक आप उस गिलास के जल को गर्म नहीं करेंगे तो उसके घोलने की क्षमता सीमित होगी। इसलिये साधना बहुत आवश्यक है। आप संसार की वस्तुओं का एवं अपनी देह का आनन्दपूर्वक भोग करना चाहते हैं, क्योंकि आप जीवन जीने आये हैं, जीवन काटने नहीं आये हैं। अन्यथा आप जीवन काटेंगे जैसाकि लोग काट रहे हैं। जिनके पास कुछ है, वे भी काट रहे हैं, जिनके पास कुछ नहीं है वे भी काट रहे हैं। पुरुषार्थ का एक आयाम है–**'साधना'**। बहुत परम विचारणीय विषय आपके सामने रख रहा हूँ जिसके तहत आप अपने जीवन को आज ही एक नया मोड़ दे सकते हैं। **उपासना** में **साधना** की आवश्यकता नहीं है। उपासना भक्ति है। उपासना का सन्धिविच्छेद करिये–**उप + आसन।** पास बैठना, करीब बैठना अपने खुदा के, अपने सच्चिदानंदस्वरूप के समीप बैठना उपासना है। मोहब्बत हो जाती है आपको अपने खुदा से, अपने इष्ट से जब प्यार हो जाता है तो असली आशिकी में आप अपना दिल समर्पित कर देते हैं। यह आवश्यक है। यदि अपना मन समर्पित नहीं हुआ तो वह प्रेम नहीं है। **साधना में आपका मनोबल बढ़ा और उपासना के द्वारा आपका मन ही समर्पित हो जाता है। जब आप अपना मन ईश्वर को समर्पित कर देते हैं तो आपका मन ईश्वर-तुल्य हो जाता है।**

जैसाकि महाभारत के युद्ध में भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को अपना विराट स्वरूप दिखाते हैं, क्योंकि अर्जुन ने अपना मन समर्पित कर दिया था। महाभारत जैसा विशाल युद्ध आजतक न भारतभूमि पर हुआ है और न होगा और इतने बड़े युद्ध में उसने निहत्थे श्रीकृष्ण को मांगा कि **'तुम मेरी तरफ आ जाओ मेरा रथ हांकने, शस्त्र मत उठाना।'** इसका सीधा अर्थ यह हुआ कि अर्जुन ने अपना मन भगवान श्रीकृष्ण को समर्पित कर दिया था। जब हम ईश्वर को अपना मन समर्पित कर देते हैं उपासना द्वारा तो

भगवान को जिताने के लिये, हमें अपनी शक्तियों को भी, हराना पड़ता है। तो भगवान श्रीकृष्ण ने अपनी चतुरंगिनी सेना को जोकि दुर्योधन की तरफ थी–अर्जुन को जिताने के लिये बाखुद हरवा दिया। उपासना द्वारा जब हमारा मन समर्पित हो जाता है तो हमारे सारे जीवन का भार प्रभु स्वयं उठा लेते हैं। उसके बाद हमें कुछ नहीं करना पड़ता। हम भगवान की तरह तमाशा देखते हैं, आनन्द लेते हैं। लेकिन उस आनन्द के साथ आप अपनी बुद्धि से मात्र प्रभु की वाह-वाह करते जाइये।

भगवान ने बुद्धि मात्र वाह-वाह के लिये दी थी। हमने बुद्धि का बहुत दुरुपयोग किया। पशुओं को बुद्धि नहीं मिलती। मानव को बुद्धि दी है कि ऐ मानव! मैंने इतनी उत्कृष्टतम संरचना की है सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड की, आकाश, पाताल, पृथ्वी, समुद्र, नदियाँ, सागर अनेकों पर्वत श्रंखलायें, असंख्य वनस्पतियाँ और विभिन्न जीव-जन्तु बनाये हैं। चन्द्रमा, सितारे, सूर्य और न जाने क्या कुछ बनाया है! तू इसको देख और मेरी वाह-वाह कर। बुद्धि मात्र इसलिये मिली थी, जिसका हमने दुरुपयोग किया। हम सुख-साधनों की तरफ बढ़े, उनको एकत्रित करने के लिये हमने अपनी सारी शक्तियों को, जो प्रभु ने हमें दी थीं, उनमें झोंक दिया। तो क्या होता है जब हम वस्तुओं को एकत्रित करने के लिये तत्पर रहते हैं, प्रयत्न करते हैं तो वह वस्तुएँ मिल जाती हैं लेकिन हमको संतुष्टि नहीं मिलती हमारी अहम् बुद्धि के कारण, कि **''मैं करता हूँ''**। यह जो **'मैं'** आ जाता है तो वस्तुओं की प्राप्ति के बाद भी हम असंतुष्ट के असंतुष्ट ही रहते हैं। चार प्रकार का वर्गीकरण है व्यक्तियों का। आप विचार करें।

पहली प्रकार के कुछ व्यक्ति आपको ऐसे मिलेंगे कि जीवन में बहुत परिश्रम करते हैं, दैहिक, मानसिक, बौद्धिक, भौतिक लेकिन उनको बहुत कम मिलता है। बहुत करते हैं और मिलता बहुत कम है और जो कम मिलता है उसमें भी वह असंतुष्ट रहते हैं। **दूसरी प्रकार** के व्यक्ति वे हैं जो कि **जितना करते हैं उनको उतना ही मिलता है** और उसमें भी विक्षिप्त रहते हैं कि इससे क्या होगा? **तीसरे प्रकार** के व्यक्ति वे हैं जो बहुत कम करते हैं

और उनको बहुत ज्यादा मिल जाता है और उस बहुत ज़्यादा के बाद भी वे असंतुष्ट रहते हैं। **चौथी प्रकार** के व्यक्ति वे हैं जो कुछ नहीं करते और उनको बहुत ज्यादा मिलता है और वह बहुत ज़्यादा मिलना भी उनको गर्त में ले जाने के लिये काफी होता है। उनका जीवन भी बरबाद हो जाता है। जैसे राजा-महाराजाओं के, जागीरदारों के यहाँ जो बच्चे पैदा होते हैं उन्हें बड़ी-बड़ी स्टेट, सब कुछ सारे सुख-साधन मिले होते हैं लेकिन वह सुख-साधन ही उनके विनाश का कारण बन जाते हैं।

एक विलक्षण वर्ग उन लोगों का है जो तथाकथित जगत-व्यवहार नहीं करते, लेकिन उनको जो चाहते हैं, मिलता है, उनका सुख भी भोगते हैं और आनन्द से भोगते हैं। पाँचवे प्रकार के वे लोग कुछ नहीं करते और बिना प्राप्तियों के सब चीज़ों का भोग लेते हैं, उनकी अपनी चीज़ कुछ नहीं होती, भगवान शंकर की तरह। लेकिन वह भोग हर चीज़ का लेते हैं।

कोई भी प्राप्तियाँ चाहे कम हों, या ज्यादा, यदि आपने अहम्‌वश की हैं तो कभी आपको संतुष्टि नहीं दे सकतीं। जल के गिलास का उदाहरण मैं बार-बार दे चुका हूँ कि जब तक गिलास समुद्र में कूद नहीं जायेगा तब तक उसे असीम की संतुष्टि नहीं मिलेगी। सदैव असंतुष्ट ही भागता है। संतुष्ट व्यक्ति कभी नहीं भागता। उसके पास जो होता है उसमें वह प्रसन्न रहता है। कुछ और मिल जाये तो ठीक, न मिले तो ठीक। संतुष्ट कभी नहीं भागता। अस्थिर हमेशा भागता है और अस्थिर भागता है स्थिरता की तरफ। वे विशाल नदियाँ भी भागती हैं। तब तक भागती हैं जब तक समुद्र में विलीन न हो जायें। सशर्त सन्धि होती है कि नदिया को अपना नाम और अपना रूप खोना पड़ता है। एक गिलास अन्ततः नदिया बना और तेज़ भागने लगा।

जब भौतिक प्राप्तियाँ होती हैं तो आदमी ज्यादा व्यस्त हो जाता है और अपने स्वरूप से और परे हो जाता है। इसलिए हर व्यक्ति असंतुष्ट है। भौतिक प्राप्तियाँ कभी आपको संतुष्टि नहीं देंगी। यदि वे संतुष्टि देंगी तो वह संतुष्टि भी सीमित होगी। भूल जाइये कि आपको संसार के पदार्थ संतुष्टि

देंगे। यदि आप सारे महाब्रह्माण्ड के शासक भी हो जायें और संसार के समस्त बैंकों में आप ही का धन हो, सारी धरा आपकी ही हो, जब तक आप ईश्वर में समाहित नहीं हो जाते, आपको संतुष्टि नहीं मिल सकती। दूसरी तरफ उस गिलास को यदि कोई सत्संग मिला होता, कोई संत मिला होता कि 'मूर्ख ! लोटा मत देख, बाल्टी मत देख, ड्रम मत देख, कूद जा सीधा समुद्र में' और गिलास को वो बात जँच जाती, क्योंकि संत की बात तब जँचती है जब आप श्रद्धा से बैठें। वहाँ भी यदि आप बुद्धि का प्रयोग करें, बहुत तर्क-वितर्क करें, तो संत की बात भी नहीं जंचती। गिलास यदि सीधा समुद्र में कूद जाता तब समुद्र में कूदने के बाद उसको अपना नाम और रूप न खोना पड़ता। समुद्र में कूदा हुआ गिलास, गिलास ही रहता है, उसका आयतन भी उतना ही रहता है। लेकिन वह शहंशाह बन जाता है। उसको बाहर खड़ा हुआ कुँआ भी गरीब नज़र आता है। कि 'आप कौन हैं?' 'मैं कुँआ हूँ और आप? 'मैं गिलास हूँ।' तो गिलास कुएँ को पूछता है 'भैया ! जल चाहिये तुम्हें? मेरे से ले लिया करो।'

प्रभु ने आपको जिस किसी स्थिति में रखा है, कहीं भी रखा है यदि आप उसके साथ समाहित हो जाते हैं तो आप उसी वक्त शहंशाह बन जाते हैं। एक साधारण और आध्यात्मिक व्यक्ति में यह अन्तर है। जब तक आपको प्रभु के नाम की, उसके सान्निध्य की, स्पर्श की प्राप्ति नहीं होगी तब तक कोई भी सांसारिक वस्तु आपको संतुष्टि नहीं दे सकती। इसलिये जो चार वर्ग बताये मैंने, कि बहुत करते हैं मिलता कम है तो असंतुष्ट, जितना करते हैं उतना ही मिलता है तो भी असंतुष्ट, कम करते हैं ज्यादा मिलता है तो भी असंतुष्ट, कुछ नहीं करते बहुत ज्यादा मिल जाता है तो वह और भी असंतुष्ट, तो समानता क्या है इन चारों में? **असंतुष्टि**। किसी की प्राप्तियों को देखकर ईर्ष्या मत करिए। ईर्ष्या कौन करता है, जो खुद प्राप्तियों की दौड़ में लगा रहता है। यदि वह गिलास समुद्र में है तो उसको कुएँ को देखकर ईर्ष्या नहीं होगी। तरस आयेगा कि–'भैया, तुम गरीब आदमी हो, जितना पानी चाहिये मेरे से ले लेना।' इसलिये बड़े-बड़े शहंशाह गुफाओं में

बैठे हुए साधकों के आगे अपना ताज झुका देते हैं क्योंकि वे शहंशाह भिखमंगे नज़र आते हैं, कि—क्या चाहिये राजन? कि महाराज! यह चीज़ चाहिये? कि—अच्छा मिल जायेगी। तो इसलिये पुरुषार्थ आवश्यक है। जो पाँचवी श्रेणी बताई थी कि उसको वस्तुओं की कोई प्राप्ति नहीं है, न उसको प्राप्ति की इच्छा है। क्योंकि मैं जैसा बता चुका हूँ कि जब आप साधना और उपासना की ओर प्रवृत्त होते हैं तो सुख-साधन आपके चरणों में स्वयं आने लगते हैं। वह आपको प्राप्त हों या न हों, क्योंकि जिस वस्तु का आपको आनन्द और भोग मिल रहा है वो आवश्यक नहीं कि आपको प्राप्त भी हो। धन कोई और कमाता है, खाता कोई और है।भवन कोई और खड़ा करता है, उसमें रहता कोई और है। पद किसी और का है उसका फायदा कोई और उठाता है। संक्षेप में जब तक आप ईश्वर के साथ नहीं जुड़ेंगे तब तक आपको संसार की कोई भी वस्तु भोग और आनन्द नहीं दे सकती।

अब चूंकि सारा संसार हमारे एक नाम-रूप के ऊपर आधारित है। आप अपने सारे संसार का दिग्दर्शन करिये। माता-पिता, अपने भाई-बन्धु, आपकी डिग्रियाँ, आपकी धन-दौलत, सम्पदा, पोस्ट, देश-विदेश, धर्म-कर्म, आस-पड़ोस, जो कुछ है, वह सारा मात्र आपके नाम और रूप पर आधारित है। उसमें से यदि आप अपना नाम और रूप हटा दें तो आपका सारा संसार उसी समय ढह जायेगा। इसलिये जब भी सुबह उठना है, तो उसी समय रोज़ अपना जन्मदिन मनाना है, नित-नूतन। आपका जीवन मात्र एक दिन का है।रोज़ जन्मदिन मनाइये। उठिये सुबह और उठकर शुद्ध होकर आप भगवान के दरबार में बैठिये कि—हे प्रभु! आपने आज मुझे नया जन्म दिया है। यह देह आपकी है। एक-एक श्वास के स्वामी आप ही हो। अब अगला श्वास भी आयेगा या नहीं, यह भी आपके हाथ में है। यह जान, यह प्राण सब आपके हैं। मुझे क्या करना है यह मैं नहीं जानता? आप ही करिये जो करना है। अपनी आँखों में अश्रु लिये हुए जब रोज़ अपनी देह का सुबह समर्पण करेंगे तो आपका दिन महाआनन्दमय बीतेगा। आप आज़मा के देख लेना। सुबह उठते ही बिस्तर पर बैठकर अपने प्रोग्राम बनाने शुरू करेंगे तो

आप दुखी रहेंगे। सुबह उठते ही रोज़ देवदरबार में जाकर सर्वप्रथम आपने अपनी देह का रोते हुए समर्पण करना है, ध्यान रखिए आपको रोना भी आना चाहिये, कि प्रभु ! बड़ी कृपा की आपने, बनी बनाई देह दे दी और शाम को सोते समय फिर रोते हुए प्रार्थना करिये। यह परम सत्य आत्मसात् कर लीजिये आज। सोते समय फिर रोइये कि ''प्रभु ! बड़ी कृपा की, बड़ा आनन्दमय दिन बीत गया, 'मेरा आज का जीवन' और मैंने कुछ नहीं किया, जो कुछ भी किया प्रभु तुमने ही करवाया'' :–

''त्वदीयं वस्तु प्रभु तुभ्यमेव समर्पये।''

तब आपको सोने के लिये दारू नहीं पीनी पड़ेगी। अच्छी नींद आयेगी आपको। रोज़ सुबह पैदा होना है और रोज़ रात को निर्वाण ग्रहण कर लेना है। तो आपका जीवन एक दिन का है। आप विचार करिये कि यदि आपको यह ज्ञात हो कि आपका जीवन बस आज ही का है तो आपके सब काम कितने सुन्दर होंगे। आप किसी से कोई हेराफेरी नहीं करेंगे, अगर आपको ज्ञात हो कि शाम तक मेरी छुट्टी हो जानी है तो यह मान के चलिये कि पता नहीं हो ही जाये, क्योंकि आपके हाथ में तो कुछ नहीं है। तो प्रार्थना करके सुबह चलिये कि प्रभु आज का दिन बड़ा आनन्दमय बीते, तो आप जीवन का सही रस लेंगे। आपकी किसी से कोई दुश्मनी नहीं होगी। जो आपके दुश्मन भी होंगे उनको भी हाथ जोड़ देंगे कि भैया आज ही का दिन है, क्यों दुखी होते हो? बोले–'ठीक है प्रभु ! जो दिया बड़ा आनन्द है।' अगर यह गुण अपनायेंगे तो कोर्ट-कचहरियाँ बँद हो जायेंगी। हस्पताल बन्द हो जायेंगे। तो जीवन एक ही दिन का है। प्रारब्धवश जो आपको उस दिन जीवन मिला उसमें आपने क्या जोड़ दिया–**'पुरुषार्थ'**। जो भी प्रभु ने आपको दिया आप उसमें आनन्दमय जीवन बिताते हैं, पूरा दिन आपका आनन्दमय बीतता है। आप आज़मा के देखना।

यदि आप जीवन को जीना चाहते हैं तो जैसे कोई चीज़ बच्चे को स्वादिष्ट मिले, तो उसको वह धीरे-धीरे खाता है कि समाप्त न हो जाये। बच्चे क्या हम लोग भी ऐसा ही करते हैं कि चीज़ बहुत स्वाद हो और बड़ी

सीमित हो तो उसको हम धीरे-धीरे खाते हैं कि आराम से समाप्त हो, आप सारे दिन का स्वाद लेंगे। आपको कोई बैरी-बेगाना नज़र नहीं आयेगाः—

''न कोई बैरी नहीं बेगाना, सकल संग हमको बनिआई।''

आपके जगत का जो आधार है, वह है **आपकी देह**। मैंने **नाम-जाप** के पाँच प्रवचनों में स्पष्ट किया था कि हम कहाँ फँसे? **देहाध्यास** में फँसे? अपने आपको अपनी देह मान बैठे। कि **'मैं देह हूँ। यह देह मेरी है।'** तो नाम-जाप करते हुये जब आप अपना दिन बितायेंगे तो आपको अपनी देह का अध्यास छूट जायेगा। आप ईश्वर के साथ जुड़े रहते हैं। गुरु नानक देव महाराज को जब उनके पिता ने देखा कि वह जवान हो गये हैं तो सोचा इनको व्यापार करायें, विवाह-शादी का समय हो गया था तो उनको दुकान खुलवा दी। अब वो बचपन से ही सिद्ध थे, ईश्वर का अवतार थे तो उन्होंने शाम तक लोगों को सारी दुकान बाँट दी। किसी को गुड़ उठवा दिया, किसी को गेहूँ। सारी दुकान शाम तक खाली कर दी कि तेरा ही तेरा, ले जाओ! तो उस महापुरुष ने सारी दुकान लोगों को मुफ्त में बाँट दी। ऐसे महापुरुष कभी भी सांसारिक उपलब्धियों के पीछे नहीं भागते। उपलब्धियाँ उनके पीछे भागती हैं। आज भी उनको **सच्चे बादशाह** कहते हैं। सच्चे बादशाह, बेताज बादशाह, सारी दुनिया पर शासन है जिनका। सबके दिल में शासन करते हैं। ऐसे महापुरुष पाँचवीं श्रेणी में आते हैं।

साधना में सबसे ज्यादा महत्त्वपूर्ण है **सरस-साधना।** जिसका मैंने एक अध्याय अपने ग्रन्थों में लिखा भी है। साधना में कभी भी मैं इन्द्रिय दमन के पक्ष में न था और न होऊँगा। भगवान ने आपको उत्कृष्ट देह दी है। यदि इसकी जाँच की जाये तो हमारी यह ज्ञानेन्द्रियाँ जीभ, नाक, त्वचा, आँखें और कान यह प्रभु ने पँच-महाभूतों का प्रतिनिधित्व दिया है, हमारे चेहरे पर। अग्नि, आकाश, वायु, जल और पृथ्वी का क्रमशः नेत्र (तेज), कर्ण (नाद), त्वचा (स्पर्श), जिह्वा (रस) एवं नासिका (गन्ध) प्रतिनिधित्व करती हैं। पँच-महाभूतों में पृथ्वी को प्रदूषित किया जा सकता है, आकाश को प्रदूषित किया जा सकता है, जल को, वायु को प्रदूषित किया जा सकता है, लेकिन

अग्नि को प्रदूषित नहीं किया जा सकता। आपकी आँखें, आपके नेत्र अग्नि का प्रतिनिधि हैं। इन पँच-महाभूतों का प्रतिदिन पूजन, यज्ञ, हवन इत्यादि होना चाहिये। आप अपनी देह का स्वास्थ्य अगर चाहते हैं तो जिस ईश्वर ने आपकी देह बनाई है तो उसका नित्य पूजन आवश्यक है, नमन आवश्यक है। तो जब आप उन पाँच ज्ञानेन्द्रियों का दमन करेंगे जोकि कई साधक करते हैं कि अमुक चीज़ खानी नहीं है, अमुक चीज़ सूँघनी नहीं है और नेत्रों से मैं अमुक दृश्य नहीं देखूँगा, अमुक वस्तुओं को छुऊँगा नहीं। ऐसी साधना को इन्द्रियदमन की साधना कहा है, जिसका बहुत घातक परिणाम हो जाता है।

इन्द्रियों का सुख लेते हुए और इन्द्रियों की क्षमता समाप्त होने से पहले उन्हें उनके अपने आनन्दस्वरूप में ले जाइये। संगीत सुनते-सुनते आप जैसे कई लोगों को आदत होती है कि रात को सोते समय संगीत लगा देते हैं और उसके बाद नींद आ जाती है। कई बार उनको बन्द करना भूल जाते हैं और संगीत चलता रहता है। तो संगीत का प्रयोग आपने अपने इष्ट के ध्यान के लिये करना है। यह नहीं कि बस उसको सुनते जाओ फिर दूसरा लगा लो, तीसरा लगा लो जब तक सिरदर्द न हो जाये। तो आप इन्द्रियों का प्रयोग इन्द्रियों की क्षमता समाप्त होने से पहले अपने आनन्दस्वरूप में जाने के लिए करें। यह है **'सरस-साधना'**। यदि आपको कोई कहे कि आप अपनी गाड़ी की गति नियन्त्रित करिये और आप पेड़ के नीचे गाड़ी खड़ी कर दें। खड़ी मत करिये, गाड़ी को सड़क पर चलाइये, लेकिन गति को नियन्त्रित रखिये। यह है **'सरस-साधना'।**

जब आप इन्द्रियों को शिथिल किये बिना अपने आनन्दस्वरूप में चले जाते हैं तो आपकी इन्द्रियाँ सम्मानित हो जाती हैं कि यह योगी तुझे वहाँ ले जा रहा है जहाँ से हम खुद आनन्द ले रही हैं। **क्योंकि इन्द्रियों के पास अपना सुख नहीं होता। वह भी आपके आनन्दस्वरूप से सुख लेती हैं।** जब योगी इन्द्रियों का सुख भोगते-भोगते आनन्द में चला जाता है तो इन्द्रियाँ उसकी सेविकाएँ बन जाती हैं और वह इन्द्रियों के स्वामी बन जाते

हैं। जीवन की वृद्धावस्था में जब इन्द्रियाँ अपनी क्षमता खो देती हैं या आपके पास सुख-साधन नहीं होते तो अक्सर क्या होता है? वृद्धावस्था में लोगों को अपनी जवानी में लिये हुए सुखों की याद आती है तो वे न केवल अपने आपको दुखी करते हैं बल्कि अपने पास बैठने वालों को भी दुखी करते हैं कि मैं यूँ करता था, मैं वह करता था। बड़ा कुछ बताते हैं बढ़ा-चढ़ा कर। वह स्मृतियाँ उन्हें दुखी करती हैं। कब? जब इन्द्रियाँ अपनी क्षमता खो देती हैं या इन्द्रियाँ क्षमता न भी खोयें तो कभी सुख-साधन उपलब्ध नहीं होते आपको वृद्धावस्था में इन्द्रियों के शिथिल होने के बाद या सुख-साधनों के उपलब्ध न होने पर भी उन सुखों की स्मृति अवश्य दुख देगी। इसलिये सावधान! इन्द्रियों का सुख लेते हुए आनन्द की अनुभूति साथ के साथ करिये क्योंकि अनुभूति स्थिर है, वे आपके मानस पर अंकित हो जाती है। जब भी आपको किसी सुख की स्मृति आयेगी उसके साथ आपको आनन्द की अनुभूति भी होगी और वह अनुभूति आपको आनन्द में ले जायेगी और आपका बुढ़ापा बड़े आनन्द में बीतेगा:—

''आग़ाज़ को कौन पूछता है, अंजाम अच्छा हो ज़िन्दगी का।''

जिस व्यक्ति की वृद्धावस्था आनन्द में बीतती है तो वह निर्वाण प्राप्त करता है। उसकी अकाल मृत्यु नहीं होती। जैसेकि मैं बता चुका हूँ कि संसार की वस्तुएँ एकत्रित करते हैं जब हम, तो अतृप्त रहते हैं, वह अतृप्ति हमको असंतुष्टि देती है। असंतुष्टि हमको आसक्तियाँ देती है जैसाकि मैं **'अमरत्व'** के पाँचों प्रवचनों में बता चुका हूँ। वह आसक्ति अन्ततः हमको अकाल मृत्यु में ले जाती है, चाहे हम दो सौ साल के बूढ़े हो कर मरें। जब तक हमारी संसार की वस्तुओं में आसक्ति रहेगी तो हमारी अकाल मृत्यु होगी और इन अहम्वश प्राप्त वस्तुओं के साथ दुख-दुविधायें भी पैदा हो जाती हैं। जैसाकि मैं कई बार कह चुका हूँ ज्यादा चतुर नहीं समझना अपने आप को। **'साधना और उपासना'** का जीवन में बहुत बड़ा योगदान है। यदि आप आनन्दपूर्वक जीवन बिताना चाहते हैं तो आपके लिए **'साधना और उपासना'** परमावश्यक है। यह मत कहिये कि मैं बहुत व्यस्त हूँ। सुबह

जा कर रात को नौ बजे वापिस आता हूँ। नौ तो क्या लोग दस ग्यारह बजे आते हैं और उनके पास ईश्वर के पास बैठने का, मनन-चिंतन व ध्यान का कोई समय नहीं होता तो समझिये वे प्रेतयोनि की ओर बढ़ रहे हैं। विशेष करके दो संध्या के समय सुबह की **संध्या और शाम की संध्या उस समय आप सब कुछ छोड़कर परमात्मा का चिंतन अवश्य करें।** बहुत समय है ईश्वर का नाम लेने का। आप घर में खाना बनाते हुए, कपड़े धोते हुए, सफाई करते हुए, कुछ भी करते हुए, गाड़ी में सफर करते हुए ईश्वर का नाम जपते रहिये तो उससे आपका जीवन आनन्दमय बीतेगा।

पुरुषार्थ से हमारे कर्म-बंधन छूट जाते हैं और हम साधारण मानव से जिज्ञासु बन जाते हैं। जिज्ञासु को जब स्वयं के बारे में जानने की इच्छा होती है, प्रभु के बारे में जानने की इच्छा होती है, वहाँ आकर उसको सद्गुरु मिल जाता है और वह उसको मुमुक्षु पद तक ले जाता है। पुरुषार्थ से सम्बन्धित सभी कर्म साधना, प्राणायाम, ध्यान, चिंतन, मनन, दान-पुण्य, यज्ञ-हवन आदि अपने सद्शिष्य की प्रतिभाओं के अनुसार, उसकी दैहिक शक्तियों के अनुसार, उसकी मानसिक शक्तियों के अनुसार और उसके अन्य प्रकार के संस्कारों के अनुसार सद्गुरु सद्शिष्य से करवाता है। मैंने पुरुषार्थ के चार तीर्थ बताये थे—**अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष। 'अर्थ'** पहला और नीचे का सोपान है।

दूसरा सोपान **साधना और उपासना 'धर्म'** के लिये। जब मानव धर्म-कर्म करते-करते थक जाता है तो उसके बाद इसको ईश्वर की कामना पैदा हो जाती है। तीसरी सीढ़ी का नाम है **'काम'** और इसको ईश्वर की कामना हो जाती है। ईश्वर को पाना चाहता है बस और कुछ नहीं पाना चाहता तो सद्गुरु शिष्य को इसके निराकार स्वरूप का आभास करवाता है। वह मैं पहले वर्णन कर चुका हूँ और अन्ततः इसको मोक्ष के द्वार पर लाकर छोड़ देता है, क्योंकि जब कोई जिज्ञासु मुमुक्षु बन जाता है तो उसके बाद सद्गुरु का कार्य समाप्त हो जाता है। उसके बाद स्वयं उसको ईश्वर सम्भाल लेते हैं।***'सोइ जानइ जेहि देहू जनाई।'***

इस प्रकार ईश्वर उसको स्वयं स्वीकार कर लेते हैं और अपने अन्तिम स्वरूप का, ज्ञानस्वरूप का आभास प्रभु उसको स्वयं करवाते हैं और उस वक्त क्या अवस्था होती है आपको सर्वत्र आपका इष्ट, आपका यार ही नज़र आता है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र भगवान की जय''

(21 जुलाई, 2002)

स्वार्थ-परमार्थ

आज इस महाऐश्वर्यपूर्ण वातावरण एवं आप सब सद्‌गृहस्थों की परम सौन्दर्यमयी उपस्थिति में इष्ट-कृपा से आपके सामने एक बहुत साधारण मगर जटिल विषय रखूँगा। आप सबकी एकाग्रता आवश्यक है। आप सभी साधक हैं, उपासक हैं, इसमें हमें कोई भी संदेह नहीं है। अक्सर लोग हमसे प्रश्न करते हैं कि ईश्वर में ध्यान नहीं लगता। ध्यान कैसे लगायें? मन भटक जाता है। वगैरह-वगैरह। तो ध्यान क्यों नहीं लगता? जबकि हमारा पैसा कमाने में ध्यान लगता है। घर में गप्पें मारने में ध्यान लगता है। पिक्चर देखने में ध्यान लगता है। सबमें ध्यान लगता है पर ईश्वर में ध्यान क्यों नहीं लगता? कहाँ त्रुटि है? इससे हमको आज अवगत होना अति आवश्यक है। हम सब स्वार्थी हैं। बिना स्वार्थ के हम एक सांस भी नहीं लेते तो ईश्वर से जब तक हमें कोई स्वार्थ न हो, तो उसमें ध्यान कैसे लगायें? प्रश्न यह नहीं कि ध्यान क्यों लगायें? बिना स्वार्थ के हम किसी से बात तक नहीं करते। बिना स्वार्थ के हम किसी के घर भी नहीं जाते। बिना स्वार्थ के हम किसी को समय भी नहीं देते। ईश्वर के दरबार में हम बैठते हैं, उसको ध्यान में लाने के लिये, स्तुति-गान के लिये। इसके लिए किस प्रकार हम अपने हृदय को तैयार करें? जब तक हमें यह ज्ञात नहीं होगा कि ईश्वर में ध्यान क्यों लगायें तब तक हम ध्यान लगा ही नहीं सकते। भूल जाइये इसे।

क्यों लगायें ध्यान, क्या मिलेगा इससे? एक-आध घंटा, पन्द्रह-बीस मिनट जो हमने वहाँ लगाने हैं, हम क्यों लगायें, क्योंकि हमें जन्म-जन्मान्तरों से आदत पड़ी हुई है कि बिना मतलब के हम किसी को अपने पास ठहरने

नहीं देते और बिना स्वार्थ के हम किसी के पास ठहरते नहीं हैं। क्या है ईश्वर, क्यों बैठें हम उसके पास सारे काम छोड़कर? तो जब तक यह स्पष्ट नहीं होता तब तक हमारा ध्यान लगने का कोई प्रश्न ही पैदा नहीं होता। कुछ लोग ऐसे भी पूछते हैं कि क्या ईश्वर को मानना आवश्यक है? यह भी अपने में बहुत महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। यह कई बार मैं पहले भी स्पष्ट कर चुका हूँ और आज पुनः करता हूँ कि **ईश्वर को मानना कोई आवश्यक नहीं है।** क्योंकि जंगलों में पशु, ईश्वर को नहीं मानते। वे भी पैदा होते हैं, मरते हैं और अपने आप उनका क्रिया-कर्म होता है। उनके बच्चे पैदा होते हैं। ईश्वर ने उनको जैसा बनाया है उसके अनुसार उनको भोजन भी मिलता है, सब कुछ होता है और वे ईश्वर को बिल्कुल भी नहीं मानते। अक्सर जानवर स्वस्थ रहते हैं। कोई चिकित्सालय जंगलों में नहीं होते, समुद्र में नहीं होते। बड़े-बड़े विशालकाय जानवर, उनको भरपेट भोजन समय-समय पर मिलता है और वे ईश्वर को नहीं मानते। तो हम क्यों मानें ईश्वर को?

मनुष्यों में भी कई ऐसे मानव हैं जो ईश्वर को नहीं मानते। ईश्वर क्या है? तो मानव को, जैसाकि मैं बहुत बार कह चुका हूँ कि ईश्वर ने बड़ी चमत्कारिक शक्ति दी है जिसका नाम है—**मानव-बुद्धि,** जो पशुओं को नहीं दी। इस बुद्धि में जब कभी विवेक उत्पन्न होता है तो कोई भी मानव यह सोचने लग जाता है कि मैं अमुक-अमुक समय पर इस पृथ्वी पर क्यों लाया गया हूँ, मुझे मरना कब है, अमुक-अमुक प्रकार की तथाकथित शिक्षा क्यों मिली मुझे, मैं अमुक प्रतिभाओं से युक्त क्यों हूँ, अमुक-अमुक स्त्री से, पुरुष से मेरा विवाह क्यों हुआ है, मेरी संतान भिन्न-भिन्न प्रतिभाओं से युक्त क्यों है, जीवन में विभिन्न घटनायें क्यों घटती हैं? सौरमण्डल को, पृथ्वी को, सागरों को कौन नियंत्रित कर रहा है? तो जैसे-जैसे मानव-बुद्धि का विकास होता है, ह्रास नहीं विकास, तो मानव इन ज्वलन्त प्रश्नों पर अपनी बुद्धि का सदुपयोग करता है कि ऐसा क्यों है और अन्ततः वह मान जाता है कि कोई न कोई ऐसी महाशक्ति अवश्य है जो सारे महाब्रह्माण्ड को नियंत्रित करती है, पालती है और उसका संहार करती है। जो जीवन को

चला रही है। देह के एक-एक श्वास की स्वामिनी है, एक-एक पल जीवन का, एक-एक क्षण उसके हाथ में है। जब वह अपनी तीव्रतम एवं विलक्षणतम बुद्धि से मान जाता है, उसके बाद वह किसी भी प्रकार से, किसी नाम में, रूप में, अरूप में, साकार में, निराकार में, उस सत्ता से सम्पर्क करना चाहता है, यहाँ पर दो बातें साफ हो गईं। **एक तो ईश्वर की मान्यता और दूसरे उससे सम्पर्क करने की अनिवार्यता** कि वह महाशक्ति जो कोटि-कोटि ब्रह्माण्डनायक है, सम्पूर्ण महाब्रह्माण्डों का संचालन कर रही है, वह मेरे जीवन को अति विलक्षण एवं गुणात्मक क्यों नहीं बना सकती? तो **स्वार्थपूर्वक** ईश्वर में आपका ध्यान लग जायेगा क्योंकि हमको आदत पड़ी हुई है कि बिना स्वार्थ के हम कभी अपना समय व्यर्थ नहीं करते। ईश्वर को मानना और उसकी सत्ता को, उसकी शक्ति को ऐसा मानकर कि यह शक्ति मेरे जीवन को अति उत्कृष्ट बना सकती है, मेरा एक-एक श्वास आनन्दमय बना सकती है, जब आप उसके पास बैठेंगे तो अपनी धारणा और मान्यता के अनुसार वह ईश्वरीय शक्ति अवश्य आपके जीवन को परम उत्कृष्ट बनाने में सहायक होगी। यह निर्भर करता है कि आप कितनी उत्कंठा से, कितनी जिज्ञासा से और कितने विश्वास से बैठे हैं। विश्वास आपका है, जैसा कई बार मैंने सुनाया है:—

''जिसे आँखें खुदा ने दीं,
वह पत्थर में खुदा देखे,
जिसका हो दिल पत्थर,
वह पत्थर में क्या देखे?''

अब आपने उस ईश्वरीय सत्ता को एक विग्रह में और ईश्वर के पँच-महाभूतों में से पृथ्वी, जल, वायु, आकाश और अग्नि में से किसी में, या किसी महामानव में, किसी पेड़ में, किसी नदिया में, किसी नक्षत्र में, सूर्य-चन्द्रमा में अपनी धारणा को आरोपित करके, ईश्वर-रूप में उसे माना। जब आप उसके सान्निध्य में बैठते हैं विश्वास के साथ कि यह ईश्वर है, तो स्वार्थवश भी यदि आप जीवन के लिये ही जीना चाहते हैं, तो भी आपका

जीवन निश्चित रूप से उत्कृष्ट हो जायेगा। **आपको स्पष्ट हो जाना चाहिये कि क्या मैं जीवन के लिये बैठा हूँ या यह जानने के लिये कि जीवन काहे के लिये है, बैठा हूँ।** अगर आप जीवन जीने के लिये भी बैठते हैं, अपने घर में सुख-शान्ति के लिये, सम्पन्नता के लिये, स्वास्थ्य के लिये, रोगों-दोषों के निवारण के लिये और अपने ऐश्वर्य को बढ़ाने के लिये, लेकिन उसको मान के बैठे हैं तो भी आपको निश्चित रूप से उसका सुफल अवश्य मिलेगा। तो यह है **स्वार्थपूर्वक ईश्वर को ध्याना**। साधना और उपासना स्वार्थ के लिये करना। स्वार्थी बन जाइये कोई हर्ज़ नहीं है।

जब हम माँ के गर्भ में थे तो हमारे अन्दर कोई ईश्वर की धारणा नहीं थी। जब हम उत्पन्न हुए, छोटे शिशु थे, मानव-शिशु उस वक्त ईश्वर तो क्या हमें अपने माता-पिता का भी पता नहीं था कि कौन मेरी माता है, कौन मेरा पिता है? दो-ढाई साल के बच्चे को पहले अपने माँ और पिता की पहचान होती है। तो प्रश्न यह उठता है कि ईश्वर को मानने से ही जीवन चलेगा? **नहीं-नहीं।** मानव की जीवन रूपी यह कैसेट गर्भाधान से लेकर मृत्यु तक पहले से ही अंकित होती है। जिसको कहा है–**प्रारब्ध।** गर्भ-धारण किस समय होगा, वह मानव-शिशु उत्पन्न कब होगा? किन लोगों की उपस्थिति में होगा, तब देश-विदेश एवं समाज की परिस्थितियाँ क्या होंगी और वह अपने भाई-बहनों से भिन्न कैसे होगा, उसकी तथाकथित शिक्षा कैसी होगी? उसकी सुख-समृद्धि क्या होगी, उसकी विवाह-शादी कहाँ होगी, आगे उसकी संतान कैसी होगी और उसकी मृत्यु कहाँ, कब और कैसे होगी? यह पूरी कैसेट पहले से ही भरी हुई आती है। आप ईश्वर को मानो या ना मानो। इसको कहा है–**प्रारब्ध।** जिसके अन्तर्गत जीवन चलता है। अपने **प्रारब्ध** शीर्षक प्रवचन में मैंने इस विषय का विस्तृत वर्णन किया है।

अब यहाँ पर ईश्वरीय **उपासना और साधना** का क्या महात्म्य है? निश्चित समय पर जन्म हुआ, निश्चित माँ मिली, निश्चित पिता मिला, जैसे भी मिले। भाई-बन्धु मिले। पति-पत्नी जैसे भी मिले। व्यवसाय मिला और मिलने वाले मिले जैसे भी मिले, आस-पड़ोस मिला, अधिकारी मिले,

सेवक मिले। यदि यही कैसेट छपी हुई आई है तो ईश्वर के चिंतन में, ध्यान में, भजन में, कीर्तन में क्यों बैठें? बात मात्र स्वार्थ पर चल रही है। भौतिक जीवन पर चल रही है। जब आप ईश्वर के चक्कर में पड़ जाते हैं, ईश्वर का चक्कर शुरू हो जाता है साधना में और उपासना में, तो ईश्वर-निमित्त साधना, ध्यान, भजन, कीर्तन, प्राणायाम, दान, पुण्य, यज्ञ, हवन, स्वाध्याय जो कुछ भी आप करते हैं, उसको कहा है—**पुरुषार्थ।** तो पुरुषार्थ-कर्म का स्वार्थ-कर्मों के साथ समन्वय कैसे होता है? मात्र यदि स्वार्थी हैं हम तो भी वहाँ पर पुरुषार्थ, प्रारब्ध को पाँच प्रकार से प्रभावित करता है। **पहला** प्रारब्धवश जो कुछ भी आपको मिलता है आप उससे कभी संतुष्ट नहीं हो सकते। धन, स्त्री, संतान, पद, जीवन-स्तर व सम्पदा इत्यादि कभी भी मानवप्रारब्धवश हुई प्राप्तियों से संतुष्ट नहीं हो सकता। क्योंकि प्रारब्ध जड़ और चेतन की ग्रन्थि है। प्रारब्ध कब बनता है? जब हम ईश्वर से विमुख हो जाते हैं। अहम् में आ जाते हैं। इस पृथ्वी को चलाने वाला मैं हूँ, मेरे बिना मेरे बच्चों का क्या होगा, मेरे बिना मेरी पत्नी का क्या होगा, मेरा कारोबार मेरे बिना कैसे चलेगा? मेरा एक-एक क्षण बहुत महत्त्वपूर्ण है। जब मानव में अहम् भाव आ जाता है तो वहाँ से बनती है जड़ और चेतन की ग्रन्थि। अतः उसमें जड़ता भी होती है। अब आप कहेंगे कि ईश्वर को पारिभाषित किया है शास्त्रकारों ने **सच्चिदानन्द—सत्, चेतन और आनन्द का अविरल, अकाट्य संगम—इसको कहा है ईश्वर।** तो जड़ता कहाँ से आई उसकी सृष्टि में? जब हम **अहम्वश, अज्ञानवश, अबोधतावश, मायावश उस सत्य से विमुख हो जाते हैं तो हम जड़ हो जाते हैं।** सत्य से विमुख होते ही हम बन जाते हैं **मिथ्या**, जब हम चेतन से विमुख होते हैं तो बन जाते हैं **जड़** और आनन्द से विमुख होते हैं तो हमें जीवन के सारे कष्ट घेर लेते हैं।

आपका जीवन प्रारब्धवश चलता है और आप स्वार्थवश ईश्वर का ध्यान करते हैं, उपासना करते हैं, साधना करते हैं कुछ भी करते हैं, तो प्रारब्धवश आपको उससे संतुष्टि मिल जाती है। अन्यथा संतुष्टि का कोई प्रश्न ही पैदा नहीं होता। मैं गिलास और समुद्र का उदाहरण बहुत बार दे

चुका हूँ कि आपको थोड़ी बहुत जो भी प्राप्ति होती है तो बड़ी प्रसन्नता होती है। कुछ दिनों बाद फिर मन खराब हो जाता है **अपनी से बड़ी चीज़ देखकर।** और चाहिये, और चाहिये। यह अतृप्ति, यह असंतोष, यह आसक्ति मानव को अन्ततः अकाल मृत्यु में ले जाती है। फिर जन्म होता है, फिर मरता है, फिर कोई न कोई इसकी आसक्ति छूट जाती है। तो प्रारब्धवश आपको जो कुछ भी प्राप्त होता है, पुरुषार्थवश आपको उसमें संतुष्टि मिल जाती है। यह पहला बदलाव आता है। **दूसरे** प्रारब्धवश यदि आपको कोई प्राप्ति नहीं है, जैसे कई लोगों की संतान नहीं होती, किसी के पुत्र नहीं है, किसी के पुत्री नहीं है, किसी के पास धन नहीं है, किसी के पास अन्य कुछ नहीं है, इस प्रकार यदि प्रारब्धवश आपके जीवन में कुछ अभाव है तो पुरुषार्थवश प्रभु उसकी पूर्ति कर देते हैं। यदि आप स्वार्थवश भी ईश्वर का ध्यान, चिंतन, मनन व साधना करते हैं तो भी आपके जीवन की कमी की प्रभु किसी न किसी प्रकार से इस प्रकार भरपाई करते हैं कि आपको वह कमी नहीं खलती। यह कैसे करते हैं? वह प्रभु जानें और आप जानें। बस हो जाता है कुछ न कुछ। कभी-कभी तो ऐसा भी हो जाता है कि लोग ईर्ष्या करने लगते हैं।

तीसरे प्रारब्धवश यदि आपके जीवन में घोर कष्ट आ जाता है जोकि सबके जीवन में ज़रूर आता है, यह जीवन रूपी सड़क है, जो पहाड़ी की पगडंडी है, यह कभी सीधी नहीं चलती। कभी बहुत टेढ़ी हो जाती है, कभी एकाएक मोड़ आ जाता है, गाड़ी पलटने का खतरा हो जाता है। कभी मौसम इतना खराब हो जाता है कि आगे बढ़ना मुश्किल हो जाता है। सबके जीवन में ऐसे मुकाम आते हैं और जिसके नहीं आते तो समझो उसने जीवन जिया ही नहीं। जब कभी ऐसे अवसर आ जाते हैं तो अक्सर साधारण व्यक्ति विक्षिप्त हो जाता है, उस समय जब हम अपने इष्ट को, प्रभु को पुकारते हैं, काहे के वश? **स्वार्थवश।** तो सुनवाई होती है और आपका सारा कष्ट शीघ्रातिशीघ्र समाप्त हो जाता है। जैसे आप टी. वी. में पिक्चर देख रहे हों और कोई दृश्य आपके लिये बड़ा कष्टमय है कि इसको

हटाओ। कोई गाना ऊत-पटांग आ गया, हम कहते हैं कि इसे फास्ट-फॉरवर्ड कर दो तो हम दो प्रकार से उस दृश्य को फास्ट-फॉरवर्ड कर सकते हैं एक तो टी. वी. बन्द करके दूसरे चलते-चलते। ठीक उसी प्रकार प्रभु आपके कष्टों को फास्ट-फॉरवर्ड कर देते हैं यहाँ तक कि बड़े से बड़े कष्ट रात के स्वप्न में ही निपट जाते हैं:–

''गोपद सिंधु अनल सितलाई, गरल सुधा रिपु करहिं मिताई।''

आप सभी सद्‌गृहस्थों ने अनुभव किया होगा कि बहुत बड़ा कष्ट कई बार एक गाय के पैर की नाईं छोटा हो जाता है। जब प्रभु की कृपा होती है तो आग ठंडी हो जाती है, ज़हर अमृत बन जाता है और बड़े-बड़े शत्रु आपके पास आकर दोस्ती करने लगते हैं। यदि आप स्वार्थवश भी प्रभु का ध्यान करते हैं तो भी, आप आज़मा के देख लेना और देखा है लोगों ने। इसलिये लोग पुरुषार्थ करते हैं। प्रारब्धवश जो बड़े-बड़े कष्ट हैं, वे शीघ्र ही समाप्त हो जाते हैं। इन कष्टों का तुरन्त रूपान्तर हो जाता है और कभी-कभी वे कष्ट आपके जीवन के इतिहास में नींव का पत्थर बन जाते हैं। लोग आपको इन कष्टों की वजह से पूजते हैं। इतिहास आपको उन कष्टों की वजह से ही जानता है। वे कष्ट लोगों के लिये एक प्रेरणा बन जाते हैं। समय रूपी रेत पर आप पद-चिन्ह छोड़ जाते हैं। उन कष्टों की वजह से जीवन से हताश लोग आपसे प्रेरणा लेते हैं। उन कष्टों को प्रभु बहुत आनन्दमय कर देते हैं, क्योंकि वह **महासौन्दर्यवान, महासशक्त, महाख्यातिवान, महाज्ञानवान व महाऐश्वर्यवान है**, वह कुछ भी कर देता है, अगर आप उसे स्वार्थवश भी बुलायें। अगर आप स्वार्थी बनना चाहते हैं तो स्वार्थी बने रहिये। तो यह था **तीसरा आयाम**।

और क्या होता है? प्रभु आपके प्रारब्ध का रूपान्तरण कर देते हैं। कई बार आप अपने व्यवसाय से दुखी हो जाते हैं, कई बार आप अपनी आर्थिक व सामाजिक स्थिति से परेशान होते हैं कि जीवन में यह क्या बोझ ढो रहा हूँ और क्यों ढो रहा हूँ, इसका अर्थ क्या है, इसका अंत क्या है, तो बस जब आप डंके की चोट पर यह आवाज़ पहुँचा देंगे कि प्रभु यह आप क्या करवा

रहे हो मुझसे? माना यह कैसेट तुम्हारे ही द्वारा हस्ताक्षरित है, अरे! इसको बदल दो। कुछ मुझे समय दो कि मैं तुम्हारे साथ बैठ सकूँ। तो प्रसन्न होकर प्रभु आपके प्रारब्ध का रूपान्तरण कर देते हैं। ऐसा भी होता है, कुछ सिर-फिरे भक्त होते हैं, वे प्रारब्ध की फाइल ही गायब करवा देते हैं:–

''बहुत जन्म जिये रे माधो, यह जन्म तुम्हारे लेखे।''

अरे! मैं युगों-युगान्तरों से जन्मता रहा और मरता रहा। सप्ताह में भी शनिवार और रविवार की छुट्टी होती है। अरे! एक जन्म की छुट्टी कर दो। इतने जन्मों में माधो! मुझे क्या मिला? होश सम्भालने से लेकर मृत्यु तक मैं कुछ न कुछ इकट्ठा करता रहा और मरते समय फिर वही शून्य! यहाँ तक कि डोम कफन भी उतार लेता है। भवन खड़े के खड़े रह जाते हैं, आपकी पदवी समाप्त हो जाती है, आपका धन समाप्त हो जाता है और यहाँ तक कि आपके सगे-सम्बन्धी भी तिनका तोड़कर चले जाते हैं कि अब इसके साथ सम्बन्ध समाप्त और बचता क्या है! केवल डेढ-दो किलो राख। हे माधो! यह तमाशा क्या करवा रहे हो? जब आप जीवन का **मुख्त्यारनामा- आम** पुरुषार्थवश अपने माधव को, अपने इष्ट को समर्पित कर देते हैं, तो प्रभु आपके प्रारब्ध का सारा लेखा समाप्त कर देते हैं, पूरी कैसेट साफ कर देते हैं। फिर वह स्वयं आपके जीवन को आपकी ओर से चलाते हैं। वह सरकार आपके जीवन को चलाती है, बशर्ते कि आप प्रार्थना करें। आपको हर रोज़ प्रार्थना करनी पड़ती है कि हे प्रभु! हे मेरे इष्ट! मैं जन्म-जन्मान्तरों से धक्के खा रहा हूँ और तुमने जो मुझे बल, बुद्धि, विद्या दी है मैं आपसे कभी नहीं मागूँगा और जब-जब मुझे बल, बुद्धि विद्या मिली है मैंने कुछ न कुछ अहम्‌वश किया है। जब-जब मैंने कुछ किया है तो मैं फँसा हूँ। तुम भी जानते हो और तुमने मुझे भी जनवा दिया है। यह नहीं कहना कि मैं जान गया हूँ। नहीं तो फिर केस चलेगा। आप भी जानते हैं और मुझे भी जनवा दिया है कि तुम्हारी दी हुई बल, बुद्धि व विद्या का प्रयोग करना मैं नहीं जानता हूँ और मैं जानना भी नहीं चाहता। मुझे क्यों फँसाते हो:–

''पड़ा रहने दो अपने दर पर मुझको, क्यों उठाते हो,
मेरी किस्मत संवरती है, तुम्हारा क्या बिगड़ता है?''

जब गिड़गिड़ा पड़े, ढह जाये उसके दर पर, अशक्त होकर, असमर्थ होकर, बल-बुद्धिविहीन होकर, पूर्णतया समर्पित होकर प्रार्थना करें कि हे प्रभु ! मुझे अपनी गोद में बिठा लीजिये। हे माधो ! यह सारा जीवन तुम ही चलाओ। **मैं देखना चाहता हूँ कि तुम इस जीवन को कैसे चलाते हो?** फिर आपको वह खिलाता है बशर्ते कि आप बल, बुद्धि, विद्याहीन, असमर्थ एवं अशक्त होकर तहे-दिल से और तहे-रूह से उसके हो जायें।

स्वार्थवश जब पुरुषार्थ होता है, आज मैं एक नई घटना बता रहा हूँ, तो हम उस पुरुषार्थ के दो सोपान चढ़ते हैं—**अर्थ और धर्म।** यह स्वार्थवश पुरुषार्थ है। अब यहाँ एक घटना होती है क्योंकि हम बुद्धिमान हैं, बड़ी विकसित बुद्धि है मानव की। यहाँ तक जब जन्म-जन्मान्तरों में अर्थ और धर्म के लिये पुरुषार्थ करते हैं, अपनी कामनाओं की पूर्ति के लिये तथाकथित सुखद गृहस्थ जीवन के लिये, चुनाव जीतने के लिये और सब कुछ के लिये जब हम ईश्वर को ध्याते हैं, यज्ञ-हवन करते हैं, जप-तप करते हैं, दान-पुण्य करते हैं तो **एक दिन थक जाते हैं कि फिर क्या? यदि** सारी दिल्ली मैं खरीद लूँ, सारा भारत मैं खरीद लूँ और सारे विश्व की भूमि भी मेरी हो जाये तो फिर क्या? जब आपने पुरुषार्थ को स्वार्थवश किया और उसकी दो सीढ़ियों अर्थ और धर्म पर आप सफलतापूर्वक चढ़ गये, आप सोचते हैं कि मुझे क्या मिला? कृपया एकाग्र करिए। हम जीवन को जीवन के लिये जी रहे हैं और ईश्वर को भी पाना चाहते हैं। पोस्ट बहुत ऊँची है, एक दिन प्रेम-पत्र आ जाता है, बंगला खाली करो। बड़ी खूबसूरत देह मिली आपको, लेकिन यही आपकी अपनी देह भी आपको धोखा देगी, जितना मर्ज़ी वातानुकूलित कमरे में रख लो इसको, जो कुछ इसमें होना है, हो ही जायेगा। आपकी स्त्री, आपकी संतान, आपके सगे-सम्बन्धी, आपकी प्रौपर्टी सब आपको एक-एक करके छोड़ना शुरू हो जाते हैं या आप उनको छोड़ देते हैं, क्योंकि **जो मिला है वह बिछुड़ेगा ज़रूर। जो पैदा हुआ है वह**

मरेगा अवश्य। तो जब बुद्धि इस प्रश्न पर विचार करती है कि अगर मैंने ईश्वर का ध्यान किया, साधना की और ये वस्तुएँ मुझे मिल गईं, मुझे बधाईयाँ भी बहुत मिलेंगी, लेकिन एक दिन अफसोस के टेलीफोन भी ज़रूर आयेंगे। बधाईयों से खुश नहीं होना क्योंकि बधाईयों से खुश होंगे तो दूसरे फोन भी अवश्य आयेंगे। महापुरुष बहुत प्राप्त करने पर खुश नहीं होते और कुछ खोने पर ज़्यादा ग़मगीन नहीं होते। भौतिक प्राप्तियों से बहुत खुश होने वालो ! याद रखना कि उनका दूसरा पहलू भी देर-सबेर आपके सामने आयेगा। तो दो सीढ़ियां आपने पुरुषार्थ की चढ़ीं स्वार्थवश और जब बुद्धि ने आगे प्रश्नचिन्ह लगा दिया कि, अगर पृथ्वी का सारा साम्राज्य भी मेरे पास है, तो क्या? अगर सारे विश्व के बैंकों में मेरा ही पैसा है, तो क्या? जब यह प्रश्न आपके अन्दर कौंधने लगता है तो **आपको जीवन की असत्यता का आभास हो जाता है।** यह बड़ी महत्त्वपूर्ण घटना आपके सामने रख रहा हूँ। अगर आप सत्य को जानना चाहते हैं, अगर उस सच्चिदानन्द ईश्वर के सान्निध्य में जाना चाहते हैं या उसको जानना चाहते हैं तो आपको असत्य का ज्ञान होना परमावश्यक है। **सत्य को जानने से पहले असत्य का ज्ञान होना आवश्यक है।** जिसको असत्य का ज्ञान नहीं है वह सत्य की कभी भी प्रशंसा नहीं करेगा। जिसने कभी गरीबी नहीं देखी उसको अमीरी का महात्म्य नहीं होगा। जिसने कभी रोग नहीं देखा वह कभी अच्छे स्वास्थ्य की प्रशंसा नहीं कर सकता। अगर आप उस परम सत्य को, सच्चिदानंद ईश्वर को किसी भी प्रकार से नाम में, रूप में, अनाम में, अरूप में किसी भी प्रकार से उसके सान्निध्य में जाना चाहते हैं, या अनुभव करना चाहते हैं, तो आपको पहले असत्य को अनुभव करना परमावश्यक है। बड़ी नई बात रख रहा हूँ। **जब तक आप इस संसार के, इस देह के मिथ्यात्व का आभास नहीं करेंगे, तब तक आपको सत्य का आभास हो ही नहीं सकता।** यह दिव्य अधिनियम है। आज पहली बार मैं यह तथ्य रख रहा हूँ इस परम पवित्र घर के प्रांगण में। जब तक आप मिथ्यात्व की अनुभूति नहीं कर लेंगे कि मिथ्यात्व क्या है, मैं क्यों अपना समय व्यर्थ कर रहा हूँ इस मिथ्यात्व में,

इस देह के तामझाम में, इस पोस्ट के लिये, संतान के लिये, स्त्री के लिये, धन के लिये, सम्पदा के लिये और सब के लिये मैं क्यों समय नष्ट कर रहा हूँ, मैं बार-बार मृत्यु और जन्म के चक्कर में क्यों पड़ा हुआ हूँ? इस मिथ्यात्व का जब तक आपको आभास नहीं हो जायेगा, अनुभूति नहीं हो जायेगी और जब तक आप प्रश्न-चिन्ह नहीं लगायेंगे, तब तक आपका उस महामंजिल की तरफ मुँह नहीं हो सकता। तो पुरुषार्थ द्वारा स्वार्थपूर्वक आपको दो सीढ़ियाँ चढ़ते-चढ़ते मिथ्यात्व का आभास हो जाता है और उसका जो निचोड़ है वह आपके सामने रख रहा हूँ।

हम कहते हैं कि देह मिथ्या है, क्यों मिथ्या है? हम देह के साथ तद्‌रूप हो जाते हैं **कि 'मैं देह हूँ',** इसको मैंने **देहाध्यास** कहा है और उससे थोड़ी छोटी भूल कि **'देह मेरी है', देहाधिपत्य।** अगला श्वास आयेगा कि नहीं। अगले श्वास पर जीवन किधर मोड़ लेगा? वह किसी को मालूम नहीं। तो इसका अर्थ यह कि देह पर आपका कोई अधिकार नहीं है। जीवन का एक-एक पल, एक-एक क्षण, एक-एक श्वास किसी और के हाथ में है। इसका रिमोट किसी और के हाथ में है। आप पानी का गिलास भी पी सकेंगे कि नहीं, आपके हाथ में पानी का गिलास पकड़ा ही रह जाता है। जाना कहीं होता है, पहुँच कहीं और जाते हैं। मिलना किसी और से चाहते हैं, मिल कोई और जाता है। यह हर रोज़ की घटनायें आप देखते हैं। चाहते कुछ और हैं होता कुछ और है। फिर भी हम जीवन को अपनी ओर खींचने से बाज़ नहीं आते। जैसे मैंने एक उदाहरण दिया था; रस्सी को हाथी एक तरफ से खींच रहा है और दूसरी तरफ से चूहा, जो बड़ी मेहनत कर रहा है कि बड़ा पुरुषार्थी हूँ मैं। लोग इस निरर्थक कर्म को भी पुरुषार्थ कहते हैं। तो चूहे के घुटने रगड़े जायेंगे और वह किधर खिंचेगा? जिधर हाथी खींच रहा है, अगर उस चूहे को कभी सत्संग मिल जाये तो वह छलाँग मारकर हाथी की पीठ पर बैठ जायेगा, ***कि चलो सजना जहाँ तक राह चले।*** वह मौसम का भी आनन्द लेगा और हाथी की सवारी का भी आनन्द लेगा। अरे ! क्यों खींचते हो जीवन को अपनी ओर। **जिधर हवा का रुख है चलिये उस**

ओर। घिसटिये मत। आपके जो घुटने रगड़ते हैं, जो तनाव होता है, जो दिल के दौरे पड़ते हैं, एलर्जी होती है, वह सब इसलिये होते हैं कि जीवन को आप खींचना कहीं और चाहते हैं और जीवन चल किसी और के इशारे से रहा है। मात्र उसको याद करिये, उसके पास बैठिये। स्वार्थवश बैठिये। तो पाँच प्रारब्ध के बदलाव जो मैंने गिनवाये हैं, वे अवश्य आ जाते हैं, जब आपको मिथ्यात्व का आभास हो जायेगा। मिथ्यात्व कब हुआ जब आप उसके विमुख हुए। जब आप सत्य के, चेतन के, आनन्द के विमुख हुए तो वह कहलाता है **असत्य, जड़ता और विक्षेप।**

यदि आप एकाग्र करें तो सम्पूर्ण महाब्रह्माण्ड जो आपका संसार है, आपका स्वयं का संसार है, वह आपके नाम और रूप पर आधारित है। आप जब अपने नाम-रूप को निकाल दें तो हमारा संसार उसी समय ढह जायेगा। लय-योग द्वारा जब हम अपनी जागृति में अपने नाम और रूप से प्रभु का नाम जपते हुए ध्यान से, समर्पण से, तुरियावस्था में, किसी भी तरह से हम अपने नाम और रूप से परे हो जायें तो उस समय सारा संसार समाप्त हो जाता है। जितनी भी संसार में भाग-दौड़ है, उसका कारण है हमारा नाम और रूप। मुझे यह करना है, मैंने ऐसे किया, **मैं–मेरा** इन सब पर आपका समस्त जीवन घूमता है। जब आप ईश्वर के सम्मुख हो जाते हैं कि प्रभु आप ही कर्त्ता-धर्त्ता हो, यह प्रार्थना भी मैं आपकी कृपा से, आपकी इच्छा से, आपकी शक्ति से कर रहा हूँ। कभी यह मत कहना कि मैं प्रार्थना कर रहा हूं, वह भी विमुखता है। **एक जड़ कभी चेतन प्रार्थना** नहीं कर सकता। कि मैं इतने घंटे ध्यान में बैठता हूँ, इतने घंटे प्राणायाम करता हूँ और इतना मैं रोज़ दान करता हूँ। तो ध्यान रखिए यह सारा जड़ता में हो रहा है और आप कभी चेतन का सान्निध्य पा नहीं सकते। आप जब भी ईश्वर-निमित्त कोई कार्य करते हैं तो वह ईश्वर की शक्ति से ही करते हैं। इसको मत भूलना। अगर ईश्वर का नाम-जाप करते हैं, संत के पास बैठते हैं, सत्संग करते हैं, सत् का संग, ध्यान करते हैं, चिंतन करते हैं, स्वाध्याय करते हैं, यज्ञ-हवन करते हैं तो मात्र यह सब ईश्वर की इच्छा से ही सम्भव है। मात्र ईश्वर-इच्छा से और कभी उसमें अपना अहम् लगा दिया

कि **मैं करता हूँ** तो उसका प्रतिफल बड़ा भयानक होता है। इसलिये प्रभु मुझे अपने नाम की बख्शीश दो। मुझे अपने पास किसी प्रकार से बिठाओ। जब आप कुछ भी देव-निमित्त करें तो रोते हुए करना है कि प्रभु बड़ी कृपा है, आप करवा रहे हैं, मेरी हैसियत ही क्या है? कभी अपने में अहम् नहीं लाना। विशेषकर जब आप ईश्वर-निमित्त पुरुषार्थ करें तो वहाँ कभी भूल से भी अहम् न आने दें कि मैं इतने बजे उठता हूँ, इतने घंटे ध्यान करता हूँ, इतने बजे आरती करता हूँ। महाकालेश्वर की इच्छा हो तो वह अगली सांस भी न लेने दे। एक छोटा सा कोई मानसिक तनाव आपके ध्यान को कोसों दूर कर देता है। उसके दरबार में पहले बैठकर रोइये, तूने मुझे अपने कदमों में बुलाया है। उसके बाद, उठने के बाद रोइये कि कितने मेहरबान हो तुम? वहाँ भी अहम् नहीं लाना।

संत की वाणी सुनते समय व सत्संग में अपना जगत व्यवहार भूल जाइये। भले ही नुकसान हो जाये कुछ, लेकिन उसमें निश्चित रूप से आपका हित होगा। लाभ हो न हो लेकिन हित होगा। कई बार जीवन में कुछ खो जाता है तो हित होता है और कई बार कुछ पाकर नुकसान हो जाता है। प्रभु बड़े कृपालु हैं। वह अपने ध्यान में, अपने सान्निध्य में बिठा लें कभी, जब उनकी विशेष कृपा हो जाये तो घड़ियाँ मत देखिए। कोई मिलने आने वाला हो तो बाद में मिल लीजिए और न मिलें तो क्या फर्क पड़ जायेगा? यह दिव्य कानून बता रहा हूँ। जब आपको संसार के मिथ्यात्व का आभास हो जाता है कि मैं अर्थ और धर्म के लिये अपने इष्ट के पास ईश्वर को मानकर बैठा हूँ और बड़ा गिड़गिड़ाया हूँ, बहुत कुछ किया है मैंने, लेकिन मुझे क्या मिला? अगर और भी कुछ मिल जाता तो क्या फर्क पड़ जाता। उसको कहा है **मिथ्यात्व का आभास**। लेकिन यहाँ आते-आते एक चस्का पड़ जाता है, बहुत सूक्ष्म विश्लेषण कर रहा हूँ, मिथ्यात्व का आभास हो जाता है और एक चस्का पड़ जाता है, वह यह कि अपने यार के पास बैठने की आदत पड़ जाती है, बड़ा मज़ा आता है। एक मनोविज्ञान बता रहा हूँ उपासक का। रोज़ उठते-बैठते पहले संसार की चीज़ें माँगता रहा। अब

उसके पास बैठने से उसको एक अज्ञात आनन्द आने लगता है और वह अपने यार से जुड़ जाता है। उसको कहा है **योगी**। योगी मतलब जो जुड़ गया हो। अब उसके बाद तीसरी सीढ़ी शुरू होती है। उसको अपने यार की, अपनी इष्ट की कामना हो जाती है कि अब मैं तुम्हें मिलना चाहता हूं। तेरे बारे में जानना चाहता हूं। असत्य का, मिथ्यात्व का आभास होने के बाद इसका मुख मुड़ता है सत्य की ओर। यह बहुत आवश्यक है:–

''ऊँकार बिन्दु संयुक्तम् नित्यं ध्यायन्ति योगिनः,
कामदं, मोक्षदं चैव ऊँकाराय नमो नमः।''

ऊँकार ईश्वर का निराकार स्वरूप है। ईश्वर का ईश्वरत्व है जैसे व्यक्ति का व्यक्तित्त्व होता है, इस प्रकार ईश्वर का सम्पूर्ण ईश्वरत्व है **निराकार ऊँकार। कामदं, मोक्षदं**–यहाँ अर्थ का कोई जिक्र नहीं आया है। तीसरी सीढ़ी शुरू होती है **कामदं** से। अब पुरुषार्थ स्वार्थ के लिये नहीं होता, अब पुरुषार्थ, पुरुषार्थ के लिये होता है। **स्वार्थ परिवर्तित हो जाता है पुरुषार्थ में**। आप उसका सान्निध्य चाहते हैं, उसके बारे में जानना चाहते हैं, उसको जानना चाहते हैं, उससे मिलना चाहते हैं, जुड़ना चाहते हैं, लेकिन उसको स्वार्थ नहीं कहा, क्योंकि स्वार्थ के मिथ्यात्व का आभास आपने कर लिया पहली दो सीढ़ियों में।

अब उस परम पिता परमात्मा जिसको अभी यह साकार रूप में मान रहा था, वह उसके उस निराकार ब्रह्म-स्वरूप, ऊँकार-स्वरूप का दिग्दर्शन करना चाहता है। उसको कहा है **'काम'।** उसको ईश्वर के बारे में जानने की कामना उत्पन्न हो जाती है। यहाँ आकर उसको **सद्गुरु** मिल जाता है स्वतः ही। **तीसरी सीढ़ी की जब उसे उत्कंठा होती है, जनून पैदा होता है कि मैं तुम्हें जानना चाहता हूँ तो वहाँ पर आकर उसको सद्गुरु मिल जाता है। सद्गुरु का उसके जीवन में पदापर्ण हो जाता है। यह एक दिव्य अधिनियम है।** सद्गुरु ढूँढना नहीं पड़ता। सद्गुरु के लिये औपचारिकता है कि जब आपके हृदय में सद्शिष्य पैदा हो जाता है कि मुझे ईश्वर ही चाहिये, मुझे उसकी कामना है तो सद्गुरु उसके निराकार रूप का आभास करवा देते हैं।

ईश्वर के निराकार स्वरूप का समाधिस्थ होकर आभास करने से पहले एक शर्त है कि पहले हमें अपने निराकार स्वरूप का आभास होना अति आवश्यक है। जटिल विषय है। उसके बाद वह ईश्वर के ईश्वरत्व का आभास कर लेता है, असंख्य लोग हैं संसार में जो ईश्वर को असंख्य नामों और रूपों में मानते हैं। एक नाम एक रूप, एक नाम असंख्य रूप, एक रूप और असंख्य नाम, असंख्य नाम असंख्य रूप। ईश्वर एक ही है। वह अनुभव कब होगा? जब आपको ईश्वर के ईश्वरत्व का आभास हो जायेगा। उसके बाद उसका कोई नाम, कोई रूप रख लीजिये और आज संसार में जितनी लड़ाईयाँ हैं वह धर्मों-कर्मों पर हैं, नाम-रूप पर हैं। जब ईश्वर के ईश्वरत्व का आभास होता है उपासक को, साधक को, फिर उसकी लालसा और बढ़ जाती है। अब वह उसको जानना और पाना भी चाहता है।

तीसरी सीढ़ी में आकर उसको ईश्वर की कामना हुई, सद्गुरु मिला और उसने उसको ईश्वरत्व का आभास करवाया और ईश्वरत्व का आभास करने के बाद इतना लालायित हो गया कि वह ईश्वर को जानना चाहता है तो **चौथा सोपान** शुरू होता है जिसको कहा है **'मोक्ष'।** सद्गुरु उसको मोक्ष के द्वार पर लाकर छोड़ देता है कि जाओ प्रवेश कर जाओ। सद्गुरु का काम उसको मोक्ष के द्वार पर लाकर छोड़ देना है, तो वहाँ यह सद्शिष्य नहीं रहता और सद्गुरु सद्गुरु नहीं रहता, वह बन जाता है **मुमुक्षु।** जिज्ञासु से मुमुक्षु बन जाता है। **सच्चखण्ड** कहा है उसको गुरु महाराज ने। प्रतीक्षा-कक्ष है वह, जहाँ पर आपको अपने यार से मिलने के लिये इन्तज़ार करना पड़ता है। **सच्चखण्ड**— वहाँ सब कुछ देखा जाता है। अगर आप में साधना, सत्संग, जप, तप, दान, पुण्य, हवन, यज्ञ आदि का लेश मात्र भी अहम् है, तो सच्चखण्ड में प्रवेश नहीं मिलता। आपको वहाँ समर्पण का समर्पण करना पड़ता है। भूल जाइये आपने कभी साधना, उपासना की थी, यज्ञ-हवन किया था। आपको यह सब भूलना होगा। आपकी रूह से निकल जाये कि आपने कुछ किया भी था। जिस प्रकार मैंने उदाहरण दिया था कि **जब हमारे यहाँ** लड़के-लड़की की शादी होती है तो एक लम्बी सूची बनाते हैं मेहमानों की और बड़ी-बड़ी कृत्रिम बातें करते हैं कि

आपके बिना शादी नहीं हो सकती और फिर मिठाईयाँ बाँटते हैं, बड़ा कुछ करते हैं। उसके बाद जब शादी हो जाती है तो कोई बेचारा एक-आध घंटा ज़्यादा भी खड़ा हो जाये तो उससे पूछते हैं कि भाईसाहब आप क्यों खड़े हैं, कब जायेंगे आप? तो उस सच्चखण्ड के द्वार पर पहुँच कर यह जप, तप, साधना, हवन, यज्ञ, स्वाध्याय, सत्संग सब बाराती नज़र आने लगते हैं कि हटो! मेरा पीछा छोड़ो। मैंने कहा था कि पुरुषार्थ से शुरू होती है कहानी और पुरुषार्थ पर ही समाप्त होती है। **तप की पराकाष्ठा क्या है? जब आपको तप बेकार लगने लग जाये।** कि मैंने यह कसरत क्यों की? कभी व्रत रखा, कभी आसन में बैठा, कभी प्राणायाम, यह क्या है और किसलिये है? जिस वक्त आपको यह बेकार लगने लग जाये तो समझो आपका तप परिपक्व हो गया। उसके बाद भी किसी-किसी को ही इस सच्चखण्ड में प्रवेश मिलता है। पहले आपने स्वार्थवश अपने इष्ट का ध्यान किया नाम और रूप में और दो सीढ़ियां चढ़े अर्थ और धर्म। फिर सद्गुरु मिला, उसने आपको अपने निराकार का आभास करवाया कि देख! जिसको तू भिन्न-भिन्न नाम-रूपों में कह रहा है वह ईश्वर एक ही है, देख उसका ईश्वरत्व और उसके ईश्वरत्व की झलक मिलने के बाद यह दीवाना हो जाता है। उसको जानना चाहता है, उसका सान्निध्य चाहता है, उस कर्म को कहा है पुरुषार्थ। अब वह स्वार्थी नहीं रहता, वह परमार्थी बन जाता है। जैसा मैंने बताया था कि आसक्ति, महा आसक्ति बदल जाती है **भक्ति** में। राग, महाराग, वैराग बदल जाता है **अनुराग** में। वासना, महावासना बन जाती है **उपासना।** सत्य का आभास करने के लिये असत्य का अनुभव होना बहुत आवश्यक है। वहाँ कृपावश किसी-किसी को प्रभु की झलक मिल जाती है, जब वह सच्चखण्ड में प्रवेश करता है:—

''सोइ जानइ जेहि देहू जनाई, जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई।''

अन्ततः यह परमार्थ ही आपको अपने सच्चिदानन्द स्वरूप का दिग्दर्शन करवायेगा।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(11 अगस्त, 2002)

साकार-निराकार

आज के इस अति पावन, परम ऐश्वर्यवान उत्सव, शुभ दीपावली के शुभारम्भ के अवसर पर, इष्ट-प्रेरणा से एवं आप सब जिज्ञासुओं की आकांक्षा से बहुत गम्भीर विषय रखूँगा **'साकार-निराकार'**। आपकी अति एकाग्रता चाहता हूँ।

ईश्वर स्वयं में निराकार है और उसकी शक्ति का बाह्यप्रकटीकरण है यह समस्त दिग्दर्शित होती हुई **महामाया**। संसार में जो कुछ भी हम नाम-रूप में अपनी आँखों से देखते हैं, वह सब ईश्वर की माया है। यह सम्पूर्ण संसार महानाट्यशाला, अति दिव्य, अति दुर्लभ एवं अति सौंर्दयवती है। आकाशमण्डल, नक्षत्र, चन्द्रमा, सूर्य, जल, महासागर, वायु, नभचर, जलचर, थलचर, असंख्य सागर, असंख्य पर्वत-श्रंखलायें, असंख्य जीव- जन्तु सुन्दर वन, यह वसुन्धरा, यह पृथ्वी और पृथ्वी के सातों तल—ये सम्पूर्ण उस निराकार परमब्रह्म परमेश्वर की **साकार माया है,** जिसका मैं बार-बार वर्णन कर चुका हूँ। उस निराकार महाशक्ति परमानंद परमात्मा परमेश्वर की साकार सर्वोत्कृष्ट रचना है—**मानव-काया**। उसने पाँच-महाभूतों द्वारा पृथ्वी, जल, आकाश, वायु एवं अग्नि, जो स्वयं में निराकार हैं, इन साकार महातत्त्वों की मुट्ठी बनाई है **साकार मानव-देह**। यह अपने में एक बहुत बड़ा चमत्कार है। विषय चल रहा है साकार और निराकार का। एकाग्रता चाहूँगा आपकी।

जिस प्रकार कि एक तांबे की पतली तार है और बिजली का प्रवाह होता है, लेकिन वह विद्युत दिखाई नहीं देती। वह करंट प्रकट होता है विभिन्न उपकरणों को प्रकाशित व संचालित करके। जब बल्ब या ट्यूब में जाता है तो प्रकाश उत्पन्न करता है। वो ही करंट जब फ्रिज में जाता है तो

ठंडक से वस्तुओं को ठण्डा करता है और यही करंट जब वातानुकूलन संयन्त्र में जाता है तो ठंडी हवा देता है। हीटर में जाता है तो गर्म हवा देता है। **सारे विद्युत उपकरण उस अदृश्य विद्युत से ही क्रियान्वित होते हैं।** ज़रा विचार करिये, यदि आपके घर में बिजली की आपूर्ति बंद हो जाये तो वही उपकरण आपको सुख की जगह दुख देंगे, क्योंकि पैसा बहुत खर्च हुआ है।

हम मानव अपनी तथाकथित तीव्र बुद्धि से भ्रमित होकर संसार के सुखों को लेने के लिये सुख-साधनों की तरफ भागते हैं, उपकरणों की तरफ। बढ़िया से बढ़िया घर चाहिये, अच्छी से अच्छी गाड़ी चाहिये, पद चाहिये, धन चाहिये, सम्पदा चाहिये, वस्त्र चाहिये, एक से एक अच्छा स्वादिष्ट खाना चाहिये। जब से हम तथाकथित होश सम्भालते हैं आजीवन हमारी सम्पूर्ण मानवीय शक्तियाँ—दैहिक, दैविक, बौद्धिक इन उपकरणों को एकत्रित करने में लग जाती हैं, लेकिन उन वस्तुओं को एकत्रित करते-करते हमारे भीतर का वो दैदीप्यमान परमानंद ईश्वरीय आनन्दमय सच्चिदानंद-स्वरूप, आच्छादित हो जाता है। जब हम बाहर की वस्तुओं की ओर भागते हैं तो वस्तुएँ एकत्रित कर लेते हैं हम छल से, बल से, धन-बल से, जन-बल से, बहुत प्रकार के कपट करके, तथाकथित परिश्रम करके। हम अपने आपको बड़ा मेहनती समझते हैं कि हमने मेहनत करके इतना धन एकत्रित कर लिया। बहुत कुछ इकट्ठा करते हैं हम, लेकिन अन्ततः विक्षिप्त हो जाते हैं। वे उपकरण, वे वस्तुएँ, जो हमने एकत्रित की हैं सुख-सुविधा के लिये, साधन इकट्ठे किये हैं वे साधन हमको सुख इसलिये नहीं दे पाते क्योंकि हमारे भीतर का आनन्द आच्छादित हो जाता है। **जिस प्रकार कि विद्युत-धारा आवश्यक है उसी प्रकार हमारे भीतर का आनन्द-स्वरूप जाग्रत होना अति आवश्यक है।** उदाहरण के लिये यदि आपके सामने खाने के स्वादिष्ट व्यंजन पड़े हों लेकिन आपके अन्दर का आनन्द समाप्त हो जाये किसी भी कारण से, तो वह खाना देखकर आपको उल्टी आने की सम्भावना हो जायेगी। इसी प्रकार आप कितना अच्छा संगीत सुन रहे हों, लेकिन किसी भी कारण से यदि आपके अन्दर का आनन्द लुप्त हो जाये,

आप अन्दर से विक्षिप्त हों, भयभीत हों, त्रसित हों तो आप इस संगीत का सुख भी नहीं ले पायेंगे। अर्थात् हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ सुख लेती हैं हमारे आनन्द-स्वरूप से। तो साधनों के लिये हम बाहर भागते हैं और साधनों की दौड़ में हम अपने भीतर के आनन्द को लुप्त कर देते हैं, उससे वंचित हो जाते हैं। हम विक्षिप्त हो जाते हैं और उस विक्षिप्तता में हम अत्यधिक धन और वस्तुओं को एकत्रित करने के बाद भी रात को दारू पीकर सोते हैं। क्योंकि हमारी देह हमसे घृणा करने लगती है। सर्वप्रथम अगर व्यक्ति का सम्बन्ध खराब होता है तो उसकी देह से होता है। लोग कहते हैं उसकी बीबी से नहीं बनती, बच्चों से नहीं बनती, इसका मतलब है कि उसकी अपनी देह से नहीं बनती:–

''रूह और जिस्म का रिश्ता भी क्या रिश्ता है,
उम्र भर साथ रहे मगर तआरुफ़ न हुआ।''

हम तो अपनी रूह से भी सारी उम्र परिचय नहीं कर पाते। वस्तुओं की दौड़ में हम अपने भीतरी स्वरूप से हट जाते हैं और इसी प्रकार हम जीवन समाप्त करके आसक्तियों को लिये, अकाल मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। इन साधनों की बाह्य दौड़ से हटकर, साधना द्वारा या उपासना द्वारा यदि हम अन्तःदौड़ करके अपने उस परमानंद-स्वरूप, सच्चिदानंद-स्वरूप का दर्शन कर लें, उसका सान्निध्य प्राप्त कर लें तो यहाँ पर एक दिव्य अधिनियम लागू होता है। जब हम अपने आनन्द-स्वरूप में प्रवेश कर जाते हैं, उसका स्पर्श पा लेते हैं तो सारे संसार की सुख-सुविधा की वस्तुएँ, सारे साधन स्वतः हमारे चरणों में चले आते हैं। यद्यपि संसार की वस्तुएँ हमारे चरणों में आ जाती हैं लेकिन उन वस्तुओं के भोग की इच्छा नहीं रहती। क्योंकि आप इतने परमानंद-स्वरूप में चले जाते हैं कि आपको उन वस्तुओं द्वारा लिये हुए सुख बहुत छोटे लगने लगते हैं। जब हम उन वस्तुओं के पीछे भाग रहे थे उस समय हमारा आनन्द-स्वरूप आच्छादित होने के कारण हम उनका सुख नहीं पा सकते थे। फिर यह देह प्रभु ने काहे के लिये दी है, यह संसार की वस्तुएँ प्रभु ने काहे के लिये दी हैं, क्या कोई ऐसा उपाय हो सकता है कि

हम उस ईश्वर के सान्निध्य में भी रहें और संसार की वस्तुओं का भी भोग कर सकें? सुख-सुविधाओं का आनन्द भी ले सकें। इस प्रश्न पर विचार किया होगा हमारे मनीषियों ने लाखों वर्ष पहले, कि प्रभु ने हमें यह चमत्कारिक देह दी है। पृथ्वी, जल, वायु, आकाश और अग्नि इन निराकार तत्त्वों से निर्मित, यह महासाकार देह जो पूर्णतया वातानुकूलित एवं स्वचलित है और ईश्वर द्वारा रचित इस संसार महानाट्यशाला के समस्त भोगों के लिये और उस ईश्वर की चमत्कारिक माया का आनन्द लेने के लिये दी है। तो किस प्रकार हम उन सुखों का और आनन्द का समन्वय कर सकते हैं, इसके लिये हमारे मनीषियों ने आज से लाखों वर्ष पहले विचार अवश्य किया होगा। उसका परिणाम निकला–**ईश्वर के उस निराकार स्वरूप की साकार उपासना।**

साकार, साधना नहीं उपासना है और निराकार की साधना है। ईश्वर को भी आप नाम और रूप में मान लीजिये। उस निराकार को साकार में मान लीजिये, क्योंकि हम साकार में संसार के पदार्थों का भोग करना चाहते है। लोग कहते हैं हिन्दुओं के भगवान बहुत हैं, ऐसा नहीं है। भगवान एक ही है। उस ईश्वर का निराकार-स्वरूप एक ही है। ईश्वर एक है। उस एक ईश्वर को आप अपनी पसंद के नाम और रूप में मानें, जो आप चाहते हैं। उसके बाद उसके साथ एक सम्बन्ध पैदा कर लीजिये, क्योंकि हम सब में एक जन्मजात प्रतिभा है कि हम तुरन्त मान्यता की मोहर लगा देते हैं। तो इस प्रकार उस प्रतिभा का सदुपयोग हो गया। सांसारिक सम्बन्धों में लड़के-लड़की का विवाह होता है, फेरे होते हैं और उसके बाद उस अनजान लड़की को मान लिया धर्मपत्नी। उसके बाद सन्तान मान्यता है। किसीने अपने आपको पैदा होते नहीं देखा। आपकी माँ भी आपकी मान्यता है। आपका पिता भी आपकी मान्यता है। पति, पत्नी, भाई-बन्धु सब मान्यता है। इस प्रकार संसार के जितने भी हमारे सम्बन्ध हैं, हमारी मान्यताओं पर आधारित हैं। जब हम सांसारिक मान्यताओं को मान लेते हैं और उनमें फँस जाते हैं तो हमारा जीवन सुखों-दुखों से घिर जाता है और हम बँध जाते हैं।

वह ईश्वर जिसे आपने नाम-रूप में माना है, उसके साथ एक सम्बन्ध भी पैदा कर लीजिये। वो भी आपकी पसंद है और सम्बन्ध पैदा करने के बाद जब आपका उसके साथ उठना-बैठना शुरू हो जाये, तो किसी-किसी पर नज़रे इनायत होती हैः–

''सबकी साकी पे नज़र हो, यह ज़रूरी है मगर,
सबपे साकी की नज़र हो यह ज़रूरी तो नहीं।''

जब **वह** मान लेता है आपको, उसके बाद क्या होता है वह कुछ भी बयान नहीं किया जा सकता। वह पूर्णतया गुप्त एवं व्यक्तिगत है। जब वह निराकार, जिसको आपने साकार माना है और आपको उससे इश्क हो गया है, उसकी एक झलक आपको झल्ला कर देती है और जिसको वो झलक झल्ला नहीं करती तो समझिए उसको झलक मिली ही नहीं।

ईश्वर इन पँच-महाभूतों द्वारा पूरे ब्रह्माण्ड का निर्माण, पालन एवं संहार करता है। जब हमारी देह समाप्त होती है तो इन्हीं पंच-महाभूतों में विलीन हो जाती है। मैं पहले भी बता चुका हूँ कि इन पँच-महाभूतों का प्रतिनिधित्व देह में क्या है। पृथ्वी का **नाक** में **'गन्ध',** आकाश का **कान** में **'शब्द'**, वायु का **त्वचा** में **'स्पर्श'**, अग्नि का **नेत्र** में **तेज**, दृष्टि और जल का **जीभ** में **'रस'**। इन पंच-महाभूतों का प्रतिनिधित्व मात्र मानव के चेहरे पर ही पाया जाता है। इसलिये हम जब किसी का दूसरे से परिचय करवाते हैं, तो उसके पैरों से नहीं बल्कि उसके चेहरे से करवाते हैं।

जब हम साकार रूप में उपासना करते हैं तो हम ईश्वर के पाँचों महाभूतों को प्रेम करते हैं। हमारे नेत्र खुले होते हैं, मुख से हम कुछ बोलते हैं, कानों से हम कीर्तन सुनते हैं। **जब हम निराकार में साधना करते हैं तो पंच-महाभूतों का निरोध कर देते हैं।** आँखें, मुँह व कान बन्द कर देते हैं। बहुत छोटे-छोटे भेद बता रहा हूँ। **साधना भी पंच-महाभूतों द्वारा होती है, लेकिन इनको शान्त करना पड़ता है। उपासना में इनको प्रदीप्त करना पड़ता है।** अग्नि का पूजन आप अपने घर में इस दीवाली के पर्व पर आज से प्रारम्भ करिये और रोज़ करिये। आपके घर में ऐश्वर्य और लक्ष्मी की वर्षा

निस्सन्देह होने लगेगी। इस वर्ष आप दीवाली के पावन पर्व को हवन से मनायेंगे, तो उसका प्रभाव पूरे वर्ष देख लेना। रोग-दोष सब नष्ट हो जायेंगे। ईश्वर के निराकार स्वरूप का, उसी इष्ट के निराकार स्वरूप का आभास करवाता है आपका सदगुरु और उसके बाद आपको सच्चखंड के द्वार पर छोड़ देता है। आपने धर्म और अर्थ में अपने इष्ट को मात्र कामनाओं की पूर्ति के लिये **'धर्म** और **'अर्थ'** की दो सीढ़ियों पर चढ़ने के लिये इस्तेमाल किया और उसके बाद जब उसके बारे में जानने की इच्छा हुई तो आपको सद्‌गुरु मिला। उसने आपको उसके निराकार स्वरूप का आभास करवाया और उसके बाद आप अपने इष्ट को जानना चाहते हैं, इष्ट के बारे में नहीं—इष्ट को जानना चाहते हैं। इष्ट के बारे में जानना अलग है और इष्ट को जानना अलग। सद्‌गुरु आपको सच्चखंड के द्वार पर छोड़ देता है और स्वयं सद्‌गुरु आपके जीवन से हट जाता है; जब आप इष्ट को जानना चाहते हैं। यह साकार-निराकार का भेद आप लोगों की सद्‌प्रेरणा एवं इष्टकृपा से, संक्षेप में आपके सम्मुख रखा। तो आप ईश्वर को ध्याइये साकार रूप में उसका ध्यान बहुत आसान हो जायेगा, क्योंकि आपको नाम-रूप में मान्यता देने की और विचरने की आदत है, और जब ईश्वर के बारे में जानने की इच्छा हो जायेगी जब सांसारिक पदार्थों से आपका मन भर जायेगा तो निस्सन्देह आपको सद्‌गुरु मिलेगा जो आपको आपके निराकार का आभास करवायेगा और उसके बाद आप ईश्वर के निराकार का आभास करने के लिये उचित अधिकारी हो जायेंगे:—

''ऊंकाराय बिन्दु संयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः
कामदं मोक्षदं चैव ऊंकाराय नमो नमः।''

ऊंकार प्रभु का निराकार स्वरूप है। योगी जो पहले से इष्ट से जुड़ चुके हैं वो **'ऊंकार'** स्वरूप का ध्यान करते हैं। ***'कामदं मोक्षदं'*** यह ऊंकार जो है वो आपकी ईश्वर की कामना के बारे में संकेत है और अन्ततः यह आपको मोक्ष के द्वार पर ले जाता है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय।''

(27 अक्टूबर, 2002)

इष्ट

आज इष्ट-कृपा से, इष्टादेश से और आप समस्त सद्गृहस्थों एवं जिज्ञासुओं की प्रेरणा से बहुत विचित्र विषय आपके सम्मुख रखूँगा, विषय का नाम है–**'इष्ट'**। इष्ट क्या है? आज तक मैं, कई बार इस व्यास-गद्दी से शास्त्र द्वारा परिभाषित ईश्वर की परिभाषा को आपके सम्मुख रखता रहा हूँ कि जो सच्चिदानन्द है, धर्मातीत है, कर्मातीत है, मायातीत है, लिंगातीत है, देशातीत है, कालातीत है, जो अजर है, अमर है, अनादि है, अनन्त है और जो परम स्थिर है ***''न कित आये भयो न कित जाये भयो''*** ऐसी परम सत्ता का नाम है **'ईश्वर'।** सारा जगत जो दृश्यमान है, जो दिखाई देता है वो उस निराकार ईश्वर की माया है, जो विभिन्न उपकरण रूपी नाम-रूपों में सर्वत्र दिखाई देती है, इस संसार महानाट्यशाला में।

जिस प्रकार कि विद्युत के विभिन्न उपकरण होते हैं–कहीं वह बल्ब बनकर जलती है, ट्यूब बनकर जलती है, कहीं वह फ्रिज बनकर ठंडा करती है वस्तुओं को, कहीं वातानुकूलन सयंत्र बनकर वायु को ठंडा करती है, कहीं हीटर बनकर गर्म करती है, इत्यादि-इत्यादि। इन समस्त उपकरणों के पीछे एक अदृश्य शक्ति होती है जिसका नाम है–**विद्युत-धारा।** जो बहती है एक तार में और अदृश्य होती है, जो दिखाई नहीं देती। **ब्रह्म निराकार व अदृश्य है।** लेकिन उसी महाशक्ति के कारण उसी प्रकार सारा विश्व दैदीप्यमान होता है, जिस प्रकार कि विद्युत-धारा के कारण समस्त उपकरण कार्य करते हैं, अन्यथा उनका कोई अर्थ नहीं है। उसी प्रकार वह सर्वशक्तिमान, सच्चिदानंद ईश्वर जो स्वयं में अदृश्य है, दिखाई नहीं देता

उसकी शक्ति का प्रकटीकरण है कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों में, विभिन्न नाम-रूपों में, इस विस्तृत आकाश के विभिन्न ग्रहों में, वायुमंडल में, जलमंडल में, पृथ्वीमंडल में, इत्यादि-इत्यादि। यह सम्पूर्ण विश्व परमपिता परमात्मा, जोकि स्वयं में अदृश्य है, जो स्वयं में निराकार है, उसकी एक चमत्कारिक साकार संरचना है। उसके पाँच महाभूत रूपी पाँच प्रतिनिधि—**पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश** जो स्वयं में निराकार हैं, उन पाँचों से निर्मित यह **मानव-देह** जो स्वयं में साकार चमत्कार है। मानव जो उस सच्चिदानंद की परमोत्कृष्ट रचना है, वही सबसे ज़्यादा दुखी, भयभीत, रोगी, दोषी, पुण्यी, पापी, त्रसित, विक्षिप्त है, यह भी अपने में एक बहुत बड़ा चमत्कार है। हमारे मनीषियों ने, ऋषियों ने हिमालय की कन्दराओं में बैठकर इसका गहन अध्ययन किया कि किस प्रकार मानव को कष्टों से मुक्त किया जाय? बहुत कार्य किया उन्होंने इस दिशा में।

जैसाकि मैं निरन्तर कहता आया हूँ, कि सबसे बड़ा दोष जो **मानव-देह** को पाकर हमसे हुआ, जो बहुत बड़ी भूल हुई, उसे शास्त्रीय दृष्टि से **'देहाध्यास और देहाधिपत्य'** कहा जाता है। इनका कोई अंग्रेजी अनुवाद नहीं है, क्योंकि जितनी आध्यात्मिक शब्दावली है उसका भारतीय भाषाओं के अतिरिक्त अन्य किसी विदेशी भाषा में कोई भी अनुवाद नहीं है। उसका कारण है कि हमारे पास, मात्र हमारे पास एक परम धरोहर है, जिसके कारण **भारत आज भी जगद्‌गुरु है, भारत जगद्‌गुरु था और भारत ही जगद्‌गुरु रहेगा**—वह धरोहर है हमारा अध्यात्म, हमारा आत्म-ज्ञान। यह दूसरी बात है कि हम इसको भूल से गये हैं। तो कष्टों का निवारण करने के लिये आज से हज़ारों-लाखों वर्ष पहले हमारे ऋषियों ने विचार किया। जो ईश्वर की परमोत्कृष्ट संरचना हमको प्राप्त हुई और किसी जीवधारी को प्रभु ने नहीं दी, वह थी—**मानव-देह**। उसको पाकर हम दुःखी क्यों हुए, भयभीत क्यों हुए, जन्म और मृत्यु के चक्कर में क्यों फँसे, बार-बार जन्म हम क्यों लेते हैं? उसका कारण ढूँढ़ा। वह कारण था **'देहाध्यास'**। देह के प्राप्त होने के बाद होश संभालते ही तथाकथित बुद्धि का विकास होते ही हमने देह पर

अनधिकृत कब्ज़ा कर लिया कि मैं देह हूँ। जिस देह के न जन्म का हमको ज्ञान है, न मृत्यु का ज्ञान है, न अगले क्षण का ज्ञान है, न जीवन में घटनेवाली विशिष्ट घटनाओं का कोई ज्ञान है, कि वो घटनायें क्यों घटीं, घट गई घटनायें और घटेंगी। मेरी अमुक आर्थिक स्थिति और सामाजिक स्थिति क्यों है, मेरा पारिवारिक स्तर ऐसा क्यों है और कल क्या होगा, कल क्या हुआ? कुछ भी मेरे हाथ में नहीं है। जिस देह के एक श्वास का भी हमको भरोसा नहीं है, उस देह पर हमने ग़ैरकानूनी अधिकार कर लिया। **''यह देह मेरी है'' और ''मैं देह हूँ''**। वहाँ से सारा सिलसिला शुरू हुआ, हमारे दुःखों का; कारण कि हम उस सच्चिदानंद ईश्वर के विमुख हो गये।

यह देह दी थी प्रभु ने हमको उसके सम्मुख होने के लिये और इस देह पर अधिकार करते ही हम उसके विमुख हो गये। ईश्वर के विमुख हुए लेकिन ईश्वर हमारे विमुख नहीं हुआ। वहीं से सिलसिला शुरू हुआ हमारे अहम् का। जैसे ही बुद्धि का विकास हुआ हम सुख-साधनों की ओर भागने लगे। वस्तुओं को एकत्रित करने लगे, धन को, सम्पदा को और नाना प्रकार की सुख-सुविधा की वस्तुओं को। जैसाकि मैंने विद्युत का उदाहरण दिया है, हम उपकरणों की ओर भागे और उन उपकरणों को हमने प्राप्त किया।

झोंक दिया हमने अपनी समस्त शक्तियों को—शारीरिक, बौद्धिक, मानसिक। सुख-साधनों को एकत्रित कर लिया, उपकरण तो हमने एकत्रित कर लिये, लेकिन हमारी विद्युत-धारा का सम्बन्ध टूट गया। फ्रिज ले लिया, हीटर ले लिया, सब कुछ ले लिया लेकिन हमारी विद्युत-क्षमता कम हो गई। हम बाहर भागे वस्तुओं की ओर और उस भाग-दौड़ में हमने अपने भीतर के आनन्द को आच्छादित कर दिया। वस्तुएँ प्राप्त हुईं लेकिन प्राप्त होने के बाद उनका निर्धारित भोग, जो हम आशा कर रहे थे, वो हमको प्राप्त नहीं हुआ। हम विक्षिप्त हो गये। जानने की कोशिश नहीं की कि क्षमता कम क्यों हो गई है। मैं वस्तुओं को एकत्रित कर चुका हूँ। धन है, सम्पदा है, सब कुछ है, लेकिन मेरी खुशी क्यों खो गई है। नींद क्यों नहीं आती? बात इष्ट पर चल रही है। इष्ट का दृष्टिकोण कहाँ से शुरू हुआ? बहुत संक्षिप्त कर रहा

हूँ अपने उन प्रवचनों को, जो मैं पहले सब कुछ कह चुका हूँ। वस्तुएँ प्राप्त हुईं उनका भोग नहीं मिला जो भोग हम चाहते थे, क्योंकि हमारा भीतर का आनन्द-स्वरूप लुप्त सा हो गया। तो उस विक्षेप में हमने वस्तुओं को और एकत्र करना शुरू किया और एक दिन हम शमशान पहुँच गये। राम नाम सत्त है ! कि चल बसे, हाँ ! बड़े मकान बनाये थे, बेचारे उनका भोग ही नहीं कर सके। बड़ा सोना-चाँदी, ज़ेवरात इकट्ठे किये। तो एक दिन अन्त आता है। जिस प्रभु ने हमको देह दी है उस देह की एक अवधि है, वह ले जाता है इसको। उन आसक्तियों को लेकर पुनर्जन्म होता है और फिर वही सिलसिला शुरू होता है।

अब किसी न किसी जन्म में कोई महापुरुष मिलता है, कोई संत मिलता है इसको, जो उसे अवगत करवाता है कि ऐ मूर्ख, तू अपने आनन्द से परे होकर वस्तुओं को एकत्रित कर रहा है, वस्तुओं का भोग कैसे करेगा? कि महाराज क्या करूँ? कि अपने आनन्द-स्वरूप की ओर मुड़। अपनी भाग-दौड़ अन्तर्मुखी कर। अन्तःमुखी भाग-दौड़ हुई—ध्यान किया, समाधि की, साधना की और कभी न कभी प्रभु-कृपा से उसको भीतर के आनन्द-स्वरूप का आभास हुआ। उसे जब आनन्द-स्वरूप का स्पर्श मिलता है, सान्निध्य मिलता है तो वहाँ एक घटना होती है, कि जिनके लिये यह भाग रहा था बाहर, सुख-सुविधाओं के लिये, वो सुख-सुविधायें इसके चरणों में खुद आने लगीं। जब हमारी दौड़ भीतर की ओर होती है, जब हम अपने आनन्द-स्वरूप की ओर प्रेरित होते हैं, बैठते हैं, स्थिर होते हैं, साधना करते हैं, तो संसार के समस्त सुख-भोग जिनके लिये पहले हम भाग रहे थे, अब वो हमारे पीछे भागने लगते हैं। चरणों में वस्तुएँ आ गईं, लेकिन अब उनको छूने की इच्छा नहीं हुई, क्योंकि हम अपने आनन्द-स्वरूप में स्थिर हो गये।

तो प्रश्न यह उठता है कि जब हम उन सुख-सुविधाओं की वस्तुओं के पीछे भाग रहे थे, तब वस्तुएँ मिलीं लेकिन भोग नहीं मिला। क्योंकि हम अपने आनन्द से परे हट गये थे और जब आनन्द की ओर प्रेरित हुए तो वस्तुएँ आईं फिर भी भोग नहीं मिला, क्योंकि अब उनके भोग की इच्छा ही नहीं रही। हम

संसार में जीना चाहते हैं। हम देह का, देह के काल का, अवधि का, समस्त जगत का भोग भी करना चाहते है, उसके लिये क्या उपाय करें? तो मनीषियों ने यहाँ एक बहुत बड़ा अन्वेषण किया, वह था **'साकार-उपासना'।** क्यों न उस निराकार परमब्रह्म परमेश्वर को एक साकार नाम और रूप दे दिया जाय? यहाँ से शुरुआत हुई **साकार-उपासना** की और उस **साकार-ब्रह्म** की जो पूर्णतया प्रतिनिधि है उस निराकार ब्रह्म का, जिसे भगवान कहते हैं कि श्रीकृष्ण भगवान, श्रीराम भगवान। यह मान्यता व्यक्तिगत है। निराकार की मान्यता व्यक्तिगत नहीं है। हम ईश्वर को मानें अथवा न मानें, वो निराकार महाशक्ति है ही। हमारी मान्यताओं का उस पर कोई असर नहीं पड़ता। आप उस निराकार को साकार रूप देना चाहते हैं, वो आपकी व्यक्तिगत मान्यता मात्र है। उस निराकार को साकार-रूप में, किसी नाम-रूप में मानना चाहते हैं ताकि हम उस ईश्वर के साथ, उस परमब्रह्म परमात्मा के साथ जब चाहें सम्पर्क कर सकें, बातचीत कर सकें, उसका सहारा ले सकें, उसके पास बैठ सकें, उसके सामने अपना दिल खोल सकें व अपना दुःख रो सकें। लेकिन एक बात आवश्यक है कि आप किसी भी नाम-रूप को अपना इष्ट मान लीजिये, उस नाम-रूप में छः ईश्वरीय गुणों को आरोपित करना परम आवश्यक है। वे गुण हैं—**महा सौन्दर्यवान, महाज्ञानवान, महासशक्त, महाऐश्वर्यवान, महाख्यातिवान और अन्ततः महात्यागवान।** लोग कहते हैं हिन्दुओं के भगवान बहुत हैं, ऐसा नहीं है। भगवान एक ही है। ईश्वर एक ही है। वो निराकार सत्ता एक ही है, लेकिन भूल से हमने देह को अपना स्वरूप मान लिया और मिथ्या जगत निर्मित हो गया। उस मिथ्या जगत में हम फँस गये। उस मिथ्यात्व से बाहर आने के लिए मनीषियों ने **साकार-उपासना** का अन्वेषण किया। उस साकार स्वरूप में जब आप ईश्वर को मानते हैं, उसमें छः ईश्वरीय गुणों का आरोपण करना परमावश्यक है।

हमारे दिन-प्रतिदिन के जीवन में विशेषकर गृहस्थ में, कई प्रकार के कष्ट, कई प्रकार के दुख, कई प्रकार की बातें होती हैं, जो कि हम किसी न

किसी के सामने रखना चाहते हैं। कष्टों का निवारण चाहते हैं। तो सर्वप्रथम उपासना शुरू हुई ईश्वर की, अपनी दिन-प्रतिदिन की मुश्किलों के निवारण के लिये। यही नहीं हमने उन नाम-रूपों के साथ अपना उसी प्रकार सम्बन्ध भी बनाया, जैसाकि हमने संसार के नाम-रूपों के साथ बनाया है। यह सम्पूर्ण विश्व, मात्र हमारी मान्यता पर आधारित है। आप कभी विचार करके देखें जिसको हम अपनी माँ कहते हैं, वह भी हमारी मान्यता है क्योंकि किसी ने भी अपना जन्म होते नहीं देखा। हमारा पिता हमारी मान्यता है और हमारे समस्त सगे-सम्बन्धी हमारी मान्यता पर आधारित हैं। लड़के-लड़की का विवाह होता है, एक अनजान लड़का और अनजान लड़की एक-दूसरे के पति-पत्नी बन जाते हैं, यह हमारी मान्यता है। कोई भी मान्यता जो आज हमको सुख दे रही है, वह कभी न कभी हमको दुःख अवश्य देगी। जब हम दुःखी हो जाते हैं, जब हम थक जाते हैं, धन कमाने से और अन्य वस्तुओं से, तो हम विश्राम करना चाहते हैं। हम सोना चाहते हैं, समाधिस्थ होना चाहते हैं। आप मुझसे सहमत होंगे कि जब-जब हम विश्राम चाहते हैं, उस समय हम अपने नाम-रूप से परे हट जाते हैं। उदाहरण के लिये रोज़ हम सोते हैं और **जब हम सोते हैं तो हम होते हैं, लेकिन हम अपने नाम और रूप में नहीं होते।** उस समय यदि हमें कोई उठाये और हमारे नाम और रूप से अवगत करा दे, तो हम कितने दुःखी हो जाते हैं। जैसाकि मैं उदाहरण दे चुका हूँ कि जब कोई स्त्री किसी उत्सव में जाती है तो श्रृंगार करके व आभूषण पहन कर जाती है और जब घर आकर शयनकक्ष में सोने के लिये जाती है तो अपने आभूषणों को उतार देती है। अगर कोई आभूषण पहनकर सो जाए तो नींद अच्छी नहीं आएगी। **इसी प्रकार यह नामरूप, मात्र हमारा एक आभूषण है** जोकि सोते समय हमें तंग करता है, तो सोते समय उसे उतारना पड़ता है और यदि यह न उतरे तो रात भर नींद नहीं आती। सपने आते रहते हैं। लोग उसके लिये दारू पीते हैं, नींद की गोलियाँ खाते हैं, ताकि यह नाम-रूप का आभूषण उतर जाय, यह उपाधि व्याधि न बने। इसलिये जब-जब हम विश्राम करना चाहते हैं जीवन-काल में, हम अपने

नाम और रूप को उतारना चाहते हैं। हम कहाँ फँसे? अपनी मान्यताओं के संसार में। कभी देह से दुःख होता है, कभी संतान से होता है, कभी स्त्री से होता है, कभी पुरुष से होता है, कभी हमें धन से दुःख होता है, कभी पद से दुःख होता है। ये सब वस्तुएँ जिन से हम चिपकते हैं, ये कभी न कभी हमें दुःख अवश्य देती हैं। तो एक ऐसा नाम-रूप क्यों न मान लें जोकि परम सुखद है, सच्चिदानंद है, अजर है, अमर है, जो सदा वैसा का वैसा ही रहता है और जो कभी नष्ट नहीं होता।

पुरुषार्थ शुरू होता है **साधना और उपासना से**। दो सीढ़ियाँ चढ़ते हैं हम **पुरुषार्थ** की। मैंने चार तीर्थ बताये थे **'अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष'।** तो अक्सर संसारी लोग ईश्वर को साकार रूप में मानकर उसके साथ बैठना, धूप-बत्ती करना, नेवैद्य चढ़ाना, साधना करना आदि क्रियाएँ करते हैं, अपने हृदय से। अपनी मान्यताओं के अनुसार उसको रिझाने के लिये बहुत कुछ करते हैं। इस प्रकार हमारे पुरुषार्थ के चार तीर्थों में से **दो तीर्थों तक हमारी समस्त उपासना और साधना सकाम होती है।** किसी न किसी कामनावश होती है। यहाँ पर हम अपने इष्ट को अपनी कामनाओं की पूर्ति करने के लिए प्रयोग में लाते हैं। परन्तु जब जन्म-जन्मान्तरों तक हमारी इच्छाओं की पूर्ति ही नहीं होती, आप अनुभव कर चुके होंगे कि जब एक इच्छा समाप्त होती है तो दूसरी इच्छा खड़ी हो जाती है; मृत्यु तक हमारी इच्छायें समाप्त नहीं होतीं। तो इच्छाओं से हम खिन्न हो जाते हैं, दुःखी हो जाते हैं। अन्ततः कभी न कभी, किसी न किसी जन्म में, किसी महापुरुष के सत्संग से, माता-पिता की कृपा से एक परिवर्तन आता है, कि अरे मेरी इच्छायें तो पूरी होती ही नहीं, तो क्यों न मैं इच्छा पैदा करने वाले मन को ही ईश्वर के चरणों में समर्पित कर दूँ! इच्छा कहाँ से उठती है? आपके **मानव-मन** से। तो अन्ततः कोई महापुरुष अपने मन को ईश्वर के चरणों में, ईश्वर के मन के सम्मुख समर्पित कर देता है **''त्वदीयं वस्तुं प्रभु तुभ्यमेव समर्पये''** कि प्रभु यह मन आप ही संभालिये, इस मन ने मुझे जन्म-जन्मान्तरों तक परेशान किया है—असली विषय अब शुरू होता है। कृपया एकाग्र करिये।

मन का समर्पण हो जाता है ईश्वर के सम्मुख, अपने इष्ट के सम्मुख, जिसको आपने साकार-रूप में माना था। जब मन समर्पित होता है, अब यहां से बदलाव शुरू होता है। किसी भी इच्छा के चार आयाम हैं– **इच्छा, इच्छुक, इच्छापूरक और इच्छाफल**। एकाग्र करिये। हम जब प्रभु के आगे, अपने इष्ट के आगे अर्थ और धर्म तक प्रार्थना करते रहे तब तक हम सकाम उपासना कर रहे थे, प्रभु ! मेरी इच्छा पूरी करो। अब **पहला परिवर्तन** क्या आता है, जब मन समर्पित हो जाता है, कि प्रभु, मेरी इच्छा नहीं है। इच्छा तुम हो, इच्छुक भी तुम हो, मैं इच्छुक भी नहीं हूँ, इच्छापूरक भी तुम हो, यदि तुम्हारी इच्छा हो तो इच्छा पूरी कर दो। यदि यह मेरा हित हो और हित का अर्थ उपासक के लिये मात्र इतना होता है कि तेरे और मेरे बीच में इसका फल ना आए। कभी मुझे ऐसा कुछ मत दे देना कि तेरे और मेरे बीच में बाधा पड़ जाए। इसलिये हे प्रभु ! **इच्छा, इच्छुक, इच्छापूरक और इच्छाफल आप हैं।** मन समर्पित होते ही आपकी इच्छा, इच्छुक, इच्छापूरक एवं इच्छाफल, आपका इष्ट ही हो जाता है।

दूसरा परिवर्तन होता है कि प्रभु ! जो-जो कर्म मेरे द्वारा हो रहा है इसके कारण भी तुम हो, इसके कर्त्ता भी तुम हो, स्वयं कर्म भी तुम हो और कर्म का फल भी तुम हो। और क्या होता है? किसी कर्म द्वारा प्राप्त जो हमारी उपलब्धियाँ हैं, प्राप्तियाँ हैं–हमारा बल, बुद्धि, विद्या, समर्थ, शक्ति, धन-बल, हमारी सम्पदा का बल आदि समस्त ईश्वर के चरणों में स्वतः ही समर्पित हो जाता है कि हे प्रभु ! मुझे बल, बुद्धि-विद्याहीन, धनहीन, समर्थहीन, शक्तिहीन, सम्पदाहीन कर दो। अपनी गोद में बिठा लो मुझे। तुम्हारे पास सारे विश्व की, करोड़ों ब्रह्मांडों की सम्पदा है–अरे, मुझे अपनी गोद में बिठाओ, मुझे धन का क्या करना है। अपनी बल, बुद्धि, विद्या, समर्थ, शक्ति और अपनी निधियों से मेरा पालन करो। यह **तीसरा परिवर्तन** शुरू हो जाता है। मन के समर्पित होते ही आपकी इच्छा के चारों आयाम ईश्वर के चरणों में समर्पित हो जाते हैं। जिस कर्म पर आपने अधिकार किया था, कि मैं कर्मठ हूँ आप कर्म के समस्त आयामों को ईश्वर के चरणों में समर्पित

कर देते हैं। जो-जो आपकी प्राप्तियाँ होती हैं वो भी आप ईश्वर के चरणों में समर्पित कर देते हैं। इस अवस्था में आपकी **समस्त वासनाएँ, सांसारिक एवं दैहिक, आपकी उपासना बन जाती हैं। सांसारिक समस्त आसक्तियाँ आपकी भक्ति में परिणत हो जाती हैं।** भक्ति तब होती है, जब आपकी सांसारिक वासनायें और सांसारिक कामनायें समाप्त हो जायें। यदि सांसारिक कामनायें हैं तो आप भक्ति नहीं कर सकते। आसक्ति, भक्ति में और वासना, उपासना में बदल जाती है। **संसार में जितना राग है आपका, वो ईश्वर के चरणों के अनुराग में बदल जाता है। अब आपको प्रभु की इच्छा होती है, तो उस स्थिति में जाकर आपका स्वार्थ, परमार्थ में बदल जाता है, यह अन्य परिवर्तन आता है।**

अब इस स्थिति में आकर प्रभु क्या करते हैं? आपके इष्ट के ऊपर एक दिव्य जिम्मेवारी आ जाती है। अभी तक जिसको आपने भगवान माना था; सांसारिक वासनाओं व कामनाओं की पूर्ति के लिये जिसकी आप साधना कर रहे थे, उपासना कर रहे थे, अब वह जाग्रत हो जाता है और वह आपको स्वीकार कर लेता है। इस स्थिति पर आकर आपका इष्ट आपको मान्यता दे देता है। जब आपकी स्वयं की इच्छायें समाप्त हो जाती हैं, तो इष्ट आपके अन्दर एक दिव्य इच्छा पैदा कर देता है और वो इच्छा क्या होती है? मात्र **ईश्वर के बारे में जानने की और ईश्वर को जानने की।** अब यहाँ पर एक चमत्कार होता है। बहुत एकाग्रता से एक-एक शब्द सुनिये। सारा अनुभूति का विषय आपके सम्मुख रख रहा हूँ। निस्सन्देह आप सब परम जिज्ञासु हैं। यहाँ इष्ट में एक बदलाव आता है। आपमें तो जो बदलाव आना था आ गया। अब आपका वही इष्ट आपके सामने सद्गुरु बनकर प्रकट हो जाता है, क्योंकि यहाँ तक आते-आते आप सद्शिष्य बन जाते हैं:—

''गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णु, गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुर्साक्षात् परमब्रह्म, तस्मै श्री गुरुवे नमः।''

फिर याद करिये इस श्लोक का अर्थ जो आप भूलते जा रहे हैं। गुरु ब्रह्मा है, गुरु विष्णु है, गुरु महेश है। ये तीनों नाम-रूप की उपाधि में हैं इन

तीनों से ऊपर का पद है, **'परमब्रह्म'।** गुरु साक्षात् परमब्रह्म, साकार में जिसका आप साक्षात्कार कर सकें, मानव-देह में आपके सम्मुख प्रकट हो जाता है। क्यों प्रकट होता है? यह भी एक चमत्कारिक बात है। आपको उस साकार सत्ता के निराकार का आभास करवाने के लिये वह साक्षात् साकार रूप में प्रकट होता है। जब आपका मानस समर्पित हो जाता है तो ईश्वर को अपने ईश्वरत्व का किसी प्रकार से और सब प्रकार से दिग्दर्शन करवाना पड़ता है। जिस प्रकार कि मैं अर्जुन और भगवान श्रीकृष्ण का उदाहरण कई बार दे चुका हूँ। जब महाभारत का युद्ध हुआ, भगवान श्रीकृष्ण ने जब तक गीता का उपदेश नहीं दिया, अपना विराट-स्वरूप नहीं दिखाया, 'अर्जुन' श्रीकृष्ण को तब तक अपना एक हितैषी, अपना एक सखा मानता था। एक सम्बन्धी मानता था। क्योंकि जब-जब पाण्डवों पर कष्ट आता था तब-तब भगवान श्रीकृष्ण उनके पास पहुँच जाते थे। भले द्रौपदी के चीर-हरण का समय हो, चाहे वन में उन पर कोई आपदा आई हो, चाहे लाक्षागृह में इनको जलाने के लिये बन्द कर दिया हो; तो भगवान श्रीकृष्ण वहीं प्रकट होते थे और उनकी सहायता करते थे। अर्जुन को उनमें बहुत श्रद्धा थी, लेकिन मात्र एक सखा की तरह। अब हुआ महाभारत का युद्ध और उससे पहले अर्जुन ने अपना मन समर्पित कर दिया—प्रभु श्रीकृष्ण को। कि प्रभु ! मेरे रथ की बागडोर अपने हाथ में ले लो, हाँको मेरे रथ को। आप शस्त्र उठाना नहीं चाहते, मत उठाओ, लेकिन मेरी तरफ आ जाओ। महाभारत के युद्ध में दोनों सेनाओं के बीच में अर्जुन के कहने पर जब भगवान श्रीकृष्ण ने उसका रथ खड़ा किया और अर्जुन ने अपने सगे-सम्बन्धियों को देखा तो अपना गाण्डीव रख दिया, कि 'मैं युद्ध नहीं करता।' तो उसी श्रीकृष्ण ने, युद्ध के मैदान में जहाँ दोनों ओर लोग एक-दूसरे के खून के प्यासे, एक-दूसरे को जान से मारने के लिये खड़े थे, महाघोर तमोगुणी वातावरण में (उससे ज्यादा घोर तमोगुणी वातावरण और कोई नहीं हो सकता—राज्य के लिये, स्त्री के लिये, अन्य सुख-सुविधाओं के लिये, वहाँ एक परिवार में दो भाईयों की संतानों के बीच युद्ध छिड़ने वाला है

और भारत में होने वाला सबसे बड़ा युद्ध **महाभारत**) निराश अर्जुन को गीता का उपदेश दिया। याद रखना, जब सद्‌गुरु कृपा करता है तो वह स्थान नहीं देखता। अब श्रीकृष्ण उसके सद्‌गुरु बन गये, क्योंकि वह मन समर्पित कर चुका था। अब, चूंकि अर्जुन को उपदेश की आवश्यकता थी तो भगवान श्रीकृष्ण ने स्थान नहीं देखा कि मैं उसे हिमालय में ले जाऊँ या गंगा के तट पर ले जाऊँ तब उपदेश दूँ। युद्ध का मैदान घोर तमोगुणी वातावरण, दोनों तरफ के लोग बस एक इशारा चाहते हैं कि एक-दूसरे का खून पी जायें, मारधाड़ कर दें, उस मैदान में उसी श्रीकृष्ण ने अब सद्‌गुरु बनकर गीता का उपदेश दिया और जब गीता-उपदेश के बाद अर्जुन को कुछ भी समझ में नहीं आया कि जितनी मर्ज़ी गीता सुना लो, मैं तो युद्ध नहीं करता।

अब देखिये सद्‌गुरु का कार्य—अब कृष्ण उसका सखा नहीं है, अब श्रीकृष्ण उसके सद्‌गुरु बन गए हैं। क्योंकि मात्र, सद्‌गुरु ही उपदेश दे सकता है और श्रीकृष्ण ने स्थान नहीं देखा, भूमि नहीं देखी, उन्होंने गीता सुना दी लेकिन तब भी अर्जुन के पल्ले कुछ भी नहीं पड़ा। फिर भगवान ने उसको दिव्य-दृष्टि दी। देखिये, सद्‌गुरु की कृपा कितनी असीम होती है। उसको दिव्य-दृष्टि दी कि मेरी ओर देख। मैं तेरा कोई सखा या रिश्तेदार नहीं हूँ। **'देख ! मैं कौन हूँ ?'** उसको अपना परम विराट् स्वरूप दिखाया। अर्जुन को गीता का एक शब्द पल्ले नहीं पड़ा, क्योंकि वह घोर निराशा में था। घोर निराशा में लोग उपदेश सुनने के अधिकारी नहीं होते। चाहे वह अर्जुन तुल्य तपी ही हों। अब भगवान ने उसको अपना विराट स्वरूप दिखाया, वह विराट स्वरूप जो बड़े-बड़े योगी हज़ारों वर्षों के तप के बाद, हिमालय की कन्दराओं में समाधि के बाद भी देखने के लिये लालायित रहते हैं, तड़पते हैं जिसके लिये। भगवान श्रीकृष्ण ने दिव्य-दृष्टि देकर युद्ध के मैदान में, घोर तमोगुणी वातावरण में उस अर्जुन को अपना वह साकार से निराकार स्वरूप दिखा दिया, कि देख, मैं कौन हूँ? उस स्वरूप को देखते ही अर्जुन आश्चर्यचकित हो गया, बोला प्रभु आप अपने सामान्य रूप में आ जाइये। **तो सद्‌गुरु यह कार्य करता है कि सद्‌शिष्य जब अपनी इच्छाओं**

का, अपने मन का समर्पण कर देता है तो वह दिव्य-कानून के तहत अपने निराकार स्वरूप, ईश्वर के निराकार स्वरूप की अनुभूति करवाता है। उसको करवानी पड़ती है। सद्शिष्य चाहे न चाहे उसको अपने उस ईश्वरत्व की अनुभूति करवानी पड़ती है, निराकार स्वरूप की। देख, मेरा ईश्वरत्व क्या है? उसको समाधि में ले जाता है वह, उसको ज्ञानचक्षु दे देता है, उसको यज्ञ-हवन करवाता है वह।

आज एक बहुत बड़ा भेद सर्वप्रथम खोल रहा हूँ। आज तक हमने कहा घर में हवन करिये, आप सोचते होंगे कि ये हवन के लिये क्यों कह रहे हैं? उसमें घी डालिये, उसमें आहूतियाँ दीजिये, उसमें सामग्री डालिये, वगैरह-वगैरह। आज बता रहा हूँ कि मैं हवन के लिये क्यों कहता हूँ? जब सद्शिष्य इष्ट के साकार के निराकार की अनुभूति करने में अक्षम होता है, समाधिस्थ नहीं हो सकता, कि ''प्रभु! मेरे से समाधि नहीं लगती।'' बोले—''अच्छा हवन करो।'' हवन-अग्नि क्या है, यज्ञ-अग्नि क्या है? उसका स्वरूप देखिए। अपने इष्ट, उस साकार-स्वरूप में, मैंने शुरू में कहा था कि आप छः दिव्य गुणों का आरोपण करते हैं। कौन-कौन से छः गुण हैं? **अति सौंदर्यवान, अति ज्ञानवान, परमसशक्त, महाऐश्वर्यवान, महाख्यातिवान और परमत्यागवान।**उस साकार-स्वरूप के निराकार की अनुभूति के लिए इससे यज्ञ-हवन करवाता है, क्योंकि यज्ञ की अग्नि में ये छः गुण हैं। सुनिए कौन से छः गुण हैं। यज्ञ की अग्नि जब जलती है **तो इसकी दैदीप्यमान लालिमा लिए हुए नृत्य करती हुई लपटें, उसके सौन्दर्य का प्रतीक हैं। उसका प्रकाश, उसके ज्ञान का प्रतीक है। उसका तेज, उसकी शक्ति है। अग्नि का तेज जो किसी को भी दग्ध कर सकता है। महाशक्ति है जो, वह है उसका तेज। उसमें पड़ने वाली विभिन्न वस्तुएँ पंच-रत्न, पंच-मेवा, पंच-प्रसाद, चंदन इत्यादि कितने ही द्रव्य जो हम डालते हैं सामर्थ्य अनुसार, श्रद्धा अनुसार वो उस यज्ञ-अग्नि का, हवन-अग्नि का ऐश्वर्य हैं। यज्ञ-अग्नि का धूना, (धुआँ नहीं, धुआँ तो साधारण अग्नि का होता है), यज्ञ-अग्नि का धूना होता है, जिसकी सुगन्धि जब दूर-दूर तक**

फैलती है, वह उसकी ख्याति है और अन्ततः वह सब कुछ राख, भस्मी का ढेर बन जाता है, वह उसका बैराग है, त्याग है।

उस इष्ट को जिसको साधक नाम-रूप में साकार में अपना प्रभु, अपना ईश्वर मान रहा था और जिसमें उसने छः गुणों का आरोपण किया, सद्गुरु उसको निराकार में उन छः गुणों का आरोपण नहीं, दिग्दर्शन करवा देता है, कि देख, यह अग्नि निराकार है, वायु निराकार है, आकाश निराकार है, पृथ्वी निराकार है, जल निराकार है। अब वह उसके उस स्वरूप को पहले साकार में मान रहा था, अपनी इच्छाओं की, कामनाओं की पूर्ति के लिए, मन का समर्पण हुआ तो सद्गुरु मिला। सद्गुरु ने ईश्वरत्व के उन्हीं गुणों को निराकार में उसे दिग्दर्शित करवाया। अब तो जिज्ञासु चौथी सीढ़ी में जाना चाहता है। अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष—**'मोक्ष'** है चौथी सीढ़ी। जब वो मोक्ष की अन्तिम सीढ़ी, चढ़ना चाहता है तो वह जिज्ञासु की जगह मुमुक्षु बन जाता है। बात साकार-उपासना और इष्ट पर चल रही है। किसी मुमुक्षु पर जब अति विशिष्ट कृपा होती है तो उसको अपने इष्ट की एक झलक मिल जाती है। सबको नहीं मिलती। किसको मिलती है? वह जाने। किस पर कृपा होती है, क्यों होती है, वह सब वही जाने। उसकी झलक मिल जाती है जो आदमी को झल्ला बना देने के लिए काफी है और उस झलक को पाने के बाद जो झल्ला नहीं हुआ, पागल नहीं हुआ तो इसका अर्थ है कि उसको झलक मिली ही नहीं।

जीवन की धाराएँ बदल जाती हैं, उसके कर्म, गतियाँ, उसकी भक्ति व ज्ञान का संगम हो जाता है, कि 'प्रभु मुझे क्या चाहिए, कि मेरा कर्म क्षेत्र क्या हो ***? 'तुम से तुम तक'***। ***'चलूं तुमसे और पहुँचूँ तुम तक'***। कर्मक्षेत्र हो तुम से तुम तक और कर्म क्या हो? मैं कुछ भी करूँ, कहीं भी रहूँ, हमेशा तुम्हारे साथ रहूँ। यही मेरा कर्म हो। और ज्ञान क्या हो? **कि तुम ही मेरे सब कुछ हो।** बस यही ज्ञान हो मुझे कि तुम मेरे हो।

अब क्या होता है, बड़ा कुछ होता है! जब मन का समर्पण हुआ था वहाँ तक उपासना दृढ़ थी। दृढ़ उपासना का अर्थ है कि आपकी इच्छाएँ

समर्पित हो जाती हैं। इच्छा, इच्छुक, इच्छापूरक, इच्छाफल—**आपका इष्ट।** कारण, कर्त्ता, कर्म, कर्मफल—**आपका इष्ट। आपकी वासना—उपासना में बदल जाती है। आपकी आसक्तियाँ—भक्ति में बदल जाती हैं। आपका राग—अनुराग बन जाता है। आपका स्वार्थ—परमार्थ बन जाता है**, आदि-आदि बड़ा कुछ हो जाता है जो मैं वर्णन कर चुका हूँ। यहाँ तक उपासना दृढ़ होती है। साकार की उपासना दृढ़ होती है और उसमें होता है एकनाम, एकरूप, या एक नाम असंख्य रूप या एक रूप असख्य नाम, लेकिन जब उपासना परिपक्व हो जाती है; जब उसको अपने यार की झलक मिल जाती है तो एक सीढ़ी आगे और चला जाता है—असंख्य नाम, असंख्य रूप उसको अपने इष्ट के ही नज़र आते हैं। जहाँ-जहाँ विश्व में किसी ने किसी को भी भगवान माना है, नाम-रूप में अपना इष्ट माना है, वे सब उसको अपने इष्ट के ही असख्य रूप नज़र आते हैं। ***जिधर देखता हूँ उधर तू ही तू है।***

यह वह बिन्दु है जहाँ पर साकार और निराकार उपासना एक हो जाती है। निराकार तो एक था ही। हिन्दुओं के बहुत भगवान नहीं हैं। भगवान एक ही है, साकार में भी एक ही है, लेकिन आपकी उपासना में परिपक्वता नहीं है। **जिस दिन उपासना में परिपक्वता आ जायेगी, तो यह सम्पूर्ण भ्रम दूर हो जायेगा आपका भी और विश्व का भी और यह अनुभूति हो जाएगी कि साकार में भी वह एक ही है।** दृढ़ उपासना में एक नाम एक रूप, एक रूप—असंख्य नाम, एक नाम असंख्य रूप। वहाँ तक दृढ़ उपासना रहती है। तुलसीदास जी वृन्दावन गये तो भगवान श्रीकृष्ण खड़े हैं मुरली लिए हुए कहा कि 'माथा टेकिये,' कि 'नहीं टेकता'। कि—'क्यों नहीं टेकते?***''तुलसी मस्तक तब झुके जब धनुष बाण हो हाथ'*** ''अरे ! मेरे उपास्य तो भगवान राम हैं। जिनके हाथ में धनुषबाण है लेकिन इनके हाथ में तो बाँसुरी है। अतः मैं माथा नहीं टेकता।'' दृढ़ उपासना थी तो बाँसुरीवाले भगवान ने धनुषबाण उठा लिया कि ले अब माथा टेक। उसने दिखा दिया कि मैं वही हूँ। तेरा राम भी मैं ही हूँ उसको क्या फर्क पड़ता है ! उसने

बाँसुरी छिपा कर धनुषबाण उठा लिया। तुलसी ने माथा टेक दिया। यह दृढ़ उपासना थी। परिपक्व उपासना होती तो वे कभी यह सवाल न करते। असंख्य नाम, असंख्य रूप जहाँ-जहाँ किसी ने भगवान को किसी भी नाम-रूप में माना है, वह आपको अपने इष्ट का ही नाम और रूप नज़र आता है। तहे-दिल से, तहे-रूह से और यदि वह नज़र नहीं आता है, यदि आप उसमें भिन्नता मानते हैं, तो ईश्वर में कमी नहीं है, आपकी परिपक्वता में कमी है। आप परिपक्व नहीं हैं। कब परिपक्व होंगे, पता नहीं। कब कृपा होगी पता नही? आपका दोष भी नहीं है। पता नहीं साकी की आप पर कब नज़र हो। जब नज़रे इनायत हो जायेगी तो आप परिपक्व हो जायेंगे।

सत्य को मानकर चलिये। सत्य को पकड़ कर जाइये कि भगवान एक ही है। वह निराकार में तो एक है ही, वह साकार में भी एक ही है। तो वहाँ पर कर्मयोग, भक्तियोग, ज्ञानयोग सब मिल जाते हैं, उनका संगम हो जाता है। यह वह बिन्दु है जहाँ पर मानव, मानव नहीं रहता वह मोक्ष पद का अधिकारी बन जाता है।

मोक्ष क्या है? जब हमारी सांसारिक मान्यतायें समाप्त हो जाती हैं, जैसाकि मैं कह चुका हूँ कि हमारा सारा विश्व हमारी मान्यताओं पर आधारित है। एक व्यक्ति के नाम-रूप पर उसका सारा ब्रह्माण्ड आधारित है; कि यह मेरी माता, यह मेरे पिता, यह मेरा रिश्तेदार, यह मेरी डिग्री, यह मेरी पोस्ट, मेरी पोजिशन, मेरा धर्म, मेरा कर्म, मेरा देश। जो कुछ भी एक व्यक्ति का है, वह उसके नाम और रूप पर आधारित है। यदि वह नाम और रूप को निकाल दे तो उसका संसार उसी समय ढह जायेगा। जिसको शास्त्र ने कहा है **'लययोग'।** तो हमारी मान्यताओं ने हमारा मिथ्या संसार निर्मित किया, क्योंकि हमने इस देह पर मिथ्याधिपत्य कर लिया और जब हमारा उस इष्ट के साकार स्वरूप से लगाव हुआ, तो हम मिथ्या से सत्य की ओर अग्रसर हुए और हमारी मान्यताएँ बदल गईं। संसार से मान्यता हटती गई और ईश्वर में मान्यता लगती गई। हम मृत्यु से अमरत्व की ओर बढ़ते गये। असत्य से सत्य की ओर बढ़ने लगे। वही संसार जो हमने झूठा निर्मित

किया था, वह संसार भी सत्य हो जाता है। हम मानव से संत बन जाते हैं। हमारे शब्द ब्रह्म हो जाते हैं। संत की वाणी से निकला प्रत्येक शब्द ब्रह्म होता है क्योंकि उस पर सत्य की मोहर लगी होती है। एक है साधारण कागज़ और एक वही कागज़ पचास का, सौ का, पाँच सौ का नोट है, दोनों कागज़ हैं, लेकिन दोनों काग़ज़ों में भिन्नता है। नोट पर सरकार की मोहर लगी है, गवर्नर के हस्ताक्षर हैं। तो संत की वाणी से निकला प्रत्येक शब्द ब्रह्म होता है, सत्य होता है और **जिसकी वाणी सत्य को धारण करती है, उसकी वाणी को सत्य धारण कर लेता है।**

पहले हमारी सांसारिक मान्यताएँ थीं, जिसमें हम उलझ गये थे, अब वे मान्यताएँ संसार से हटकर ईश्वर की तरफ लग जाती हैं। जैसे कोई लड़की विवाहित होकर अपने ससुराल जाती है और उसका पति होता है और जितने भी ससुराल के सम्बन्ध हैं देवर, जेठ, सास, ननद आदि वे सारे अपने पति के कारण होते हैं। इसी प्रकार इस परम भक्त के, जो आसक्तियों को छोड़कर भक्ति को प्राप्त हुआ है, सारे सम्बन्ध अपने इष्ट के कारण होते हैं। चाहे वो अपना सगा सम्बन्धी हो या न हो। उसके सम्बन्ध बदल जाते हैं, उसकी सम्पदा बदल जाती है, उसका सब कुछ बदल जाता है और जो मिलता है वह सब स्थिर होता है, क्योंकि ईश्वर भी स्थिर है। तो यह है मोक्ष-स्थिति और इस मोक्ष-स्थिति में शास्त्रकारों ने पाँच मोक्ष बतायें हैं—**''सायुज्य, सामीप्य, सालोक्य, सारूप्य और कैवल्य मोक्ष।''** पहले चार मोक्ष मात्र भक्तों के लिए और साकार उपासकों के लिये हैं। **'सायुज्य मोक्ष'** में साधक अपने इष्ट के साथ जुड़ जाता है, गले का हार बनकर, सिर का मुकुट बनकर, उसके चरणों की पादुकाएँ बनकर, वह अपने भाव से अपने इष्ट के साथ जुड़ जाता है, स्थायी रूप से। जहाँ-जहाँ भी होता है वह ध्यान करता है, तो उसे यही लगता है कि मैं अपने इष्ट के साथ जुड़ा हुआ हूँ। **'सामीप्य मोक्ष'** में वह अपने इष्ट के समीप उसका सगा-सम्बन्धी बनकर रहने लगता है, जैसे मीरा पत्नी बनकर रहती थी। कोई भाई बनकर रहता है, कोई सेवक बनकर रहता है तो कोई पुत्र बनकर रहता है।

'सालोक्य मोक्ष' में जहाँ-जहाँ भी भक्त रहता है उसे महसूस होता है कि मैं अपने इष्ट के लोक में हूँ। उसकी एक ही सरकार होती है उसके इष्ट की सरकार, जो परम स्थिर होती है। देशों की सरकारें आती-जाती रहेंगी, लेकिन इष्ट की सरकार एक ही रहती है, जन्म-जन्मान्तरों में। वह हमेशा जहाँ भी होता है उसकी सरकार उसके इष्ट की ही होती है और वह उसी में विचरता है। **'सारूप्य मोक्ष'** में उसकी और उसके इष्ट की शक्ल मिलने लग जाती है। रूप ले लेता है उसका वहः–

''वो मुझसे पूछते हैं कि यह क्या बात है शकील,
दुनिया पुकारती है मुझे तेरे नाम से।''

इसको कहा है सारूप्य मोक्ष और यहाँ पर एक अन्तिम कथन बहुत आवश्यक है। इष्ट के साथ अगाध इश्क हो जाता है तो हूक निकलती है उसके हृदय सेः–

''आप ही मोरे नयनवाँ, पलक ढांप तोहे लूँ
ना मैं देखूँ और को, ना तोहे देखन दूं।''

कि मेरे नयनों में बस जाओ, क्यों? क्योंकि मैं पलक ढाप लूँगी, तुम्हें अपनी पलकों में बन्द कर लूँगी ताकि तुम किसी को देख न पाओ। न मैं किसी को देख पाऊँ क्योंकि मेरी आँखें बन्द हो जायेंगी और न तुम देख पाओगे क्योंकि तुम मेरी आँखों में बन्द हो जाओगे, लेकिन यदि मेरे नेत्र कभी खुल जायें, यदि मैं किसी को देख लूँ, तो वह या तू हो या मैं होऊँ। तो उस अवस्था में आकर वह उपासक सारे विश्व में अपना ही स्वरूप देखने लगता है।

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(10 नवम्बर, 2002)

कारणम्-कारणानाम्

आज इष्ट-कृपा से और आप सब जिज्ञासुओं की प्रेरणा से बहुत महत्त्वपूर्ण विषय प्रस्तुत करूंगा और इसे अति सरलीकृत करने का प्रयत्न करूँगा। विषय का नाम है **''कारणम्-कारणानाम्'' कारणों का कारण।** समस्त कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों के महानिर्माण, महापालन और महासंहार के पीछे महाकारण कौन है, हम उस महाकारण से वंचित और विमुख क्यों हैं, उस सच्चिदानंद की सृष्टि में हम कष्ट और दुख क्यों भोग रहे हैं, हम विक्षिप्त, त्रसित, भयभीत, रुग्ण, असुरक्षित और अशान्त क्यों हैं? इसका निर्णय इस देव-दरबार में होना परमावश्यक है।

कुछ समय पहले मैंने कहा था कि हर सार्थक कर्म का कोई न कोई कारण अवश्य होता है। बिना कारण के कोई भी कर्म नहीं होता। आपके यहाँ आने का कारण और मेरे यहाँ बोलने का भी कारण है। सर्वप्रथम कर्म का कोई **कारण** होता है और दूसरे, उसका कोई न कोई **कर्त्ता** होता है। बिना कर्त्ता के भी कर्म नहीं हो सकता। उस कर्त्ता के साथ ही उस कर्म को करने से पहले एक विशेष वृत्ति होती है, जिससे वह कार्य आरम्भ होता है। तो सर्वप्रथम कारण, फिर कर्त्ता, फिर कर्म से पहले की वृत्ति और तत्पश्चात वह कर्म होता है। कृपया एकाग्र करिये, विषय बहुत आवश्यक, रुचिकर लेकिन कठिन है, मात्र परम जिज्ञासुओं के लिये है, बहुत नया है और बहुत पुराना भी है। कर्म करने के बाद भी एक वृत्ति बनती है, जो कर्म के छटे आयाम कर्मफल का निर्धारण करती है। अब मैं आपको उदाहरण दूँगा।

आप सब एक कारण से यहाँ आये हैं, डा. शिव कुमार का प्रवचन

सुनने। इस कारण से आप कर्त्ता बने, अपने घर से चले, अपने तथाकथित व्यस्त जीवन में से कुछ समय निकाल कर यहाँ आये, किसी भी प्रकार से और सब प्रकार से। लेकिन इस प्रवचन को सुनने की वृत्ति सबकी अलग-अलग थी। कुछ तो मेरे शब्दों का अर्थ जानने के लिये आये हैं–**शब्दार्थ,** कि सुनते हैं क्या कहते हैं। तो एक वृत्ति थी **शब्दार्थ,** जब आप प्रवचन सुनेंगे और शब्दार्थ निकालेंगे तो शब्दों का अर्थ वही निकालेंगे, जो आपकी बुद्धि सुझायेगी। जैसी जिसकी बुद्धि होगी शब्दों का अर्थ उसके लिये वही होगा। कुछ हमारे पुराने श्रोता हैं जो **भावार्थ** आये हैं। भाव, मन का विषय है, वो भाव को पकड़ेंगे–कि चलो! डॉ. साहब के दर्शन भी हो जायेंगे। कई बार कोई वक्ता अपने भाव को शब्दों में प्रकट नहीं कर सकता। जैसे एक छोटा बच्चा अपने भावों को शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकता पर माँ उसका भाव समझ लेती है। कुछ लोगों का हमसे मानसिक तारतम्य है, वे भाव पकड़ने के लिये आये हैं, लेकिन कई बार भावों में भी उलझन हो जाती है। एक कहता है कि ''मेरे ख्याल से उनका भाव यह था,'' दूसरा कहता है कि नहीं आप समझे नहीं, उनका भाव अमुक था। एक तीसरी प्रकार के श्रोता भी हैं जो हमारा आत्मस्वरूप हैं और वो **श्रद्धार्थ** आये हैं। उनको हमारे शब्दों या भावों से कुछ नहीं लेना। वे मात्र आँखों में अश्रु लिये, श्रद्धा से बैठे रहते हैं, वहाँ शब्दों और भावों का अर्थात् समर्पण का भी समर्पण हो जाता है।

शब्दों का अर्थ आपकी **बुद्धि** निकालती है और भावों का अर्थ निकालता है आपका **मानविक-मन** और श्रद्धा होती है **ईश्वरीय-मन** में। विषय बड़ा रुचिकर है, आप सब एकाग्र करिये। जब आपकी बुद्धि और आपका मानविक-मन समर्पित हो जाता है और उसके समर्पण का भी समर्पण हो जाता है तो वहाँ अनाच्छादित और अनावृत होता है आपका ईश्वरीय-मन। जो हमारे शब्दों का अर्थ बुद्धि से सुनेंगे, मात्र बुद्धि तक ही लेंगे तो उनकी बुद्धि के अनुसार हमारे शब्दों का अर्थ उन्हें मिल जायेगा। हाँ! मिल जायेगा, पल्ले नहीं पड़ेगा। तो कर्म क्या हुआ–हमारे प्रवचन को

सुनना और कर्म के बाद की वृत्ति—मात्र तर्क-कुतर्क को ले कर ही यहाँ से जायेंगे। जो भाव से सुनेंगे वो थोड़ा और आनन्दित होंगे और जो श्रद्धा से सुनेंगे वे आत्मविभोर होकर जायेंगे। **तो कर्म के बाद की वृत्ति ही आपके कर्मफल का निर्धारण करती है।** जो श्रद्धार्थ सुनेंगे वे शब्द भी सुनेंगे, वे भाव भी ग्रहण करेंगे लेकिन श्रद्धा से। उनका ईश्वरीय-मन अनाच्छादित हो जाएगा। अतः वे आनन्द से यहाँ आये हैं, आनन्द से ही यहाँ बैठेंगे और आनन्द में ही यहाँ से जायेंगे। हो सकता है इन शब्दों को श्रद्धार्थ सुनने से उनके जन्म-जन्मान्तरों का प्रारब्ध कट जाये। तो यह है श्रद्धार्थ—मात्र श्रवण करना, आँखों में अश्रु लिये हुए। भाव क्या है, शब्द क्या हैं, उन्हें ज्ञात ही नहीं है, लेकिन उनके हृदय से उनके ईश्वरीय-मन का प्रकटीकरण होता है। आपने शब्दार्थ, भावार्थ ये दो शब्द तो सुने होंगे लेकिन श्रद्धार्थ कदाचित् पहली बार सुना होगा।

प्रत्येक कर्म का एक कारण होता है, उसके बाद एक कर्त्ता होता है जिसके साथ कर्म से पहले की वृत्ति होती है, फिर स्वयं कर्म और फिर **कर्म के बाद की वृत्ति** जो ईश्वर के अनुमोदन से बनती है। ध्यान दीजिए, कर्म से पहले की वृत्ति आपकी अपनी होती है और कर्म के बाद की वृत्ति दैवीय शक्तियों के समर्थन एवं अनुमोदन से बनती है। वह बीज बनता है आपके कर्मफल का। यहाँ एक बात जाननी बहुत महत्त्वपूर्ण है कि कर्मफल उपलब्धि नहीं है। लोग कर्मफल को उपलब्धि मान लेते हैं कि मैं एम. बी. बी. एस. कर रहा हूँ, मुझे डिग्री मिल जायेगी जो कर्मफल है। नहीं ! ऐसा नहीं है। आपने अमुक पद लेना है, अमुक धनराशि एकत्र करनी है, अमुक भवन खड़ा करना है या अपनी लड़की या लड़के के लिये उचित जीवन-साथी ढूढ़ँना है, तो वह आपका कर्मफल नहीं है, उस उपलब्धि के बाद जो आपकी मानसिक वृत्ति बनती है, वो है **कर्मफल।** क्योंकि कई बार हम प्राप्तियों के बाद अपने सिर पर हाथ मारते हैं कि अरे ! यह क्या हुआ ! मैं तो इससे पहले ही अच्छा था। अतः उपलब्धि के बाद की मानसिक स्थिति ही आपका कर्मफल है। सबसे ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है किसी भी कर्म का **'कारण'**। उस

कारण के तहत इष्ट-कृपा से हमने कर्मों को तीन वर्गों में विभाजित किया है:—

पहला स्वयंभू कर्म—आज आपको ज्ञात हो जाना चाहिये कि आप किस कार्य में व्यस्त हैं? आप निरर्थक जीवन व्यतीत कर रहें हैं या सार्थक। आपको यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाना चाहिये, क्योंकि नया वर्ष शुरू होने वाला है, समय बीतता जा रहा है। जो पैदा हुआ है वह एक दिन मरेगा अवश्य। जीवन को व्यर्थ नहीं करना है। आज इस सत्संग में स्पष्ट हो जाना चाहिये, आत्मविश्लेषण हो जाना चाहिये कि मैं कर क्या रहा हूँ, क्या बिना बात निरर्थक ही तो व्यस्त नहीं हूँ? सर्वप्रथम, जो सबसे निम्न स्तर है कर्म का, जो अधिकतर हम सभी कर रहे हैं, वो हैं—स्वयंभू कर्म। जिनका कारण बिना बात हमने पैदा किया है—**'अकारण कारण'।** जिनका कारण बनने की हमें आवश्यकता ही नहीं थी, क्योंकि न तो उन कर्मों से कुछ उपलब्धि ही होनी थी और न ही उनका फल मिलना था। अतः उसे करने के बाद मानसिक स्थिति विक्षिप्त ही होनी थी। तो सर्वप्रथम **स्वयंभू कर्म या अकारण कारण।** अब मैं कुछ उदाहरण दूँगा:—

आजकल आप क्या कर रहे हैं? कि आजकल मैं अपनी जवान लड़की के लिये लड़का ढूँढ रहा हूँ, कितने लड़के देख लिये? कि 13 – 14 देख लिये। बस जूते घिस गये। कल दिल्ली गया था, परसों अमृतसर, पिछले सप्ताह मुम्बई भी हो कर आया हूँ। आपको मालूम है कि यह अकारण कारण है, आपने पैदा किया है, जिस दिन आपकी लड़की का विवाह होना है, अवश्य होगा, आपको यह ज्ञात है। आप अगर मर भी जायें, दुनिया में न भी हों तो भी आपकी लड़की का विवाह होगा और अधिक अच्छा होगा। जो लोग समझते हैं कि मेरे बिना मेरे परिवार, फैक्टरी आदि का क्या होगा, वे निश्चित जान लें कि उनके बिना ज़्यादा अच्छा होगा ही। तो आपने अकारण कारण उत्पन्न किया और उसे स्वयं ही उचित ठहरा रहे हैं कि क्या करूँ लड़की जवान हो गई है, उसके लिये लड़का मैं नहीं ढूँढूगा तो कौन ढूँढेगा? 15वां लड़का मिल गया जो पड़ोस में ही था। बात पहले ही

बनी-बनायी थी। जो 14 जगह आपने लड़का ढूँढा उसका कारण आपने स्वयं पैदा किया, स्वयंभू कर्म किया। बहुत व्यस्त रहे और बहुत समय एवं धन खर्च किया और स्वयं के लिये बिना बात तनाव मोल ले लिया, क्योंकि अकारण कर्मों की तो आपको उपलब्धि भी नहीं होती। जीवन आपकी बुद्धि के अनुसार नहीं चलता, जीवन दैवीय नियमों के अन्तर्गत चलता है। उस ईश्वर ने इस महाब्रह्माण्ड का निर्माण किया है, वही पालनकर्त्ता है और वही संहार भी करता है। यहाँ का एक-एक कण, आपके जीवन का एक-एक श्वास उसके हाथ में है। जीवन उस महाकारण ईश्वर की वजह से चलता है। कई लोग स्वयंभू कर्म करके इतने दृढ़ संकल्प होते हैं कि उसके बदले उपलब्धि ढूँढ कर ही दम लेते हैं, कि मैंने लड़का ढूँढ लिया या बच्चे को उसी स्कूल में दाखिला दिलवा दिया, जिसमें मैं चाहता था, चाहे पाँच लाख रुपये रिश्वत देनी पड़ी। स्वयं चाहे फट्टी-बस्ते के स्कूल में पढ़े हैं। तो जहाँ दाखिला दिलाया या जहाँ लड़का खरीदा वो आपके लिये सिरदर्द अवश्य बन जायेगा और आपकी लड़की का वैवाहिक जीवन व्यथित और दुर्भाग्यपूर्ण अवश्य रहेगा। इसलिये जीवन से निरर्थक छेड़छाड़ नहीं करनी।

दूसरा कर्म है—जहाँ पर आपने **कारण-कारण** पैदा किया अर्थात् **संदर्भ कर्म।** कुछ कर्म प्रारब्ध के तहत स्वतः होते हैं और आप उसका भी कारण स्वयं को घोषित कर देते हैं। पहला था **स्वयंभू कर्म** जहाँ पर आपने अकारण, कारण पैदा किया क्योंकि आप आराम से बैठ नहीं सकते, तथाकथित बहुत व्यस्त हैं। दूसरा, **संदर्भ कर्म** जो प्रारब्ध के संदर्भ में होना ही था, जिसके लिये सारा प्रबन्ध स्वतः ही हो जाता है। आप हमारी बात से सहमत होंगे कि जहाँ पर कार्य होना होता है वहाँ उचिततम् समय पर स्वतः ही हो जाता है। लेकिन दुर्भाग्यवश उसका कारण भी हम स्वयं को मान लेते हैं, कि बस मेरी वजह से यह हुआ। ऐसे कर्मों को कहा है **संदर्भ कर्म**। वहाँ पर आप बिना वजह कारण के कारण बने और व्यर्थ अपनी मोहर लगा दी, जोकि प्रारब्धवश होना ही था। तो उस कर्म का फल भी आपको विक्षिप्त ही रखेगा, क्योंकि **किसी कर्म का कारण स्वयं को मानना दैवीय अधिनियमों**

के विरुद्ध है। ईश्वरीय कानूनों का अनुसरण करना आपके लिये परमावश्यक है, यदि आप आनन्दित एवं सुखद जीवन व्यतीत करना चाहते हैं। आपको स्पष्ट हो जाना चाहिये कि इस महाब्रह्माण्ड में उस ईश्वर का, उस महाकारण का साम्राज्य है। तो प्रारब्ध के तहत जो कार्य हो रहे हैं, उसके कारण आप स्वयं मत बनिये। क्योंकि उसका कारण पहले ही रचा जा चुका है। यदि बनेंगे तो उस कर्म के फल के बदले में आप विक्षिप्त, दुखित, त्रसित और भयभीत रहेंगे। आपके लिए मानसिक समस्यायें पैदा हो जायेंगी। अतः जो 15वां लड़का मिला उसके कारण पर अपनी मोहर मत लगाइये। उसे ईश्वर-समर्पित अवश्य करिये, कि प्रभु ! आपने बड़ी कृपा की, पहले से ही आपने सब प्रबन्ध किया हुआ था। अन्यथा आप भुगतेंगे। लड़की-लड़का तो आनन्द में रहेंगे, पर आप विक्षिप्त रहेंगे।

ईश्वर ने एक बहुत बड़ा चमत्कार किया है। कुछ कर्म ऐसे रखे हैं जिनके कारण आप बन ही नहीं सकते। पहले दोनों कर्मों—**स्वयंभू कर्म और संदर्भ कर्म** के कारण आप अपनी तथाकथित बुद्धि के चातुर्य से स्वयं बने और आप फँस गये। लेकिन कुछ महाकर्म प्रभु ही करते हैं, जिसके कारण हम स्वयं हो ही नहीं सकते। जैसे कब पैदा हुए आप ? कि 8 अगस्त 1962 को। अच्छा, 7 अगस्त को पैदा हो जाते, कि पता नहीं। कहाँ पैदा हुए आप ? किसी ऊत्-पटांग गाँव का नाम बताया, कि वह भी कोई पैदा होने की जगह थी ? आप दिल्ली में पैदा होते, लंदन में होते, कि बस हो गये। आप काले रंग के नाटे क्यों हैं, आपके माता-पिता कौन हैं ? कि अमुक-अमुक। कि इससे अच्छे माँ-बाप नहीं मिले आपको ? आप मरेंगे कब, कहाँ मरेंगे, आपको कन्धा कौन देगा, कफ़न-लकड़ी का प्रबन्ध कौन करेगा ? कि पता नहीं। कृपया एकाग्र करिए। कुछ कर्म प्रभु ने ऐसे कर दिये, जिसका कारण आप बनना चाहें तो भी नहीं बन सकते। यदि बनेंगे तो स्वयं में मूर्ख घोषित कर दिये जायेंगे। पहले आपने अकारण कारण पैदा किये और स्वयंभू कर्म किये। फिर प्रारब्ध के तहत होने वाले संदर्भ कर्मों के कारण भी स्वयं बन गये, लेकिन **तीसरा कारण था** स्वयं ईश्वर—**महाकारण।** वहाँ आप कारण बन ही नहीं

सकते थे। जो आप संदर्भ कर्म कर रहे हैं, कोई डाक्टर है, कोई पनवाड़ी है, कोई शिक्षक है आदि-आदि। अरे ! ये वो कर्म हैं जो आप भी कर सकते हैं और उसमें आप बहुत व्यस्त हैं, जबकि वे प्रारब्ध के तहत स्वयं ही होने थे और **आप भी** कर सकते थे, कोई खास बात नहीं है। लेकिन वह महाकारण, जिसका कारण आप स्वयं को मान ही नहीं सकते, ये वह कर्म हैं, जिसे **आप ही** कर सकते हैं और इन्हें कहा है–**स्वतः कर्म**।

आप जैसा पूरे विश्व में कोई नहीं है। बहुत नई बात रख रहा हूँ। एक व्यक्ति को ले लीजिये, पूरी दुनिया में उस जैसा रंग-रूप, शारीरिक शक्ति, मानसिक शक्ति, परिवार, माँ-बाप किसी का नहीं है। एक माँ-बाप से मात्र एक ही सन्तान होती है। तो आप जैसे माँ-बाप भी किसी के नहीं हैं, आपके भाई के भी नहीं। हमारी बात पर बड़ा सन्नाटा छा गया है। यह भारतीय दर्शन है। आपके जन्म के समय आपके माँ-बाप की आयु, आपके भाई के जन्म के समय से अलग थी। आपके और आपके भाई का जन्म-स्थान अलग-अलग था, आपके और आपके भाई के पैदा होने के समय माँ-बाप की आर्थिक व सामाजिक स्थिति, जीवन-स्तर भिन्न था, तो दोनों के एक ही माँ-बाप कैसे हो सकते हैं? इसलिये भाइयों और बहनों में परस्पर वैचारिक भिन्नता होती है। तो एक सन्तान के एक ही माँ-बाप होते हैं। आपकी शक्ल, अक्ल, माँ-बाप, जन्म-स्थान संक्षेप में आपका सम्पूर्ण ढांचा अलग है। किसी अंग्रेज दार्शनिक की कहावत है कि "Nobody is indispensible" आप सब इस कहावत से परिचित होंगे। इसको आज बदल दीजिये, क्योंकि यह एक भौतिक कहावत है। **आप जो प्रारब्धवश कर रहे हैं वो आप भी कर सकते हैं लेकिन ईश्वर ने जो आपको ढांचा दिया है उसके पीछे उसका कोई महाकारण अवश्य है जिसके तहत कोई कार्य केवल आप ही कर सकते हैं।** तो जो आप भी कर सकते हैं उसके आधार पर उस विदेशी दार्शनिक की उपर्युक्त कहावत है। इसे आज परिवर्तित करके कहिये कि "Every body is highly indispensible" जो आप कर सकते हैं, वह आप ही कर सकते हैं, क्योंकि आपका डिज़ाइन बिल्कुल अलग है और आप जैसा पूरे

विश्व में दूसरा कोई नहीं है। आज आप स्वयं से हीनभावना हमेशा के लिये हटा दीजिये और स्वाभिमान लेकर जाइये।

क्या है वह महाकारण जिसका कारण आप बन ही नहीं सकते? उसके लिये उस ईश्वर से आपको स्वयं पूछना पड़ेगा कि प्रभु ! आपने मुझे इस धरा पर यह विशेष ढांचा देकर क्यों भेजा है? यदि आप नहीं पूछेंगे तो वह नहीं बतायेगा। ईश्वर ने कुछ रहस्य रखें हैं और उससे पूछने के लिये आपको **स्वयंभू कर्म (अकारण-कारण)** तथा **संदर्भ कर्म (कारण-कारण)** को समर्पित करना पड़ेगा। हे प्रभु ! उसके कारण भी आप ही थे, आप जानते हैं और आपने मुझे भी जनवा दिया है। तो वह क्या कृत्य हैं जिनको करने के लिये आपने मुझे यह विशेष ढांचा दिया है? उसके लिये औपचारिकता है कि पहले आपको खाली होना पड़ेगा, जो बहुत कठिन है। आप स्वयं से पूछिये कि कोई कर्म आप व्यर्थ ही तो नहीं कर रहे? आप स्वयं के साथ बैठिये। कहीं आप अकारण तो कारण नहीं बन रहे और दूसरे जो संदर्भ कर्म हैं (प्रारब्ध के तहत) वो आप मर भी जायें तो आपसे कहीं बेहतर होंगे। अतः आप उसमें भी अपना समय व्यर्थ बर्बाद ही कर रहे हैं। आपका मात्र एक ही कर्म है, जिसके लिये उस महाकारण ने आपको पैदा किया। उसके लिये आपका कोई विकल्प नहीं है। उस कर्म को जानने के लिये आपको अपने स्वयंभू और संदर्भ दोनों तुच्छ कर्मों का कारण तहे-रूह, तहे-मन से छोड़ना पड़ेगा। अब मैं इसे स्पष्ट करने के लिए कुछ और उदाहरण देता हूँ:–

महाभारत के युद्ध का मैदान, जहाँ एक ही परिवार में, भारत में लड़ा जाने वाला सबसे बड़ा महायुद्ध होने वाला है। अर्जुन और दुर्योधन दोनों भगवान श्रीकृष्ण के सम्बन्धी हैं। दोनों परिवारों को सहयोग देने के लिये सम्पूर्ण भारत से आमन्त्रित विभिन्न पराक्रमी राजा आये थे। अर्जुन और दुर्योधन दोनों श्रीकृष्ण के पास आते हैं, उनका सहयोग माँगने के लिये। भगवान अपने शयनकक्ष में विश्राम कर रहें हैं। अर्जुन भगवान का परम भक्त है, वो उनके चरणों की ओर बैठ जाता है और दुर्योधन घमण्डी है, वह उनके

सिर के पास बैठ जाता है। उठने पर श्रीकृष्ण की दृष्टि पहले चरणों के पास बैठे अर्जुन पर पड़ती है और फिर उनका मुख दुर्योधन की ओर घूमता है। कुशल-क्षेम पूछकर, भगवान यद्यपि अन्तर्यामी हैं, युद्ध के महाकारण स्वयं हैं, फिर भी उनसे आने का कारण पूछते हैं। कारण ज्ञात होने पर उन्होंने कहा कि एक तरफ मैं स्वयं हूँ, निहत्था, क्योंकि मैं युद्ध में शस्त्र नहीं उठाऊँगा और दूसरी तरफ मेरी चतुरंगणी सेना है। पहला चुनाव अर्जुन का है, क्योंकि उस पर मेरी दृष्टि पहले पड़ी है। दुर्योधन ने सोचा कि यह ग्वाला यहाँ भी छल कर गया। अब अर्जुन तो सेना ही माँगेगा, क्योंकि युद्ध में बाँसुरी तो बजानी नहीं है। परन्तु अर्जुन भावुक हो गया कि प्रभु ! आप शस्त्र मत उठाना, आप मेरी तरफ आ जाओ। दुर्योधन हैरान हो गया कि इसकी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है, यह अवश्य हारेगा। अतः उसने बनावट से कहा कि प्रभु ! इसने आपको माँग लिया तो मुझे सेना ही दे दीजिये। इस प्रकार विभाजन हुआ और जब युद्ध आरम्भ होने को था तो अर्जुन ने भगवान से अपना रथ दोनों सेनाओं के मध्य में ले जाने को कहा। दोनों ओर अपने ही सम्बन्धियों को देखकर अर्जुन को निराशा हो गई और उसने अपना वह गाण्डीव, जिसकी टंकार से शत्रु भयभीत हो जाते थे, नीचे रख दिया कि प्रभु ! मैं युद्ध नहीं करूँगा। मेरे भाई-बन्धु, गुरु, सम्बन्धी विपक्ष में खड़े हैं, इनको मारकर मैं राज्य का क्या करूँगा? श्रीकृष्ण के लिये बड़ा धर्म-संकट हो गया और श्रीकृष्ण ने उस घोर तामसी वातावरण वाले युद्ध के मैदान में जहाँ दोनों ओर एक दूसरे के खून के प्यासे लोग खड़े थे, गीता का उपदेश दिया। बात चल रही है '**कारणम्-कारणानाम्**' पर। यह बात स्मरण रखने की है कि गीता का उपदेश उस घोर तामसी वातावरण में हुआ। आधी से अधिक गीता भगवान ने सुना दी लेकिन अर्जुन टस से मस नहीं हुआ। तब भगवान श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा कि मेरी ओर देख, मैं तेरा कोई सखा या मित्र नहीं हूँ। अर्जुन को दिव्य-दृष्टि दी और अपना विराट-स्वरूप दिखाया जिसमें अर्जुन ने युद्ध होते देखा, मरने वालों को मरते देखा, स्वयं को उन्हें मारते देखा, अपनी विजय होती देखी और उस विराट-स्वरूप को देखकर अर्जुन

घबरा गया कि प्रभु ! आप अपने सामान्य स्वरूप में आ जाइये, मुझ से आपका यह विराट तेजोमय स्वरूप देखा नहीं जा रहा।

आज मैं गीता के सम्बन्ध में संपूर्ण धारणा बदल रहा हूँ। गीता में **कर्म की नहीं बल्कि कारण की प्रधानता है।** कैसे? अगर अर्जुन को भगवान गीता के माध्यम से केवल कर्म के लिये प्रेरित करते कि उठा गाण्डीव और लड़, तो क्या महाभारत का युद्ध केवल अर्जुन पर टिका हुआ था, अगर अर्जुन न लड़ता तो क्या महाभारत का युद्ध लड़ा न जाता? मान लीजिये कि गीतोपदेश के बाद अर्जुन युद्ध के लिये प्रेरित तो हो जाता लेकिन उसके शरीर में कोई रोग हो जाता, तो क्या महाभारत का युद्ध न होता? तो अपने विराट स्वरूप के दर्शन द्वारा और गीता के 18 अध्यायों द्वारा भगवान ने निश्चय ही अर्जुन को केवल धनुष उठाने के लिये ही प्रेरित नहीं किया। अरे! कौन सा अर्जुन के गाण्डीव ने महाभारत जीत लिया? महाभारत जीता गया कृष्ण की बुद्धि के चातुर्य से। उदाहरणतः जब अभिमन्यु का वध हुआ तो अर्जुन ने कसम खायी थी कि मैं कल सूर्यास्त से पहले जयद्रथ को मार दूँगा, नहीं तो मैं स्वयं चिता में जलकर मर जाऊँगा। जयद्रथ छिप गया और सूर्यास्त तक बाहर नहीं आया। चिता बना दी गयी और अर्जुन को लिटा दिया गया। अब भगवान श्रीकृष्ण बहुत दुखी हुए कि यह पाण्डव बात-बात में प्रतिज्ञा कर लेते हैं। इतने में जयद्रथ बाहर आ गया और भगवान ने माया से सूर्य को पुनः उदित कर दिया। अर्जुन छलांग मारकर चिता से उठा और जयद्रथ को मार दिया। तो आज धारणा बदल दीजिये। दैवीय अधिनियमानुसार भगवान ने अर्जुन को जिताना ही था, क्योंकि अर्जुन अपना मन समर्पित कर चुका था। भगवान को चिंता थी कि अर्जुन को युद्ध रूपी कर्म के फल की उपलब्धि होगी, विजयश्री मिलेगी लेकिन यह चूंकि अज्ञानवश युद्ध का कारण स्वयं को मान रहा है (युद्ध मेरे गाण्डीव से जीता जायेगा) इसलिये यह युद्ध के कर्मफल—**'राज्य की उपलब्धि'** को भोग नहीं पायेगा।

एक और उदाहरण दूँ। भीष्म पितामह कौरवों के सेनापति थे। दुर्योधन

नाराज़ हुआ कि आप पाण्डवों को समाप्त नहीं कर रहे हैं तो पितामह ने प्रतिज्ञा कर ली कि कल मैं पाण्डवों को मार दूँगा। श्रीकृष्ण को चिंता हो गई और वे अर्धरात्रि में द्रौपदी को घूंघट निकलवा के भीष्म पितामह के शिविर में ले गये, जहाँ वे समाधिस्थ थे। समाधि से उठने के बाद वे जो आशीर्वाद देंगे वो अवश्य फलीभूत होगा। श्रीकृष्ण ने द्रौपदी की चप्पलें उतरवा लीं और अपने पास रख लीं। समाधि से जब पितामह उठे तो घूंघट निकाले द्रौपदी ने उन्हें प्रणाम किया और पितामह के मुख से स्वतः ही आशीर्वाद निकला— सौभाग्यवती रहो। द्रौपदी ने झट से घूंघट उठा दिया कि प्रभु ! आपने तो मेरे पतियों को मारने का प्रण कर लिया है, अतः मैं कैसे सौभाग्यवती रहूंगी ? अब भीष्म के नेत्रों में अश्रु आ गये कि अवश्य वो छलिया ही तुझे यहाँ लाया है, जो स्वयं बाहर खड़ा होगा। बाबा भगवान के चरणों में गिर पड़े कि प्रभु ! जिस पर आपका हाथ हो, उसे भीष्म कैसे मार सकता है। **बोलिये, भगवान श्रीकृष्ण की जय।** अतः स्पष्ट है कि महाभारत का युद्ध अर्जुन के बल-बूते पर नहीं जीता गया और भगवान ने गीता के 18 अध्याय सुना कर अर्जुन को मात्र धनुष उठाने के लिये अपना विराट स्वरूप नहीं दिखाया होगा। सत्य यह है, क्योंकि अर्जुन पहले अपना मन समर्पित कर चुका था, अतः उसे विजयश्री तो मिलनी ही थी। लेकिन भगवान को चिन्ता यह थी कि वह अज्ञानवश स्वयं कारण बन रहा है, तो युद्ध की उपलब्धि (राज्य) को आनन्दपूर्वक भोग नहीं सकेगा।

'कारणम्-कारणानाम्' हे अर्जुन ! सब कारणों का कारण मैं हूँ। तू सब धर्मों का त्याग करके केवल मेरी शरण में आ जा। गीता में हम कर्म की प्रधानता मानते हैं कि तू कर्म कर फल मैं दूँगा। हम कर्म की परिभाषा भी तो नहीं जानते। अरे ! जो कर्म करेगा वो अहं से ही तो करेगा। जब तक कारण समर्पित नहीं होगा कि **हे प्रभु ! कारण, कर्त्ता, कर्म से पहले की वृत्ति, कर्म, कर्म के बाद की वृत्ति और कर्मफल आप ही हैं;**

''त्वदीयं वस्तु प्रभु तुभ्यमेव समर्पये''

जब तक यह स्थिति नहीं आयेगी, तब तक आप किसी तथाकथित

कर्म के फल का, उपलब्धि का आनन्दपूर्वक भोग कर ही नहीं सकते; दैवीय नियम ही नहीं है। अतः गीता का उपदेश भगवान ने अर्जुन को युद्ध के महाकारण से अवगत कराने के लिये दिया था।

अब उधर हनुमान जी की ओर आइये। मैंने जामवन्त और हनुमान जी का प्रसंग कई बार सुनाया है, आज उसका आयाम भिन्न है। हनुमान जी प्रभु श्रीराम के अनन्य और परम विलक्षण भक्त हैं। प्रभु श्रीराम ने अपनी अँगूठी उन्हें उतार कर दे दी कि आप सीता जी को खोजकर उन्हें दे देना और हनुमान जी ने वह अँगूठी, अन्य कोई उचित स्थान न होने के कारण, मुँह में रख ली। हनुमानजी शिव-शक्ति के अवतार, महागदाधारी और महायोद्धा हैं, लेकिन वो अपनी शक्तियों को नहीं जानते। वो सागर के किनारे बैठे हैं। जटायु के भाई संपाती ने दूर-दृष्टि से सीताजी को अशोक वाटिका में बैठे देखकर बता दिया, कि सीता जी दक्षिण दिशा में बसी लंका में अशोक वाटिका में बैठी हैं और मैं क्योंकि बूढ़ा हो गया हूँ अतः तुम्हारी और कोई सहायता नहीं कर सकता। अब हनुमानजी को ही श्रीराम ने अँगूठी क्यों दी? क्योंकि भगवान उसका कारण जानते हैं कि यह हनुमान ही सीता तक पहुँच पायेगा। लेकिन हनुमान जी इसका कारण नहीं जानते, वे स्वयं कारण नहीं बनते और उन्होंने अँगूठी को केवल अपने मुँह में रख लिया। अब वहाँ बड़ी उद्वग्निता हो गई सागर किनारे, कि कौन सागर पार करे? सभी ने लंका में पहुँचने की असमर्थता प्रकट की और हनुमान जी तो रो रहे हैं, क्योंकि वो अँगूठी उन्हें देने का कारण भी नहीं जानते। दूसरे, **कारण-कारण** जोकि ऐसा होना ही था, वो भी नहीं जानते और न जानना चाहते हैं। फिर सेना को आदेश मिला था कि दक्षिण दिशा में जाओ वहाँ भी हनुमान जी ने अपनी बुद्धि नहीं लगायी कि रावण तो मायावी है। दक्षिण के अलावा और दिशाओं में भी ढूँढते हैं। **अतः अकारण कारण उन्होंने पैदा नहीं किये। दक्षिण दिशा यानि दक्षिण दिशा।** कोई स्वयंभू कर्म उन्होंने नहीं किया। **कारण-कारण भी वह नहीं बने** क्योंकि अपनी शक्तियों का उन्हें ज्ञान ही नहीं था। जब सब डींग हाँक रहे थे, कि मैं आधी छलाँग लगा

सकता हूँ आदि-आदि। तब हनुमानजी बैठे रो रहे थे। अब जामवंत जी ने देखा कि शिव-शक्ति का अवतार बैठा रो रहा है, तो उन्होंने हनुमान जी को जाग्रत करने का प्रयास किया:–

''कहहु रीछपति सुनु हनुमाना, का चुप साधि रहेहु बलवाना।''

हनुमान जी बहुत हैरान हुए कि ये मुझे बलवान कह रहे हैं:–

''पवन तनय बल पवन समाना, बुधि-विवेक विज्ञान निधाना।''

जामवन्त जी बोले, तू पवनपुत्र है और बुद्धि, विवेक और बल का भण्डार है। हनुमान जी ने विचार किया कि जामवंत जी बूढ़े हो गये हैं, परिहास कर रहे हैं। वह श्रद्धावश चुपचाप देखते रहे। जामवंत जी हनुमान जी को निहार रहे हैं कि इनमें कोई प्रतिक्रिया ही नहीं है, क्योंकि हनुमान जी अकारण-कारण और कारण-कारण दोनों को ही नहीं जानते। अतः वे ही उचिततम् पात्र हैं जिन्हें उनके महाकारण से अवगत कराया जाये। क्योंकि वे स्वयं को अक्षम व असमर्थ मानते हैं। जामवंत जी ने उन्हें और जाग्रत किया:–

''कवन सो काज कठिन जग माहिं, जो नहिं होत तात तुम पाहिं।''

परन्तु हनुमान जी में कोई प्रतिक्रिया नहीं हुई, तो जामवंत जी ने प्रभु श्रीराम का ध्यान किया कि इस शिव-शक्ति के अवतार को मैं कैसे जाग्रत करूँ? प्रभु श्रीराम ने महाकारण का बोध करा दिया और जामवंत जी ने कहा:–

''राम काज लगि तव अवतारा, सुनतहिं भयहु पर्वताकारा।''

हनुमान जी एकदम विद्युत-धारा की तरह जाग्रत हो उठे:–

''सिंहनाद करि बारहिं बारा,
लीलहिं नाघहुँ जलनिधि खारा,
सहित सहाय रावनहिं मारि,
आनहुँ इहाँ त्रिकूट उपारि।''

वह हनुमान जी एक मिनट पहले जो घुटने में सिर दिये रो रहे थे 'जय श्रीराम, जय श्रीराम' कह कर सिंह के समान गरजने लगे। यह खारे जल का समुद्र मैं अभी लाँघता हूँ और रावण को उसकी सेना सहित मार कर आते समय वह त्रिकूट पर्वत ही उखाड़कर ले आऊंगा जिस पर लंका बसी

है। तुम सीता को ढूंढ लेना। उनमें इतनी शक्ति जाग्रत हो गई थी कि वे ऐसा अवश्य कर सकते थे। परन्तु इतनी अथाह शक्ति जाग्रत होने पर भी उन्होंने अपनी विवेक-बुद्धि नहीं खोई, जैसाकि अक्सर हो जाता है। उन्होंने जामवंत जी से पूछा कि इतना सब कर सकता हूँ पर मुझे उचित सलाह दीजिये कि मुझे क्या करना है:—

''जामवंत मैं पूँछहुँ तोहि,
उचित सिखावन दीजहुँ मोहि।
इतना करहुँ तात तुम जाइ
सीतहि देखि करहु सुधि आइ।''

तात, तुम केवल सीता का पता लगाकर आओ। मैं कथा-कहानियाँ नहीं सुना रहा हूँ, यहाँ व्यावहारिक जीवन के लिये महत्त्वपूर्ण बात क्या है? जिस समय आप अपने अकारण-कारण और कारण-कारण का त्याग कर देंगे, अपनी बुद्धि का अहम् छोड़ देंगे; उस समय आप प्रभु की दृष्टि में उचिततम् पात्र बन जायेंगे कि वो आपको आपके महाकारण से अवगत कराये कि मैंने तुझे विशिष्ट क्यों बनाया है और निर्णय को सुनने के बाद हनुमान जी की तरह आपकी शक्तियाँ भी असंख्यगुणा बढ़ जायेंगी। सत्य तो यह है कि वो शक्तियाँ प्रभु ने आपको दे कर भेजा है और आपने तुच्छ कर्मों के कारण पर अपनी मोहर लगाकर अपनी उन शक्तियों को आच्छाादित कर दिया है, ढक दिया है। आप नहीं जानते आप कितने सशक्त हैं? कुछ हमारे डाक्टरों ने बच्चों की बुद्धि का 'आई.-क्यू.' निकालना शुरू कर दिया और सत्यानाश कर दिया। अरे ! जो लाखों बच्चे विश्व में रोज़ पैदा होते हैं उनकी बुद्धि को कौन बनाता है? उस महाबुद्धि का, उस समुद्र का 'आई.-क्यू.' निकालिये। यह छोटी सी उत्कृष्ट बुद्धि जो प्रभु ने आपको दी है वह केवल इसलिये दी है कि ''ऐ मानव ! तू मात्र मेरी रचना की वाह-वाह कर, शेष सब कुछ मैंने ही करना है। तू अपनी बुद्धि का दुरुपयोग मत कर। सतनाम वाहे गुरु, सतनाम वाहे गुरु।''

लोग अपने एक घर को बनाने में विक्षिप्त हो जाते हैं। माँ के पेट में नौ

महीने सात दिन में एक कोशिका से एक अजूबा, एक चमत्कारिक देह कैसे निर्मित होती है, जिसका हम एक बाल भी नहीं बना सकते। सबसे बड़ा चमत्कार जो माताओं ने गर्भाधान के दौरान अनुभव किया होगा कि ठीक मध्य में, लगभग साढ़े चार महीने के गर्भ में बच्चे का हिलना शुरू होता है। यह वह समय है जब जीवात्मा को शरीर में प्रविष्ट कराया जाता है। जिस जीव ने प्रवेश करना होता है, प्रभु उसके अनुसार ही उसके शरीर की संरचना करते हैं और गर्भाधान का आधा समय जीवात्मा को उस शरीर के साथ रचने-बसने के लिये देते हैं। प्रभु बड़े कृपालु हैं। जीवात्मा को प्रारब्ध कर्मों, आसक्तियों को पूरा करने के लिये देह दी जाती है और साथ ही ऐसा विशेष ढाँचा दिया जाता है कि तू वो कर्म करना जिसके लिये मैंने तुझे यह विशिष्ट देह दी है। उन कर्मो को जानने के लिये तुझे मेरी शरण में बैठना पड़ेगा और अकारण कारण तथा कारण-कारण का त्याग करना पड़ेगा। इतनी जल्दी मैं तुझे नहीं बताऊँगाः—

''बहुत कठिन है डगर पनघट की''

तुझे पुरुषार्थ करना होगा और मेरी शरण में ढहना पड़ेगा कि प्रभु ! त्राहि माम्। मैं जन्म-जन्मान्तरों से धक्के खा रहा हूँ, **मैं वो कर रहा हूँ जो मैं भी कर सकता हूँ। मुझसे वह करवा जो मैं ही कर सकता हूँ।** वहाँ आप मुक्त होंगे। जो आप भी कर सकते हैं, उससे आपकी दुर्गति होगी।

मैंने गिलास और समुद्र का उदाहरण दिया था। एक गिलास है जो पानी से आधा भरा है, उसकी इच्छा होती है कि मैं पूरा भर जाऊँ, अतृप्त है वो। वह भर जाता है, कुछ समय के लिये संतुष्ट हो जाता है लेकिन जल्दी ही वह एक लोटा देख लेता है, फिर वही अतृप्ति। यह प्रक्रिया आगे भी चलती है—लोटा बाल्टी को देखता है, बाल्टी ड्रम को, ड्रम कुएँ को, कुआँ नदिया को और वह नदिया भी अतृप्त एवं असंतुष्ट भागती रहती है, जब तक अपना नाम व रूप खोकर समुद्र में लीन नहीं हो जाती। शास्त्र ने मायिक लोगों को पागल कुत्ता कहा है, क्योंकि वे धन के लिये पागल कुत्ते की ही तरह नाक की सीध में दौड़ते हैं। पत्नी ने कहा दो मिनट मेरे से बात कर लीजिये,

कि समय नहीं है। दूसरे, पागल कुत्ता पानी से डरता है, तो ऐसा मायिक व्यक्ति संत और सत्संग से डरता है। अगर गिलास को विवेक हो जाता, किसी संत की बात से अक्ल आ जाती, तो वह सीधा समुद्र में कूद जाता। उसे अपना नाम व रूप भी खोना नहीं पड़ता और उसे असीम की संतुष्टि भी मिल जाती तथा उसे अपने से बाहर खड़ा कुआँ भी गरीब नज़र आता कि तुम्हें जल की आवश्यकता हो तो मुझ से ले लेना, क्योंकि वह तो समुद्र में पड़ा है, इसलिये आध्यात्मिक व्यक्ति को कभी कम नहीं समझना, क्योंकि वह ईश्वर रूपी समुद्र से जुड़ा होता है। भगवान शंकर दिगम्बर हैं, तन पर मुर्दे की भस्मी ओढ़ते हैं और उनको कहा है—**विश्वनाथ।** माँ जगदम्बा अपने 108 स्वरूपों में सदैव उनकी सेवा में रहती हैं।

इसलिये यदि जीवन में आप **अकारण-कारण** बने हुए हैं, उन कर्मों को कर रहे हैं जो आपने स्वयं निर्मित किये हैं (स्वयंभू कर्म) तो स्वयं को मूर्ख घोषित कर देना, शर्माना नहीं। नया वर्ष शुरू होने वाला है और हम चाहते हैं कि आप अब उस महाकारण से प्रेरित होकर वही कार्य करें जिसके लिये आपको उसने बनाया है। यहाँ पर एक दैवीय अधिनियम और है—मान लीजिये वह आपको न बताये कि उसने आपका विशिष्ट ढाँचा क्यों बनाया है, क्योंकि ईश्वर आपसे बँधा हुआ नहीं है। उसे कई औपचारिकतायें देखनी पड़ती हैं। कुछ तो कई-कई जन्म बैठे रहते हैं। लेकिन आप बैठिये तो ! और यह मान तो लीजिये कि प्रभु ने आपको पृथक एवं विशिष्ट बनाया है और बार-बार पूछिये उससे। इसका एक लाभ यह होगा कि जो आप स्वयंभू-कर्म कर रहे हैं या जो संदर्भ-कर्म कर रहे हैं (प्रारब्धवश) आपके वो कर्म भी विशिष्ट हो जाते हैं। वह कर्म आप जैसा और कोई नहीं कर सकता। अमुक डाक्टर, अमुक अध्यापक, अमुक खिलाड़ी या कलाकार इतना मशहूर हो जाता है कि कई वर्षों तक लोग उसे याद करते रहते हैं।

इसलिये अपने तथाकथित स्वयंभू और संदर्भ-कर्मों में अपनी तथाकथित बौद्धिक व शारीरिक शक्तियों का दुरुपयोग मत करिये। अपना समय व्यर्थ होने से बचा लीजिये। नहीं तो आप फँसेंगे, आप अतृप्त, असंतुष्ट

और आसक्त रहेंगे और मृत्यु के समय ये आसक्तियाँ आपको अकाल मृत्यु में धकेल देंगी, जिसे अंग्रेज़ों ने कहा 'डैथ'। हमारे यहाँ 'डैथ' नाम की कोई चीज़ नहीं थी, हमारा निर्वाण होता था, गोलोकवासी होते थे हम, परम पद को प्राप्त होते थे हम, स्वर्ग सिधारते थे। आजकल 'डैथ' होती है पाश्चात्यानुगमन के कारण, क्योंकि लोग कोई न कोई आसक्ति लेकर मरते हैं।

यहाँ एक महत्त्वपूर्ण बात और हो जाती है कि जब अहम्वश हम कुछ करते हैं तो हमारे मानस में हर क्रिया की एक समान और विपरीत प्रतिक्रिया होती है। यह दैवीय अधिनियम है। यदि आपके मन में यह क्रिया हुई कि मैं बेहतरीन डॉक्टर हूँ तो उस समान व विपरीत मानसिक प्रतिक्रिया से आपके घर में ही कोई मरीज़ पैदा हो जाता है जिसका इलाज असम्भव हो। यदि आप कहें कि मैं बहुत अच्छा शिक्षक हूँ तो मानसिक प्रतिक्रिया स्वरूप आप ही के घर में ऐसा जड़-बुद्धि बच्चा पैदा हो जायेगा कि इसे पढ़ाकर दिखाओ! आप स्वयं अपना निरीक्षण-परीक्षण करना। आप फँस जायेंगे अहम् करने से और आप फँसे हुए हैं। क्लबों में जाकर चाहे कितना मुस्कुरा लें, लेकिन अन्दर से सब रो रहे होते हैं। दैवीय शासन में यह अहंकार नहीं चलेगा। अगर आपके हाथ से किसी का भला हो जाये, कोई आपकी प्रशंसा करे, तो उसके सामने चाहे खुश हो लेना, लेकिन घर में जाकर, प्रभु के दरबार में रोना और सब कुछ प्रभु को समर्पित कर देना। यदि आपने स्वयं को कर्त्ता-धर्त्ता मान लिया तो आपको ही भुगतना पड़ेगा, आप छूट नहीं सकते। दिव्य नियमानुसार उस उपलब्धि के बाद भी आप अतृप्त रहेंगे, असंतुष्ट रहेंगे, आसक्त रहेंगे और उसी अहं के अनुपात में विपरीत मानसिक प्रतिक्रियावश जब उसकी परिपूरक विधा आपके सामने आयेगी तो आप अशान्त भी हो जायेंगे। जो अशान्त होगा वो विक्षिप्त भी होगा, जो विक्षिप्त होगा वह भयभीत भी होगा और **जो भयभीत होगा वो संसार का भोग नहीं कर सकता, क्योंकि भय और भोग एक मंच पर नहीं रह सकते।**

अतृप्त, असंतुष्ट, आसक्त, अशान्त, असुरक्षित, विक्षिप्त, भयभीत–

इन सातों लक्षणों से युक्त व्यक्ति जीता-जागता प्रेत होता है। मर के तो वह प्रेत बनेगा ही, जीते-जी भी वह जहाँ बैठेगा उस वातावरण को प्रदूषित कर देगा। उसके बैठने या उसे याद करने से ही आपका रक्तचाप बढ़ जायेगा। इन लक्षणों को हम सभी लोग थोड़ा बहुत भुगत रहे हैं। इसलिये किसी भी वस्तु के कारण में स्वयं के अहम् को नहीं लगाना है। आपके हाथ में कुछ नहीं है, आपका हर क्षण, हर पल उस प्रभु का नाम लेते हुए बीते तो आप जीवन आनन्द से जीयेंगे। नहीं तो आप जीवन काटेंगे।

जीवन एक दिन का है। रोज़ प्रभु की कृपा से जैसे प्रगाढ़ निद्रा से आप जाग्रत होते हैं तो आपका नया जन्म होता है। रोज़ जन्मदिवस मनाइये। सूर्योदय से पूर्व उठकर, थोड़ा शुद्ध होकर देव-दरबार में एक, दो, तीन, पांच, सात जितनी चाहें जोत जलाइये और अपनी देह का समर्पण करिये—कि ''प्रभु ! आज आपने यह चमत्कारिक देह मुझे दी है, मैं नहीं जानता क्यों दी है ? हे महाकाल ! इसका कारण मैं नहीं हूँ। आप ही इसको चलाइये। जो भी मैं दिन भर करूँ वो आपकी शक्ति, कृपा एवं प्ररेणा से हो।'' शाम को '**ॐ नमः शिवाय**' का जाप करते हुए सो जाइये, वो आपका निर्वाण होगा। अगले दिन का कोई कार्यक्रम नहीं रखना। यदि अगले दिन का चिंतन करते हुए सोयेंगे तो रात को स्वप्न आयेंगे। जैसेकि मृत्यु के बाद कोई प्रेत-योनि में भटकता रहे। गहरी नींद नहीं आयेगी, नींद नहीं आती तो लोग दारू पीते हैं। जो आसक्तियों को लेकर अगले दिन के कार्यक्रमों में भटकते हुए सोते हैं, उन्हें ही नींद नहीं आती। अरे ! कल पता नहीं आपने उठना भी है या नहीं। आप आज का आनन्द लीजिये और हर कृत्य को प्रभु के चरणों में समर्पित कर दीजिये।

''बोलिये सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(22 दिसम्बर, 2002)

जगत

इष्ट-कृपा से आज आप सब महाजिज्ञासुओं के सम्मुख अति गम्भीर एवं परम रुचिकर विषय **'जगत'** रखूँगा, आपकी गहन एकाग्रता वांछनीय है। क्या है यह जगत, क्यों है यह जगत, हमारा और हमारे जगत का सम्बन्ध क्या है? प्रत्येक मानव का जगत भिन्न-भिन्न क्यों है, एक ही मानव को विभिन्न प्रकार के संसार में क्यों विचरना पड़ता है, इस सब का क्या रहस्य है? प्रत्येक जिज्ञासु मानव के हृदय में ये प्रश्न अक्सर उठते हैं।

कुछ समय पहले एक प्रवचन में मैंने वर्णन किया था कि इस भारत-भूमि के साधकों, जिज्ञासुओं एवं मनीषियों के हृदय में उस ईश्वरीय सत्ता को मानकर उसका सान्निध्य प्राप्त करने व साक्षात्कार करने के लिये ऐसी उत्कण्ठा उत्पन्न हुई जो जुनून बन गई। हज़ारों लाखों वर्ष पहले हमारे बड़े-बड़े राजा, महायोद्धा, महासाधक अपना राज-पाट त्याग कर उस सत्य की खोज के लिये जंगलों में निकल गये, उस **सच्चिदानन्द के बारे में जानने के लिये और उसको जानने के लिये**। ईश्वर-प्रदत्त उत्कृष्टतम् पराबुद्धि द्वारा उन्होंने चार वेदों की रचना की, जो स्वयं में ज्ञान थे। नृत्य, गायन, अर्थ-शास्त्र, भौतिकी, काम-शास्त्र, विश्व के सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु और समस्त महाब्रह्माण्ड के रहस्यों को जानने का प्रयत्न किया। चारों वेदों ने बहुत कुछ लिखा और अन्ततः सार-रूप में एक-एक महावाक्य कहा। एक वेद ने कहा **'अहम् ब्रह्मास्मि।'** दूसरे वेदों ने तुरन्त पकड़ लिया कि जिसके सामने तुम बोल रहे हो वह कौन है? इसी प्रकार दूसरे वेद ने कहा **'तत्त्वमसि।'** वह भी अधूरा साबित हुआ क्योंकि जो कह रहा है वह कौन है? तीसरे ने कहा **'प्रज्ञानम् ब्रह्म'** और चौथे ने **'अयम् आत्माब्रह्म'**। इन चारों

वेदों ने ब्रह्म के बारे में पूर्णतया जानने के लिये अपना अधूरापन मान लिया। परन्तु यहाँ एक बात बहुत आवश्यक है कि आज तथाकथित विकसित देश जिस विज्ञान की खोज का दावा करते हैं, वह सब हमारे वेदों से ही लिया गया है। दुर्भाग्यवश हम उसे भूलते गये और वे उसे ग्रहण करते गये। अन्ततः चारों वेदों ने एक शब्द पर सहमति प्रकट की–**'नेति'।** अर्थात् हम चारों वेदों ने जो कुछ पाया है, वह इति नहीं है।

ये चारों वेद पराबुद्धि का फल थे। पर वह भी अधूरी सिद्ध हुई। परन्तु इन महापुरुषों ने हार नहीं मानी और एक योजना बनायी कि यदि बुद्धि उस ब्रह्म को जानने में अक्षम है, तो बुद्धि को हटा दो। अतः समाधि द्वारा अपनी बुद्धि को किसी भी प्रकार से और सब प्रकार से सम करके सत्य को जानने का भरसक प्रयास किया, जिसके फलस्वरूप जो दर्शन शुरू हुआ उसका नाम था–**'वेदान्त'=वेद + अन्त।** अतः वेदों का जहाँ अन्त हुआ वहाँ से आत्मानुभूति एवं अन्तर्दृष्टि द्वारा समाधि में जो भीतर से प्रकट हुआ उसका सार वेदान्तियों ने लिखा–**दृष्टा-दृश्यवाद'।** गुरुनानक देव जी महाराज ने कहा–'**जो ब्रह्माण्डे सो पिण्डे'।** जो भी बाह्य जगत में आप अपनी देह सहित देख रहे हैं, सुन रहे हैं, स्पर्श कर रहे हैं, अनुभव कर रहे हैं, वह स्वयं आप ही हैं। **आपका जगत आप स्वयं हैं। यदि आप स्वयं को देखना चाहते हैं तो अपने जगत को देख लीजिये।** आपकी देह का आकार-प्रकार, आपका परिवार, पति-पत्नी, बच्चे, आस-पड़ौस, आपकी शिक्षा, आर्थिक स्थिति, जीवन-स्तर, धर्म-कर्म, मित्र-शत्रु, देश-विदेश जिसका सम्बन्ध आपसे है, वह आपका जगत है और आप वही हैं। हम तथाकथित पढ़े-लिखे लोग बात-बात में विश्व के जिन दार्शनिकों का उल्लेख करते हैं, वे सारे दार्शनिक हमारे वेदान्त के उत्पाद हैं। **विश्व का सारा विज्ञान हमारे वेदों का फल है और विश्व का समस्त दर्शन हमारे वेदान्त का उत्पाद है** क्योंकि ज्ञान में भारत ही सिरमौर है। इस भारत-भूमि व यहाँ की फ़िज़ाओं में और यहाँ की मिट्टी में ही वे तत्त्व हैं जिनकी वजह से भारत ही जगद्गुरु था, है और भारत ही जगद्गुरु रहेगा।

आपका जगत क्या है, आपका जगत आप स्वयं हैं, ऐसा क्यों है ? इसे बहुत सरलीकृत करने की कोशिश करूँगा। चार व्यक्ति एक ही कार में, एक ही स्थान से दूसरे स्थान पर, एक ही सड़क से जा रहे हैं और एक ही समय पर अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँचते हैं। वहाँ पहुँचने पर चारों को कोरा कागज़ दे दीजिए कि आप अपनी यात्रा का वर्णन करिये, तो चारों का वर्णन पृथक-पृथक होगा। एक ने कहा—यात्रा बेकार थी, बाहर दुर्घटना घटी हुई थी, यातायात अवरुद्ध था, ड्राइवर गाड़ी बेकार चला रहा था, आदि-आदि। दूसरे ने कहा—मुझे तो बहुत आनन्द आया, बाहर के दृश्य बहुत अच्छे थे, ड्राइवर बहुत कुशल था, मौसम बहुत अच्छा था आदि-आदि। इसी प्रकार तीसरे ने कुछ और कहा और चौथे ने कुछ और। यदि आप एकाग्र करके इसका कारण आत्मसात् करें तो आपको अपने जगत की अनुभूति यहीं इसी समय हो जायेगी। चारों का वक्तव्य अलग-अलग इसलिये है क्योंकि चारों की मानसिकता भिन्न-भिन्न है। एक व्यक्ति खराब मूड में घर से लड़कर चला, वह जहाँ भी देखता है, दुर्घटना देखता है, सड़क टूटी हुई देखता है। दूसरा प्रसन्न मन से चला, उसे फुलवारी और सुन्दर दृश्य ही दिखाई दिये, क्योंकि उसके मानस की रिकार्डिंग बड़ी शानदार थी। **जिसका मानस जैसा है उसका बाह्य प्रकटीकरण वैसा ही होगा।** इसी कारण हम एक ही जगत में विभिन्न जगत बना लेते हैं। आपका बाह्यजगत सर्वप्रथम आपकी देह है। कई लोग निरोग होते हुए भी रुग्ण ही रहते हैं और कई रुग्ण होते हुए भी परम स्वस्थ रहते हैं। **तो हमारी देह और हमारा जगत हमारे मानस का बाह्य प्रकटीकरण है।** यह कैसे होता है, इस आध्यात्मिक सूत्र को स्पष्ट करूँगा।

आपका मानस जो प्रकट करेगा आपकी ज्ञानेन्द्रियाँ उसका **प्रतिग्रहण** करेंगी क्योंकि ज्ञानेन्द्रियाँ आपके मानस की सेविकाएँ हैं, अतः वे आपके मानस के विरूद्ध नहीं जा सकतीं। यदि आपका मन खराब है तो बादल, बरसात, सुगन्धित वायु भी आपको बुरी लगेगी और दूसरा प्रसन्नचित्त मानस वाला उसी रिमझिम में मल्हार गायेगा, क्योंकि आपकी ज्ञानेन्द्रियों ने वही

ग्रहण करना है जो आपके मानस ने प्रकट किया है। आपका मन प्रसन्न हो तो कोई दाल-रोटी खिला दे तो आप तृप्त हो जाते हैं, नहीं तो चाहे कोई पूरा दिन परिश्रम करके स्वादिष्ट छप्पन भोग बनाये वह भी आपको बेकार एवं फीके लगेंगे। वैसे तो यदि खिलाने वाले का मन प्रसन्न हो तो खाने वाला भी प्रसन्न होगा, क्योंकि वह भी आपके मानस का ही प्रकटीकरण है। आपके नेत्रों, कानों, जिह्वा, त्वचा और नासिका ने वही ग्रहण करना है, जो आपके मानस ने प्रकट किया है। इसे आध्यात्मिक शब्दावली में **'प्रतिग्रहण'** कहा जाता है।

मानस **'प्रकटीकरण'** करता है और मानस के भावों से बनता है **'भव'।** संसार को इसीलिये **'भवसागर'** कहा गया है। अतः आपका भाव ही आपके भव यानि आपके जगत को प्रकट करता है। बाहर कुछ है ही नहीं। आपका जगत आपके भावों या मानस का प्रकटीकरण है और उसका प्रतिग्रहण करती हैं आपकी ज्ञानेन्द्रियाँ और वे वही ग्रहण करती हैं जो आपके मानस ने आदेश दिया। फिर आपकी बुद्धि से परामर्श लिया जाता है और आपकी बुद्धि अपनी **'प्रतिक्रिया'** व्यक्त करके हस्ताक्षर करती है। **मानस ने 'प्रकटीकरण' किया आपके जगत का, आपकी ज्ञानेन्द्रियों ने उसका 'प्रतिग्रहण' किया और आपकी बुद्धि ने उस पर 'प्रतिक्रिया' की।** यदि बुद्धि अहम् से युक्त है, तो वह प्रतिक्रिया भी मानस और इन्द्रियों के अनुकूल ही देगी और यदि बुद्धि विवेकमयी है, तो उसकी प्रतिक्रिया पृथक होगी, क्योंकि ईश्वर-समर्पित बुद्धि सब जगह आनन्द ही देखती है। सर्वत्र, सब कुछ ईश्वर-इच्छा से ही हो रहा है। जो बुद्धि आपके मानस के प्रकटीकरण और आपकी इन्द्रियों के प्रतिग्रहण से बँधी हुई नहीं होती, वह बुद्धि दैवीय होती है। **यदि हम अपने मानस को अत्यधिक सौन्दर्यमय और आनन्दमय बना लें तो हमारा जगत अत्यधिक सौन्दर्य और आनन्द से परिपूरित हो जायेगा।** कहने में बात बहुत सरल लगती है परन्तु वास्तव में है बहुत कठिन। किस प्रकार करें यह?

हमारे मानस में हमारे अपने जन्म-जन्मान्तरों के संस्कार अंकित हैं

जिसे कहा है **'प्रारब्ध'।** यह मानस निराकार है, जो देखा नहीं जा सकता। हमारे सम्पूर्ण जीवन—गर्भाधान से लेकर मृत्यु के बाद के क्रिया-कर्म तक का सारा लेखा-जोखा हमारे मानस में पहले से ही अंकित है। आप विशेष समय में, विशेष स्थान पर, विशेष माता-पिता से, विशेष आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक परिस्थितियों में पैदा क्यों होते हैं? कभी सुबह उठकर अपने अतीत का पुनरावलोकन करें तो आप जान जाते हैं और मान जाते हैं कि जीवन की विशिष्ट घटनायें आपसे परामर्श लेकर नहीं घटतीं। जीवन भौतिक निरन्तरता नहीं है, भूल जाइये। यह मत समझना कि मैं महीने में एक लाख कमा लेता हूँ तो साल में बारह लाख हो जायेगा और पाँच साल में इतना हो जायेगा! अगर आज आप करोड़पति हैं तो कल आपको भीख भी मांगनी पड़ सकती है। आज आप यदि आठ-दस भवनों के स्वामी हैं तो यदि वह ईश्वर चाहे तो कल आपको सड़क पर सुला सकता है। आप यदि आज किसी दफ्तर में बड़े अधिकारी हैं तो हो सकता है कल चपरासी आपको उसमें प्रवेश भी न करने दे। जीवन भौतिक निरन्तरता नहीं है, बल्कि जीवन आध्यात्मिक निरन्तरता है। भौतिक जगत में भागने वालो यह ध्यान रखना कि देह के एक साँस पर भी आपका अधिकार नहीं हैं। कल कुछ का कुछ हो सकता है। अगले साँस में ईश्वर न जाने क्या खेल दिखाये! यह वही जानता है, जिसने आपको पैदा किया है। इसलिये उसके साथ जुड़े रहकर जीवन के एक-एक क्षण का आनन्द लीजिये।

प्रश्न उठता है कि पूर्वांकित प्रारब्ध वाले मानस में हम हस्तक्षेप कैसे करें? उस मानस को अत्यधिक सौन्दर्य एवं आनन्द से परिपूरित करने का एक ही उपाय है कि जिस ईश्वर ने उस मानस में प्रारब्ध अंकित करके हस्ताक्षर किये हैं, उससे किसी भी तरह से और सब तरह से सम्पर्क किया जाये। किसी का अनुसरण मत करना, यह आपका अपना घरेलू, निजी और गुप्त मामला है। आप स्वयं सम्पर्क करना अपने परमात्मा से, जैसे आप चाहते हैं। किसी से परामर्श लेंगे तो आप भ्रमित हो जायेंगे, क्योंकि ईश्वर ने आपको सबसे विशिष्ट बनाया है। आप जैसा हसीन दुनिया में न कोई है, न

था और न होगा। अतः आप सब अपने ऊपर गर्व करिये। आपकी चाल अलग है, किसी की चाल चलने की कोशिश करेंगे तो आपकी अपनी चाल बिगड़ जायेगी। तो अपने उस इष्ट को अपना मान कर चलिये। उससे सम्पर्क करिये, क्योंकि प्रारब्ध में यदि आप परिवर्तन चाहते हैं तो वह मात्र पुरुषार्थ से ही सम्भव है। ईश्वर के निमित्त किये गये जो भी मानवीय कर्म हैं, वे सब पुरुषार्थ हैं। जो इसके विषय में नहीं जानते वे पशु हैं। उत्कृष्ट मानव की संरचना ईश्वर ने मात्र पुरुषार्थ के लिये ही की है, जिसके दो आयाम हैं–**'साधना** व **उपासना'** और इसके चार सोपान हैं–**'अर्थ**, **धर्म**, **काम** व **मोक्ष'।**

आज हम यह देखेंगे कि पुरुषार्थ द्वारा आप अपने मानस के पूर्वांकित प्रारब्ध में किस प्रकार हस्तक्षेप कर सकते हैं, अपने **'स्वार्थ-परमार्थ'** शीर्षक प्रवचन में भी मैंने इसका सविस्तार वर्णन किया है। यहाँ आयाम पृथक है। प्रश्न उठता है कि यदि मानस में प्रारब्ध पहले से ही अंकित है तो ईश्वर का नाम क्यों लिया जाये, समय व्यर्थ करने की क्या आवश्यकता है? क्योंकि हम सभी स्वार्थी हैं। उसका पहला लाभ होगा–**'संतुष्टि'**। प्रारबधवश आपको जो कुछ भी प्राप्त हुआ है–धन, सम्पदा, नाम, यश, सन्तान, पद, सम्बन्धी आदि उससे अक्सर मानव असंतुष्ट ही रहता है। लेकिन ईश्वर का भजन करने से जप, तप, यज्ञ, हवन, दान-पुण्य आदि करने से आपको जो कुछ भी प्राप्त है, उससे आप संतुष्ट हो जाते हैं। क्योंकि संतोष ही परम धन है। संतोष उस परम पिता परमात्मा की कृपा से ही आयेगा। कृपा से आपका भाग्य, सौभाग्य बन जाता है। भाग्य प्रारब्धवश मिलता है परन्तु ईश्वर-कृपा के बिना वह सौभाग्य नहीं बन सकता। क्योंकि संतुष्टि कृपा-साध्य है। हम महाशक्ति देवी के आगे प्रार्थना करते हैं:–

''देहि में सौभाग्यं, आरोग्यं, देहि मे परमं सुखं।''

दूसरे, प्रारब्धवश जो आपके जीवन में अप्राप्त है, पुरुषार्थ द्वारा, ईश्वर-भजन द्वारा प्रभु उस कमी की पूर्ति कर देते हैं। तीसरे, कई बार जीवन में बहुत कठिन समय आता है, देह, धन, पद, परिवार कई स्तरों पर जीवन के

लम्बे सफर में संघर्ष चलता रहता है, उस समय पुरुषार्थवश प्रभु-कृपा होने से बड़े-बड़े परिवर्तन आ जाते हैं। जैसे कई बार हम टी. वी. पर अनिच्छित दृश्य आने पर वी. सी. आर. द्वारा फास्ट-फॉरवर्ड कर देते हैं, टी. वी. बन्द करके या चलते-चलते। वैसे ही यदि प्रभु भी अत्याधिक कृपालु हों तो आपके कष्टों को फास्ट-फॉरवर्ड कर देते हैं। कभी-कभी तो बड़े-बड़े कष्ट स्वप्न में ही टल जाते हैं और कई बार तो जीवन के वे बड़े-बड़े कष्ट आपके जीवन की महत्त्वपूर्ण घटनायें बन जाते हैं। लोग आपको उन कष्टों से जूझने के लिये याद करते हैं। चौथे, प्रारब्धवश जो कुछ आप हैं, प्रभु उसका रूपान्तरण कर देते हैं। मानो आप एक व्यवसाय से तंग हो जायें तो प्रभु उसे बदल देते हैं। पाँचवा सबसे बड़ा महापरिवर्तन ईश्वर की महाकृपा से होता है—कि प्रभु आपके सम्पूर्ण प्रारब्ध को समाप्त करके पूरे जीवन को स्वयं चलाते हैं। लेकिन उसके लिये आपको अपने सम्पूर्ण जीवन का मुख़्त्यारनामा-आम प्रभु को देना पड़ता है:—

'बहुत जनम जिये रे माधो, ये जनम तुम्हारे लेखे।'

क्यों होती है कृपा, कहाँ होती है ? यह वह कृपा करने वाला ही जाने। बातचीत का विषय नहीं है यह। तो प्रभु आपके प्रारब्ध को हटाकर आपके जीवन को स्वयं चलाते हैं और आप दृष्टा बनकर उसका आनन्द लेते हैं। ये उपर्युक्त पाँच परिवर्तन आते हैं पुरुषार्थ-द्वारा, उस मानस में जिसमें हमारा प्रारब्ध पहले से ही अंकित है।

अब आगे कोई निरर्थक अंकन हमारे मानस में न हो, यह भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसका क्या उपाय है ? लोग नये वर्ष पर बधाइयाँ देते-लेते हैं, औपचारिकता सी बन गई है। अरे ! वर्ष 365 – 366 दिन का होता है। 365 दिन आपको 2003 लिखना पड़ेगा, लेकिन जीवन तो एक दिन का है। हमारी संस्कृति में हर दिन मुबारक हो, ऐसा कहा जाता है। आज का दिन आजतक के जिये गये समस्त दिनों से सबसे अधिक आनन्दमय हो, ऐसी प्रार्थना करनी है, रोज़। प्रत्येक दिन जब आपकी नींद खुलती है, आपका नया जन्म होता है, तो सूर्योदय होने से पहले उठकर अपना जन्म-दिवस

मनाइये। मैं वह तरीके बता रहा हूँ जिससे आपके मानस में कोई निरर्थक अंकन न हो, क्योंकि वही प्रारब्ध के रूप में आपको भुगतना पड़ेगा। जो आपके मानस में अंकन हो जायेगा उसका **प्रकटीकरण** अवश्य होगा और इन्द्रियाँ भी उसी का **'प्रतिग्रहण'** करेंगी और बुद्धि अपने हिसाब से **'प्रतिक्रिया'** व्यक्त करेगी, जो आपके जीवन को भयभीत, त्रसित, दुखी और निराशा से परिपूर्ण कर सकती है। अतः सावधान ! भविष्य में इसे परम विलक्षण कैसे बनाना है, उसका सूत्र बता रहा हूँ।

सुबह सूर्योदय से पूर्व शुद्ध होकर रोज़ देव-दरबार में पहुँचना और शुद्ध घी की जितनी चाहे जोतें जला कर प्रभु के आगे रोना, "कि प्रभु आपने मुझे नया जन्म दिया है। यह जो आज का दिन है, वह दुबारा कभी नहीं आयेगा।" वर्ष तो 365 दिन चलेगा, लेकिन आज का दिन फिर कभी नहीं आयेगा और आप जो आज हैं, वो कल नहीं होंगे। यह दो बातें ध्यान करके जब आप जोतें जलाकर इष्ट के सम्मुख बैठेंगे तो आपका तुरन्त ध्यान लग जायेगा। "प्रभु ! आज तुमने मुझे सोते से क्यों उठाया, यह देह मुझे क्यों दी, यह मैं नहीं जानता? हे महाप्रभु ! मेरा आज का दिन अत्यधिक आनन्दमय हो, क्योंकि मेरे जीवन का यह अन्तिम दिन है। मैं तुम्हें अन्तिम नमस्कार कर रहा हूँ। आप तो कल भी ऐसे ही होंगे पर मैं यह नहीं होऊँगा। तो प्रभु कुछ क्षण मुझे अपना सान्निध्य दे दीजिये। मैं पुण्यी हूँ, पापी हूँ, मेरी यह तुमसे अन्तिम मुलाकात है। बड़े-बड़े दुश्मन भी ऐसे समय में गले लग जाते हैं, अरे ! आज तक तुमने मुझे नकारा है, मेरी उपेक्षा की है, कुछ क्षण के लिये मुझे अपना दीदार दे दो। आज तुमने मुझे यह देह क्यों दी है? मैं नहीं जानता। आज का दिन मेरा परमोत्कृष्ट हो, आनन्दमय हो और आज के दिन इस देह द्वारा जो भी करवा, तू ही करवा।" जो कुछ भी दिन भर करिये प्रभु के साथ जुड़कर करिये, तो उसका अंकन मानस में बहुत ही अच्छा होगा और शाम को सोते समय **'ॐ नमः शिवाय'** कहते हुए निर्वाण को प्राप्त हो जाइये। यह आपका एक दिन का जीवन है।

कल जो दिन बीता वह हमारा पूर्वजन्म था और आज का दिन हमारा

नया जन्म है। कल की देह और आज की देह में कोई निरन्तरता नहीं है। यदि निरन्तरता है तो मात्र आपके इष्ट की वजह से आपके आध्यात्मिक जगत की है। इस प्रकार सुबह रोज़ प्रार्थना करने के बाद एक मानसिक सैर करना। काल-सागर में किश्ती लेकर उतर जाना और रोज़ सौ साल आगे चले जाना। अरे ! यह जीवन बीमा वाले हमारी भविष्य-निधि और भविष्य का बहुत ध्यान रखते हैं, तो कितने वर्ष के भविष्य का ध्यान रखते हैं? मैं सौ वर्ष आगे की बात कर रहा हूँ। आज जो भी तिथि या वर्ष है, उससे सौ साल आगे निकल जाना और मानसिक भ्रमण करते हुए वहाँ जाकर बैठ जाना और फिर निरीक्षण करना। अब आपका जो नामरूप है, वह तब नहीं होगा। आप होंगे लेकिन आप वो नहीं होंगे जो आज आप हैं। सैर की मैं केवल झलकियाँ दे रहा हूँ शेष सब आपको स्वयं करना है। रोज़ सौ साल जोड़ कर काल-सागर में आगे निकल जाना। आपका परिवार भी कोई न कोई होगा लेकिन वो नहीं होगा जो आज आपका है। फिर आप अपने घर जाना। अगर आपका वो घर तब तक होगा जो आपने बहुत हेराफेरी करके बनाया है, तो उस घर में कोई और रह रहा होगा जो न आपको पहचानेगा और न आप उसे पहचानेंगे। इसी प्रकार आप अपने बैंक, दफ्तर, दुकान, सम्बन्धियों आदि के पास जाना, तो आप देखेंगे कि सौ साल बाद वाले काल में वो कुछ भी नहीं रहेगा जिसके लिये आप चिन्तित रहते हैं। आप होंगे लेकिन आप वो नहीं होंगे जो आप स्वयं को मानते हैं। परन्तु एक चीज़ वहाँ होगी वैसी की वैसी बिना परिवर्तित हुए, और वह होगा—**आपका इष्ट।** वो वही होगा जो सौ साल पहले था। आप उसे पहचान जायेंगे और वो भी आपको पहचान जायेगा। आप जो होंगे उसकी वजह से होंगे और आज भी आप जो हैं, उसी की वजह से हैं। एक-एक शब्द पर एकाग्र करिये। आज से सौ साल बाद आप क्या होंगे? आप वही होंगे जो आपका इष्ट चाहेगा और आज भी आप वही हैं जो आपका इष्ट चाहता है।

यह सैर रोज़ करना, ईश्वर की कृपा से आपको ब्रह्मज्ञान हो जायेगा। तो रोज़ सुबह प्रार्थना करनी है। फिर सौ साल बाद की मानसिक सैर करनी

है। आपको बड़ा विश्राम मिलेगा। उसके बाद जब आप लौटेंगे आज की मानसिक स्थिति में तो वह दिन आपका स्वतः ही आनन्दमय हो जायेगा। आपको अपनी देह, परिवार एवं सम्पूर्ण जगत अच्छा लगेगा, क्योंकि आपको ज्ञात हो जायेगा कि यह सब आने-जाने वाली वस्तुएँ हैं। **अरे ! जीवन का, जगत का, अपनी देह का आनन्द लेना है, भोग भोगना है, तो उसकी अहमियत समाप्त कर दीजिये। जिस चीज़ का महात्म्य आपके दिल-दिमाग में होगा, वह चीज़ आपको भोग जायेगी।** आप उसका भोग नहीं कर सकते। यह सौ साल बाद की सैर अवश्य करना तो यह धन, सम्पदा, पुत्र, सम्बन्धी और आपका सम्पूर्ण जगत आपको अच्छा लगेगा। आपको ज्ञात हो जायेगा कि यह कुछ भी हमेशा मेरे पास रहने वाला नहीं है। इस प्रकार एक दिन का जीवन है और हम सांसारिक व्यक्ति प्राप्तियों के पीछे भागते रहते हैं और उसी में तथाकथित व्यस्त रहते हैं। कम से कम हम स्वयं से यह तो पूछें कि वो प्राप्ति हम क्यों चाहते हैं? क्योंकि हम उसका भोग करना चाहते हैं और भोग हम आनन्द के लिये करना चाहते हैं। आपको स्पष्ट हो जाना चाहिये कि प्राप्ति से भोग और भोग से आनन्द—**जबकि आनन्द आपका अपना स्वरूप है। आपके भीतर है आनन्द और आप चाहते हैं वस्तुओं से।**

स्वयं के आनन्द की अनुभूति के लिये आपको समाधिस्थ होना पड़ता है, तो कितना विरोधाभास है! वस्तुओं द्वारा जो आनन्द हम चाहते हैं, वह आनन्द हमारे भीतर है और वस्तुएँ बाहर हैं। वस्तुओं को आनन्द हमने देना है, उनसे जो सुख हम लेते हैं, वह सुख उन्हें हमारे अपने आनन्द से मिलता है। उदाहरणतः एक तांबे की तार है जिसमें विद्युत प्रवाहित होती है, वह विद्युत-धारा दिखाई नहीं देती, लेकिन बल्ब और समस्त उपकरण नज़र आते हैं। इनकी चमक-दमक उस विद्युत-धारा की वजह से है, जो स्वयं में दिखाई नहीं देती। इसी प्रकार संसार में जितनी चमक-दमक दिखाई देती है, वह समस्त, ईश्वर की माया है। जिसकी सारी चमक ईश्वर के निराकार मानस के कारण है। हम केवल बाहरी चमक के पीछे दौड़ते हैं और वस्तुओं

की प्राप्ति के पीछे भागते हैं तथा भागते-भागते हमारे भीतर की आनन्द-क्षमता मन्द पड़ जाती है। विद्युत-उपकरण बिना बिजली के व्यर्थ ही तो होंगे। इसी प्रकार सांसारिक प्राप्तियों की दौड़ में यदि आपके भीतर का आनन्द ही लुप्त हो जाये तो वो प्राप्तियाँ अवश्य ही सिरदर्द बन जायेंगी:–

'यूं तो तेरे बग़ैर मुझे कुछ कमी नहीं,
ये और बात है कि मयस्सर खुशी नहीं।
जिस ज़िन्दगी पे नाज़ है इतना हजूर को,
उस ज़िन्दगी का क्या है, अभी है, अभी नहीं।''

चीज़ें बहुत हैं लेकिन खुशी इसलिये समाप्त हो गई, क्योंकि भागदौड़ में आपका आनन्द लुप्त हो गया और आनन्द के लिये आपको विश्राम चाहिये, अन्तर्दृष्टि चाहिये। लक्ष्मीपति विष्णु को आपने कभी भागते-दौड़ते नहीं देखा होगा। वह क्षीर-सागर में सहस्त्रफन के शेष के ऊपर लेटे रहते हैं और लक्ष्मी उनके चरण दबाती रहती है। यदि आप भी अपने शेष यानि भस्मी पर लेटेंगे तो ऐश्वर्य आपके भी कदम चूमेगा। सत्तर किलो का आदमी जब विद्युत-शव-दाह में जलाया जाता है तो उसकी **एक किलो छः सौ ग्राम भस्मी बनती है। यही है आपका शेष।** हम दैवीय कानून बता रहे हैं, सत्य कह रहे हैं। यदि आप अपनी भस्मी रूपी शेष का रोज़ अध्यास करेंगे तो संसार की सारी विभूतियाँ आपकी ओर दौड़ना शुरू कर देंगी। जहाँ शव जलते हैं वहाँ शिव का वास होता है। शिव के अन्दर शक्ति समाहित रहती है। यदि आप उस शिव की अनुभूति को आत्मसात् करना चाहते हैं, शिवत्व का सान्निध्य चाहते हैं, तो आपको जीते जी शव बनना पड़ेगा। क्योंकि आप और कुछ बनें या न बनें आपको शव अवश्य बनना है।

हम सभी वस्तुतः एक हैं। नामरूप की भिन्नता केवल बाहरी है, माया है। हम सभी मां के गर्भ में लगभग नौ महीने सात दिन रहे। हम सभी खाली हाथ नंगे-भूखे पैदा हुए। हम सबको अपनी मृत्यु के समय, स्थान, कारण का ज्ञान नहीं है परन्तु यह ज्ञान है कि हम सभी अवश्य मरेंगे और हम सबकी भस्मी एक जैसी ही होगी। हमारा आदि एक है, अन्त एक है, अरे ! मध्य भी

एक है। मैं यहाँ वक्ता बनकर तभी बैठा हूँ जबकि आप श्रोता बनकर बैठे हैं। नहीं तो क्या मैं दीवारों को सुनाऊँगा, और यदि श्रोता हों लेकिन वक्ता न हो तो वे किसको सुनेंगे ? हम एक ही हैं। जैसे हमारी देह का एक-एक अंग महत्त्वपूर्ण है, वैसे ही समाज की प्रत्येक इकाई स्वयं में महत्त्वपूर्ण है। हम में से चाहे कोई राजा हो या भिखारी, सब की माँ के गर्भ की अवधि एक है और सभी को ख़ाक बनना पड़ेगा, तो हम एक दूसरे के गले क्यों नहीं मिलते ! जाति में, धर्मों में क्यों जाते हैं ?

संसार में प्रत्येक जीव प्राप्तियों के पीछे भागता है और उन्हीं के लिये तथाकथित कर्म करते हुए व्यस्त रहता है तथा अपने भीतर का आनन्द गवां बैठता है और वे प्राप्तियाँ हमें आनन्द तो क्या देगीं, मुसीबत बन जाती हैं। हमारे द्वारा जो भी कर्म किये जाते हैं, उनका कोई न कोई कारण अवश्य होता है। कारण के बाद उसका कर्त्ता होता है, कर्त्ता के बाद कर्म से पहले की वृत्ति होती है, फिर कर्म होता है और कर्म के बाद भी एक वृत्ति होती है, जो ईश्वर द्वारा अनुमोदित होती है और वही उस कर्म के फल का बीज बनती है, जिससे कर्म-फल उगता है। अक्सर हम लोग भूल कहाँ करते हैं, कि हम प्रत्येक कर्म की उपलब्धि या प्राप्ति को उसका फल मान लेते हैं। पढ़ाई करते हैं डिग्रियों की प्राप्तियों के लिये, व्यापार करते हैं आर्थिक लाभ के लिये, दान देते हैं समाज में मान-प्रतिष्ठा के लिये आदि-आदि। **जबकि कर्मफल वह प्राप्ति नहीं है। वस्तुतः उस प्राप्ति के बाद जो हमारी मानसिक स्थिति बनती है, वह उस कर्म का फल होती है, जिसकी हम पूर्णतया उपेक्षा कर देते हैं।** बड़ी महत्त्वपूर्ण बात है। कभी-कभी तो हम प्राप्तियों के बाद मानसिक तौर पर विक्षिप्त हो जाते हैं। हमें उस प्राप्ति पर एकाग्र करके, अपने मानस का अध्ययन करना चहिये। आप उस प्राप्ति के होने की कल्पना कर लीजिये। यदि आप और धन कमाना चाहते हैं तो ज़रूरत से ज़्यादा धन आप बैंक में ही तो रखेंगे, आप कल्पना कर लीजिये कि विश्व के सभी बैंकों में आपका ही धन है तो क्या हो जायेगा अथवा आप उन लोगों को देख सकते हैं जिन्हें वे प्राप्तियाँ पहले से ही हैं, वे कितने सुखी

हैं? दुर्भाग्य तो यह है कि हम यह भी नहीं जानते कि हम कोई वस्तु प्राप्त करना क्यों चाहते हैं? आप पहले स्वयं का निरीक्षण करिये कि आप जिस तरफ भाग रहे हैं, क्यों भाग रहे हैं? प्राप्ति के बाद की मानसिक स्थिति की बात छोड़िये, आप अन्धाधुंध भाग रहे हैं, बस। यदि आप सही दृष्टि से स्वयं को देखेंगे तो आपकी बुद्धि और मानस आपको दुत्कारेगा। अतः आप प्रत्येक कर्म की उपलब्धि की कल्पना करके अपनी मानसिक स्थिति का निरीक्षण करें तो बिना कर्म किये ही आपको उस प्राप्ति के बाद की अनुभूति हो जायेगी। आपकी विवेक बुद्धि जाग्रत हो जायेगी और आप उसी प्रकार अपने जीवन को अनुशासित कर लेंगे तथा यह भी देखेंगे कि आपको ईश्वर को भजने का बहुत समय मिलता है, नहीं तो आप जीवन को निरर्थक नहीं नकारात्मक ही बिता देंगे।

मैंने तीन प्रकार के कर्मों का उल्लेख किया था—**स्वयंभू कर्म, संदर्भ कर्म और स्वतःकर्म।** यह बड़ी नयी शब्दावली है और इसका विस्तृत वर्णन मैंने **'कारणम्-कारणानाम्'** वाले प्रवचन में किया था, अनेक उदाहरण भी दिये थे। **स्वयंभू कर्मों में हम अकारण ही कारण बन जाते हैं** और धक्के खाते हैं, क्योंकि हम खाली नहीं बैठ सकते। ऐसे कर्मों में पहले तो प्राप्ति ही नहीं होती और यदि होती भी है तो वह आपको विक्षिप्त करके ही छोड़ती है। **दूसरे, प्रारब्धवश जो संदर्भ कर्म होते हैं, बुद्धि के अहम् से उन कर्मों का कारण भी हम स्वयं को घोषित कर देते हैं,** तो उसका फल भी आपके लिये आनन्ददायी और सुखद नहीं होता। जिनके लिये वे कर्म होते हैं वे स्वयं में प्रसन्न रहते हैं। यदि प्रारब्ध में अंकित उन कर्मों के कारण आप स्वयं बने तो उसका फल आपके लिये दुःखद ही होता है। आपकी मानसिक स्थिति आनन्दमय नहीं रहती। **तीसरे कर्म वे हैं जो स्वतः ही होते हैं और जिनके कारण आप चाहें भी तो नहीं बन सकते।** प्रभु को ज्ञात था कि आप अकारण-कारण भी बनेंगे और प्रारब्ध के अन्तर्गत हुए सन्दर्भ कर्मों के कारण भी बनेंगे। अधिकतर बुद्धिजीवी अपनी तीन चौथाई ज़िन्दगी इसी में व्यर्थ कर देते हैं। **प्रभु ने इसीलिये तीसरे कर्म ऐसे रखे जिसका कारण यदि हम**

स्वयं को मानेंगे तो मूर्ख घोषित कर दिये जायेंगे। जैसे हमारे जन्म व मरण की तिथि, स्थान, माता-पिता, शिक्षा, पति-पत्नी-बच्चे इन सबके कारण प्रभु स्वयं हैं। आपका जो डिज़ाइन प्रभु ने बनाया है, विशिष्ट बनाया है। हम कष्ट क्यों भोग रहे हैं? क्योंकि हम वह कर रहे हैं जो **हम भी** कर सकते हैं और प्रभु ने हमें एक विशिष्ट कर्म के लिये डिज़ाइन किया है जो **हम ही** कर सकते हैं। इसीलिये हमारा रंगरूप, प्रतिभाएँ और शक्ति व सारा ढाँचा एक दूसरे से नहीं मिलता। क्योंकि ऐसा कोई विशिष्ट कर्म है जिसे आप ही कर सकते हैं। लेकिन उस कार्य को ईश्वर ने बिल्कुल ही गुप्त रखा है, क्यों? ऐ मानव! तू मेरी शरण में आकर मुझसे पूछ कि मैंने तुझे विशिष्ट देह क्यों दी है? **जब तक आप स्वयंभू कर्मों (अकारण-कारण) और संदर्भ कर्मों (कारण-कारण) का समर्पण नहीं करेंगे, तब तक वह आपको स्वतः कर्मों (महा-कारण) के विषय में नहीं बतायेंगे।** इसीलिये प्रभु ने रहस्यमय तरीके से उन कर्मों को गुप्त रखा है, जिनके लिये विशिष्ट ढाँचा आपको मिला है। तो प्रभु से प्रार्थना करनी है कि—"हे प्रभु! यह देह जो आपने मुझे दी है, उसके द्वारा हुए प्रत्येक कर्म के कारण, कर्त्ता, कर्म और कर्मफल आप ही हैं। हे प्रभु! मेरी मानसिक स्थिति आनन्दमय रहे, मुझे नहीं मालूम कि यह कर्म आप मेरे द्वारा क्यों करवा रहे हैं?

"यदि प्राप्ति को लक्ष्य बना कर और स्वयं को कर्म का कारण मानकर कर्म करेंगे तो आप शत-प्रतिशत भारी मुसीबत, कष्ट और विक्षेप में अवश्य पड़ जायेंगे। आप उसका भोग कभी नहीं कर सकते। यदि आप अपने जीवन का सुख लेना चाहते हैं, अपने जगत को आनन्दमय बनाना चाहते हैं तो किसी भी वस्तु की उपलब्धि के लिये कर्म नहीं करना और स्वयं को कारण घोषित नहीं करना। यह आध्यात्मिक तकनीक है जो बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि सौ वर्ष बाद जब आप स्वयं को देखेंगे तो वो सभी तथाकथित उपलब्धियाँ जो आपने की हैं, आपके पास नहीं होंगी। सौ वर्ष बाद क्या रोज़ भी जब आप रात को सोते हैं तो क्या अपनी प्राप्तियों और वस्तुओं को साथ लेकर सोते हैं? अरे! सोते वक्त हमें उनका ख्याल भी नहीं होता। आप के

साथ आपका आनन्द ही जाता है। सोते वक्त आपको रोज़ विश्राम चाहिये, जिसके लिये आपको मात्र आपके स्वयं के आनन्द की आवश्यकता है। जीवन के अन्त में हमें अपना आनन्द ही चाहिये:—

''आग़ाज़ को कौन पूछता है अन्जाम अच्छा हो ज़िन्दगी का।''

हमारी वस्तुएँ हमें मरने नहीं देंगी। जब ट्रेन बदलते हैं तो जितना हल्का सामान होगा, उतने ही हम निश्चिन्त होंगे। इसलिये अपने सामान को, अपने जगत को हल्का करते जाइये। आपकी ज़्यादा वस्तुएँ आपकी परेशानी का कारण बन जायेंगी। कई लोग मरते समय तड़पते रहते हैं, क्योंकि उनकी वस्तुएँ, धन, भवन और उनके सम्पूर्ण जगत की आसक्तियाँ उन्हें मरने नहीं देतीं। इसलिये एक दिन का जीवन है। रोज़ सुबह उठते ही आनन्द से देव-दरबार में जोत जलाकर, अपनी देह का समर्पण करके जन्म-दिवस मनाइये और रोज़ सौ वर्ष आगे की मानसिक सैर करिये। तो आपको अपने सम्पूर्ण जगत की वास्तविक अहमियत का बोध हो जायेगा। **किसी भी उपलब्धि को कर्मफल नहीं मानना और किसी कर्म का कारण स्वयं को घोषित नहीं करना। प्रत्येक क्षण उस महाकारण से जुड़े रहते हुए यदि हम अपना जीवन व्यतीत करेंगे, तभी हम अपने जगत का भोग कर सकेंगे और उत्कृष्टतम जीवन जी सकेंगे।**

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(5 जनवरी, 2003)

अद्य-दिवसम्

आज आप सब की प्रेरणा से एवं इष्ट की परम कृपा से आपके सम्मुख अति सरल एवं अति जटिल विषय प्रस्तुत करूँगा। विषय का नाम है—**'अद्य-दिवसम्' यानि आज का दिन।** जीवन का यदि कोई सबसे महत्त्वपूर्ण समय है, तो वह है—'आज का दिन'। क्या है यह आज का दिन, क्या रहस्य है आज के दिन का, इसका भौतिक स्वरूप क्या है, आध्यात्मिक स्वरूप क्या है, क्या विशेषताएँ है इसकी? सम्पूर्ण जीवन-काल में इस आज के दिन का क्या महात्म्य है, युगों-युगान्तरों के महाकाल-चक्र में इस आज के दिन का क्या स्थान है, आज के दिन को अति उत्कृष्ट, विलक्षण एवं आनन्दमय व्यतीत करते हुए किस प्रकार हम परम रहस्य को, परम सत्य को प्राप्त कर सकते हैं? इन विभिन्न पहलुओं पर आज, इष्ट-आदेश से प्रकाश डालूंगा, आप सबकी परम एकाग्रता वांछनीय है।

पृथ्वी के इस भूमण्डल के एक भूखण्ड को लीजिए, जहाँ पर सूर्योदय एवं सूर्यास्त का समय एक ही हो और वहाँ के एक, दो या पाँच हज़ार व्यक्तियों को लीजिए तथा संध्या के समय उनकी प्रतिक्रिया सुनिए, कि आपका आज का दिन कैसा रहा? एक ही तिथि, एक ही महीना और एक ही वर्ष हो, तो आप पाएँगे कि उन सबकी प्रतिक्रिया उस दिन के बारे में पृथक-पृथक थी। बड़ा चमत्कारिक विषय है। किसी ने आज के दिन कुछ खोया है, किसी ने पाया है, कोई अस्वस्थ हो गया, कोई स्वस्थ हो गया, किसी ने अपने बच्चे को स्कूल में प्रवेश दिलाया, किसी के बच्चे की शिक्षा पूरी हो गई, किसी की कार्यालय में उन्नति हुई, किसी की अवनति हुई,

किसी का तबादला हुआ, किसी का व्यापार विस्तृत हो गया, किसी को कोई शत्रु मिला, किसी को कोई मित्र मिला, किसी का कोई मित्र शत्रु बन गया, किसी का कोई शत्रु मित्र बन गया। बड़ा कुछ हुआ इस आज के दिन में। इस प्रकार असंख्य लोगों की विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रियायें आपको इस एक दिन के बारे में सुनने को मिलेंगी। प्रत्येक के जीवन में अलग-अलग घटनाएँ घटीं, कोई दुर्घटना या कोई सुघटना हुई। यह है आज के दिन का भौतिक स्वरूप।

अब और आगे चलिए। एक ही भूखण्ड में एक जैसा मौसम था— आकाश स्वच्छ था या बादल छाये हुए थे या वर्षा हो रही थी या आँधी-तूफान आया या लू चली। उस मौसम के बारे में भी अलग-अलग प्रतिक्रियाएं सुनिए प्रत्येक व्यक्ति की। किसी को मौसम बहुत अच्छा लगा, किसी के लिए मौसम बहुत खराब था, किसी ने उस मौसम पर कविता रच दी, किसी ने गीत गाये, नृत्य किया और कोई घर बैठकर रोया कि आज का मौसम कैसा हो गया ! एक ही मौसम पर विभिन्न प्रतिक्रियाएँ और एक ही दिन में विभिन्न घटनाएँ प्रत्येक व्यक्ति के साथ घटती हैं, यदि हम इस छोटी सी बात पर विचार करें, चिन्तन करें, मनन करें तो हमें सम्पूर्ण सत्य का दिग्दर्शन हो जायेगा।

मान लीजिए, घटनाएँ तो विभिन्न घटीं परन्तु एक ही मौसम के बारे में सबने विभिन्न प्रतिक्रियाएँ क्यों दी? मौसम ने उन्हें प्रभावित किया या उन्होंने मौसम को प्रकट किया। परम एकाग्रता का विषय है। वस्तुतः बाह्य जगत हमारे भीतरी मानस का प्रकटीकरण है। मानव-मन का उस दिन जो बाह्य प्रकटीकरण होता है, वही होता है प्रत्येक का बाहरी जगत। यदि हमारा मन उन्मादित, हर्षित, उल्लसित है तो बाह्य जगत भी हमें उसी तरह दिखाई देगा। जैसाकि मैं अपने **'जगत'** शीर्षक प्रवचन में उदाहरण दे चुका हूँ कि चार व्यक्ति एक ही गाड़ी में एक ही स्थान से गन्तव्य स्थान पर पहुँचते हैं तो चारों की प्रतिक्रिया अपनी-अपनी यात्रा के बारे में पृथक-पृथक होती है। ऐसा क्यों होता है, क्योंकि जिसकी जो मानसिक स्थिति थी, उसने बाह्य

जगत को उसी के अनुसार देखा। ''**जो ब्रह्माण्डे सो पिण्डे**'' गुरु महाराज ने कहा है हम बाह्य जगत में वही देखते हैं जो हमारा मन बाह्य जगत में प्रकट करता है। मन ने प्रकटीकरण किया और हमारी ज्ञानेन्द्रियों ने उसका प्रतिग्रहण किया क्योंकि इन्द्रियाँ मन की सेविकाएँ हैं। परन्तु बुद्धि की प्रतिक्रिया मन और इन्द्रियों के अनुकूल भी हो सकती है, प्रतिकूल भी। यदि बुद्धि विवेकमयी है और मन मानविक है तो वह मन से बँधी हुई नहीं है, उसकी प्रतिक्रिया नितान्त पृथक होगी। कई बार मन और बुद्धि में संघर्ष हो जाता है। विचित्र बात यह है कि हम चिंतित और तनावित रहते हैं कि हमारी अमुक व्यक्ति या सम्बन्धी से नहीं बनती परन्तु सत्य यह है कि हमारी स्वयं अपने से ही नहीं बनती। यदि हम स्वयं के साथ बैठें जिसकी हमारे पास फुर्सत नहीं है, दुनिया के बारे में बातें करने, चुगली-निन्दा करने के लिए हमारे पास बहुत समय है। हम सबके बारे में अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते रहते हैं न्यायाधीश की तरह, कि अमुक व्यक्ति घटिया है, अमुक व्यक्ति बहुत बढ़िया है। जो घटिया है उसे हम बढ़िया बना देते हैं, आदि-आदि। लेकिन हम स्वयं कैसे हैं, अपना सामना करने से हम डरते हैं। आज विश्व में जितनी भाग-दौड़ है, उसकी वजह यह है कि हम खुद के पास नहीं बैठ सकते। हम स्वयं का सामना करने में भयभीत हैं। इसलिए हम जन्म-जन्मान्तरों में भटकते हैं और भटकते ही रहेंगे। लेकिन आज से ऐसा नहीं होगा, आज हमें आज के दिन के महत्त्व को समझना है।

आज का दिन हमारे जीवन में प्रथम बार आया है और आज का दिन हमारे जीवन में आखिरी बार आया है। आज के दिन जो देह हमें दी गई है वो आज पहली बार मिली है और शाम को इस देह का निर्वाण हो जायेगा। शास्त्र ने इसको **'नित्य नूतन'** कहा है। आज का दिन आपके सम्पूर्ण जीवन-काल में फिर कभी नहीं आएगा। अतः आज का दिन अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। सुबह उठते ही यदि इस परम सत्य का दिग्दर्शन करें, चिन्तन करें, मनन करें तो आपके रोंगटे खड़े हो जाएँगे। अरे ! इसके एक-एक क्षण का, एक-एक पल का क्यों न अत्यधिक आनन्द लिया जाये। और विशेष

बात ये जितनी यह है कि आज के दिन का कोई क्षण, कोई भी पल आपके हाथ में नहीं है। अगर आपने कार्यक्रम निर्धारित किए हैं, अगर किसी मीटिंग में आपको 10 बजे जाना है तो हो सकता है कि वह स्थगित हो जाये वह 10 की बजाय 12 बजे हो या उस मीटिंग में आपको जिससे मिलना है वह ही न आये, जैसाकि अक्सर होता है। हो सकता है उस मीटिंग के कार्य-कलाप में आपका मन खराब हो जाये और यह भाव बने कि मैं कि मैं वहाँ गया ही क्यों था! मीटिंग आपने निर्धारित की लेकिन उसका समय और उसका फलीभूत होना आपके हाथ में नहीं है। अमुक समय पर आपने अपनी दुकान पर पहुँचना है, आप जा भी सकते हैं नहीं भी, ये आपके हाथ में नहीं है। आपकी दुकान में लाभ हो या हानि हो, कोई ग्राहक आए या न आए, वह भी आपके हाथ में नहीं है। भूल जाइए कि आप वक्त के बहुत पाबन्द हैं या आप बहुत अनुशासित हैं, होंगे आप अपने लिए पर खुदा के लिए नहीं। ये बातें सब रोज़ सुबह लेटे-लेटे सोचना क्योंकि बिस्तर से एक दम तो उठा नहीं जाता। बहुत ही सरल बातें बता रहा हूँ, लेकिन ये हैं बहुत जटिल। आपके कार्यक्रम आपके हैं, वे पूर्ण हों या न हों, जो परिणाम आप सोच रहे हैं, हो सकता है उसके बिलकुल विपरीत परिणाम निकले। इसलिए महापुरुष कोई कार्यक्रम नहीं बनाते।

मैंने **'कारणम्-कारणानाम्'** शीर्षक प्रवचन में तीन प्रकार के कर्मों की बड़ी विस्तृत चर्चा की थी **स्वयंभू कर्म, सन्दर्भ कर्म और स्वतः कर्म,** जिसके कुछ अंश यहाँ देना आवश्यक है। सबसे निकृष्ट कोटि के कर्म हैं—**स्वयंभू कर्म**—जिसमें हम स्वयं ही खुदा बन जाते हैं और अकारण ही कारण बनकर पूरा जीवन व्यर्थ बरबाद कर देते हैं। 90 प्रतिशत हमारी दौड़ इन्हीं नकारात्मक एवं निरर्थक कर्मों के लिए होती है, उसमें हम तथाकथित व्यस्त रहते हैं। ये कर्म हम स्वयं व्यर्थ ही निर्धारित कर लेते हैं, यह ज्ञात होते हुए भी कि जहाँ पर जो कार्य होना है, उचित समय पर हो ही जायेगा। जहाँ-जहाँ प्रारब्ध में जो-जो अंकित है, वह स्वतः ही समयानुसार घटता जाता है।

अरे ! ईश्वर की चीज़ें ईश्वर पर छोड़िए। जैसे आपको स्वतः ही जन्म मिला है, एक माता-पिता मिले, परिवार मिला, शक्ल-सूरत मिली, देश-समाज मिला, बौद्धिक, शारीरिक, मानसिक शक्ति मिली, ऐसे ही पूरे जीवन का संघटन स्वयं में पूर्ण है, बहुत ही सुन्दर है। मात्र आपको उस पर अपनी निगाह रखनी होती है, ताकि आप जीवन के स्वतःभाव को विश्रृंखलित न करें, लेकिन हम बुद्धिजीवी लोग अवश्य करते हैं और भुगतते हैं। एक परम सत्य आपके सामने रख रहा हूँ कि मन्द बुद्धि के लोग जीवन में मस्त रहते हैं और तेज बुद्धि के लोग हर वक्त तनावित ही रहते हैं। तो हम **स्वयंभू कर्त्तव्य** अपने ऊपर थोप कर उनमें व्यस्त रहते हैं। हम वो कर रहे हैं जो हम भी कर सकते हैं। आप स्वयं से प्रश्न करिए कि तू क्या कर रहा है? अगर तू नहीं करेगा तो क्या वह काम नहीं होगा। तो आपकी अन्तरात्मा भीतर से आवाज़ देगी कि तेरे बिना बढ़िया होगा, क्योंकि किसी के बिना संसार रुकता नहीं है। मैं आज के दिन का भौतिक वर्णन कर रहा हूँ। इसके सत्य का यदि दिग्दर्शन करना हो तो कुछ देर अपने पास के शमशान घाट पर जाकर देख लीजिए। आपको मालूम चल जाएगा कि आप भी प्रतीक्षासूची में ही हैं। कुछ लोग तो हमारे दुनिया से जाने के बाद बड़े खुश होंगे। हम व्यर्थ ही बहुत जिम्मेवार बने हुए हैं क्योंकि हम वह कार्य करते हैं जो हम भी कर सकते हैं और हम न करें तो कोई भी कर सकता है। जिसके लिए अंग्रेज दार्शनिक ने कहा है–**"Nobody is indispensible."** लेकिन यह केवल मानव का भौतिक पक्ष है। मैं इसका आध्यात्मिक पक्ष बताता हूँ–**"Everybody is highly indispensible."**

ईश्वर ने आप सबको बहुत पृथक बनाया है, कोई भी संसार का एक व्यक्ति दूसरे से नहीं मिलता। आपका रंग-रूप, कद, चाल सब कुछ पृथक है। आप सब स्वयं में बहुत हसीन हैं, आप जैसा न कोई आज तक पैदा हुआ है, न आज है और न होगा। इसके पीछे ईश्वर का कोई विशेष कारण अवश्य था, जिसके तहत आपको ईश्वर ने सबसे पृथक बनाया कि आप वह करें जो मात्र आप ही कर सकते हैं। लेकिन हम स्वयं को उन कार्यों में व्यस्त रखते

हैं जो हम भी कर सकते हैं। जिस कार्य के लिए ईश्वर ने हमें बनाया, उसे जानने की हमारे पास फुर्सत नहीं है। न हम उस सत्य को जानते है और न जानना चाहते हैं। इसलिए ईश्वर भी नहीं बताता। जितना असाधारणता की ओर बढ़ना है उतना तप चाहिए, कृपा चाहिए, खुला होना पड़ता है, खाली होना पड़ता है और हम व्यस्त हैं **स्वयंभू कर्मों** में, जिनका अर्थ ही कुछ नहीं है। लेकिन वे कार्य जिनके लिए आपको देह मिली और जो आप ही कर सकते हैं, उनके लिए प्रभु से पूछिए—हे प्रभु ! आपने मुझे सारी दुनिया से अलग क्यों बनाया है? इसे जानने के लिए आपको उसके चरणों में नियमित हाज़िरी भरनी पड़ेगी, बिल्कुल खाली होकर कि प्रभु मुझे कुछ काम नहीं है, जो काम सारी दुनिया कर रही है, वो मुझसे क्यों करवाते हो? यदि आप पनवाड़ी हैं और आप दुकान पर नहीं जाएँगे तो क्या लोग पान खाना बंद कर देंगे? नाई हैं, धोबी हैं, चिकित्सक हैं, उद्योगपति हैं, कुछ भी हैं, अगर आप वो न करें तो क्या लोगों का काम नहीं चलेगा? अरे ! बहुत अच्छा चलेगा। इसके लिए पहले आपको पूर्णतः नितान्त खाली होना पड़ेगा। यह पहली विशेष औपचारिकता है उस कर्म को जानने के लिए जिसके लिए ईश्वर ने आपको विशेष दैहिक ढांचा दिया है। दिल, दिमाग, मन और रूह सबसे जब प्रभु यह परीक्षण कर लेंगे कि यह खाली है और मैंने इसे पूर्णतः स्वचलित और वातानुकूलित देह दी है, जिसके पालन-पोषण के लिए पृथ्वी, जल, वायु, सागर, आकाश और न जाने क्या-क्या बनाया है, तो कुछ न कुछ इससे करवाना ही पड़ेगा। ऐसे ही कर्मों को स्वतः कर्म कहते हैं। **जिनके तहत प्रभु स्वयं वह कर्म आपसे करवाएंगे जो मात्र आप ही कर सकते हैं और जब वह कार्य आपको याद आयेगा, उसके साथ एक दिव्य अधिनियम है कि आपकी समस्त शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक शक्तियां तुरन्त असंख्य गुणा बढ़ जायेंगी।**

बात आज के दिन पर चल रही है। जब-जब कोई ऐसे महापुरुष उत्पन्न होते हैं जो प्रभु की शरण में बैठ जाते हैं, उसमें समाहित हो जाते हैं, न केवल यह जानने के लिए कि मुझे किसलिए बनाया है, बल्कि उस परम

सत्य को आत्मसात् करने के लिए भी, तो प्रभु ऐसे महापुरुषों से वह कार्य करवाते हैं, जो मात्र वे ही कर सकते हैं। इतिहास के स्वर्णिम पन्नों में वे अंकित हो जाते हैं। ऐसे महापुरुषों के लिए प्रभु युगों-युगान्तरों के इस महाकाल-चक्र में उस दिवस का विशेष अंकन करते हैं और वह दिवस बार-बार आता है। महापुरुषों से सुना हुआ वाल्मीकि रामायण का एक सत्य उदाहरण दूँगा। प्रभु हनुमान जी को श्रीराम ने अपनी अँगूठी दी, जब वह माता सीता की खोज के लिए लंका की ओर जा रहे थे। जिसे उन्होंने माता सीता को अपनी पहचान के लिए दे दिया और माता सीता को विश्वास हो गया कि हनुमान राम जी का ही दूत है। लंका तहस-नहस करने के बाद जब हनुमान जी वापिस लौटने लगे तो माता सीता ने अपनी चूड़ामणि दी और साथ ही वह अँगूठी भी वापिस कर दी, क्योंकि उसका काम हो चुका था। अब लौटते समय हनुमान जी के पास दो वस्तुएँ हैं, राम जी की अँगूठी और माता सीता की चूड़ामणि। हनुमान जी हर्षित, उल्लसित एवं आनंदित थे, क्योंकि बहुत बड़ा कार्य हो चुका था। ध्यान दीजिए, आनंदित कोई महापुरुष तब होता है जब कोई कार्य प्रभु की कृपा से करता है और यह सोचता है कि उन्हीं की शक्ति से यह कार्य मेरे द्वारा हुआ है। उसको कहीं सुनाने की इच्छा नहीं होती। जबकि आज छोटी सी प्राप्ति या विजय के बाद लोग उत्तेजित, अहंकारी और उन्मादित हो जाते हैं।

हनुमान जी आनंदित थे, समुद्र पार करके लौट रहे थे कि उनको आकाशमार्ग से एक बहुत शान्त आश्रम दिखाई दिया जिसके बाहर एक महापुरुष ताजे फलों का टोकरा लिए बैठे थे और साथ ही एक बहुत सुन्दर तालाब भी था। अतः हनुमानजी ने विचार किया कि काम तो प्रभु की कृपा से हो ही गया तो क्यों न कुछ खा-पी लिया जाये। वे वहाँ उतर गये, महात्मा को प्रणाम किया और देखा कि फलों के टोकरे के पास दो कमण्डल पड़े हैं, जिनमें से एक में जल था जो महात्मा ने उन्हें पिलाया। हनुमान जी ने अपना परिचय दिया तो महात्मा मुस्कुरा दिये, हनुमान जी ने सोचा त्रिकालदर्शी बाबा हैं जो मेरे लिये पहले से ही फल लिए बैठे हैं। महात्मा ने कहा आप उस

तड़ाग में स्नान करिए, ये फल खाइए और जाइए। हनुमान जी ने अपनी दोनों वस्तुएँ अँगूठी और चूड़ामणि महात्मा जी को दे दीं और स्नान करने चले गये। स्नान करके खूब छक के फल खाए और वापिस लौटने से पहले अपनी वस्तुएँ मांगी तो महात्मा जी ने मात्र चूड़ामणि दे दी। हनुमान जी ने उनकी ओर देखा तो महात्मा बोले—कि भैया ! आपका अँगूठी का काम तो हो गया। राम जी को आप पर विश्वास है, अब तो आपको केवल चूड़ामणि चाहिए। हनुमान जी ने कहा, प्रभु ! बात तो ठीक है पर मुझे अँगूठी भी दे ही दीजिए। महात्मा जी ने कहा, यदि आप अवश्य चाहते हैं तो दूसरे कमण्डल में से अपनी अँगूठी चुन लो। अब हनुमान जी ने जब कमण्डल देखा तो उसमें एक जैसी अनेक अँगूठियाँ पड़ी थीं। हनुमान जी स्तब्ध रह गये। वे सारी अँगूठियों को हाथ में लेकर पहचानने का प्रयत्न करने लगे कि उनकी अँगूठी कौन सी है। वे हैरान हैं कि प्रभु श्रीराम तो स्वयं मायापति हैं, यदि यह महात्मा मायावी भी हैं तो इनमें इतनी शक्ति नहीं हो सकती कि प्रभु श्रीराम की अँगूठी को माया-द्वारा रच सकें। वे हाथ जोड़कर खड़े हो गये, पूछा—प्रभु ! यह रहस्य क्या है ? महात्मा जी ने बताया, कि हनुमान सुनो ! अँगूठियाँ वापिस रख दो। मैं यहाँ युगों-युगान्तरों से बैठा प्रभु का ध्यान कर रहा हूँ, तप कर रहा हूँ, उसका नाम-जप कर रहा हूँ, और हर त्रेता युग में हनुमानजी लंका जलाकर माता सीता की खबर लेकर मेरे पास आते हैं तो मैं अँगूठी रखवा लेता हूँ। यह सारी अँगूठियाँ हनुमानजी ने ही रखीं हैं। तो हनुमान जी ने कहा कि प्रभु फिर यह भी रख लो। अर्थात् ऐसे महापुरुषों के लिये युगों-युगान्तरों में वह दिवस पुनः-पुनः आता है, जब वे ईश्वर-समर्पित होकर वह कार्य करते हैं, जिसके लिए उन्हें प्रभु-द्वारा यह देह मिली है। जो चूहे, बिल्लियों, मक्खियों, मच्छरों की तरह कार्य करते रहते हैं वे तथाकथित मानव हैं और उनके कार्य किसी खाते में नहीं आते। वे बार-बार जन्मते रहते हैं, मरते रहते हैं। कभी पुण्यी, कभी पापी, कभी सुखी, कभी दुखी, कभी कुछ खोया, कभी कुछ पाया, बस इसी तरह जीवन दर जीवन व्यर्थ करते रहते हैं।

आप आज का दिन व्यर्थ मत करिए। इसे उत्सव की तरह बिताइए। कहना तो सरल है पर कैसे हो? उत्सव की परिभाषा हम भारतीयों के अतिरिक्त और कोई नहीं जानता। हमारे मनीषियों ने लाखों वर्ष पहले उत्सव की परिभाषा दी थी, जो हिमालय की कन्दराओं ने मुझे कृपा करके दी है। प्रभु-कृपा से मैं बता रहा हूँ। **जब एक से अधिक व्यक्ति आनन्द में मिलते हैं (सुख में नहीं), आनंद में विचरते हैं और आनंद में ही बिछुड़ते हैं पुनः आनंद में मिलने के लिए–उसे कहा है 'उत्सव' और जब इस प्रकरण की पुनरावृत्ति होती है तो उसे कहते हैं 'महोत्सव'।** हम भारतीय ही उत्सव का वास्तविक आनन्द लेते हैं, क्योंकि उन तथाकथित अति विकसित राष्ट्रों को आनन्द की परिकल्पना ही नहीं है, वे Festival तो मना सकते हैं पर उत्सव नहीं मना सकते। तो आज का दिन आप उत्सव की तरह से मनाएँ मनाइए क्योंकि आज का दिन फिर कभी नहीं आयेगा, आज की आपकी देह शाम को समाप्त हो जाएगी। आप कल भिन्न होंगे, क्योंकि जीवन भौतिक निरन्तरता नहीं है। आपके हाथ में कुछ नहीं है। प्रत्येक दिवस उत्सव की तरह बिताइए, सबसे आनन्द में मिलिए, आनन्द में विचरिए और आनन्द में ही बिछुड़िए, पुनः आनन्द में मिलने के लिए। साथ ही स्वयं को खाली रखिए, जो प्रभु करवाएँ वही करिए। स्वयं को चतुर समझकर जीवन में हस्तक्षेप न करिए। जीवन को स्वतः भाव से चलने दीजिए। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो दुःखी होंगे और आपका दिन व्यर्थ निकल जाएगा, जो आपके जीवन में दुबारा कभी नहीं आयेगा। **जीवन भौतिक निरन्तरता न होकर आपकी आध्यात्मिक प्राप्तियों की निरन्तरता है,** जो सतत्, अविरल, उत्तरोत्तर बढ़ती ही रहती हैं, परन्तु ईश्वर-विमुख होते ही मल, विक्षेप और आवरण सघन होता जाता है। बौद्धिक अहम् और शारीरिक प्रतिभाओं के बल पर जो-जो आपको प्राप्तियाँ होती हैं यथा धन, सम्पदा, परिवार, पद, यश आदि-आदि उनका भोग आप नहीं कर सकते। आनन्द का तो प्रश्न ही पैदा नहीं होता। ईश्वर ने इतनी सुन्दर देह एवं जीवन-काल आपको वह करने के लिए दिया था, जो आप ही कर सकते हैं। आप इतिहास के निर्माता

हैं। प्रत्येक को ईश्वर ने यह अधिकार दिया है, लेकिन आप भेड़-चाल की तरह वही करते रहते हैं जिसमें सब व्यस्त रहते हैं। अतः ईश्वरीय शक्तियाँ विरुद्ध हो जाती हैं और आप सज़ाएँ भुगतते हैं।

आज के दिन, हमारी प्राप्तियों का भोग और आनन्द हमें कैसे मिले, यह स्पष्ट हो जाना चाहिये। सुबह होते ही हम सबसे पहले घड़ी देखते हैं, यदि हमारा वश चले तो हम सोये हुए भी घड़ी देंखे, पर यह असम्भव है। सुबह का अर्थ दिन के 11 बजे नहीं बल्कि सूर्योदय से पहले है। मैं एक दृष्टान्त सुना रहा हूँ—एक मूर्खों का गाँव था। जैसे ही संध्या होती थी वे सब अपने-अपने टोकरे उठाकर सारी रात अँधेरा ढोते रहते थे। एक जगह से टोकरी में अँधेरा भर कर कुछ दूर जाकर अँधेरा फेंक आते थे और सुबह होते-होते बहुत थक कर खा-पीकर सो जाते थे। इसी प्रक्रिया में उनकी जीवन-चर्या चलती थी। गलती से उस गाँव का कोई लड़का किसी सयानी बहू को ब्याह कर ले आया। वह बहुत बुद्धिमती थी। शुरू में वह हैरान-परेशान सी सारी कार्यवाही देखती रही क्योंकि नई बहू होने के कारण कुछ दिनों के लिए उसे वह कार्य नहीं दिया गया। परन्तु जब उससे भी टोकरा उठाकर जुट जाने को कहा गया तो उसने अपनी सास से कहा कि माता जी ! इस समस्त प्रक्रिया की आवश्यकता नहीं है। मेरे पास मेरी माँ का दिया हुआ वह मन्त्र है जो उन्होंने किसी सिद्ध महात्मा से लिया था तथा जिसका जप करने से यह समस्त कार्यवाही स्वतः ही हो जायेगी। परन्तु उसके लिए एक शर्त है कि आप सबको सोना पड़ेगा। उसकी सास गाँव की चौधरिन थी, अतः उसने सबको आदेश देकर सुला दिया और बहू मन्त्र का तथाकथित जाप करने बैठ गई। जब उसने देखा कि सब सो गये तो वह भी सो गई और सुबह सबसे पहले उठकर फिर मन्त्र-जाप सा करने लगी। सारे गाँव वाले जब उठे तो उजाला देखा, वे सब चौधरिन को बधाई देने आये कि आपकी बहू तो बहुत बुद्धिमती है। कथा हँसने के लिए नहीं है बल्कि आत्मालोचन करने के लिए है। हम आज भी अँधेरा ढो रहे हैं। रात 12 – 1 बजे तक कम्प्यूटर पर, ई.मेल पर, डिस्को क्लबों में, पार्टियों में लोग व्यस्त

रहते हैं और सुबह 12 – 1 बजे उठते हैं। दिन तो उनके लिए बहुत कम घण्टों के लिए निकलता है। रात तो अँधेरे में बीतती ही है, आधा दिन भी अँधेरे में ही व्यतीत हो जाता है। आप स्वयं को मूर्ख बना रहे हैं। **जो व्यक्ति सूर्योदय होने के बाद बिस्तर छोड़ता है, वह कभी भाग्यशाली नहीं हो सकता।** ये कोटि-कोटि ब्रह्माण्ड ईश्वर-द्वारा रचित अधिनियमों से ही चलते हैं। अतः जो व्यक्ति, विशेषकर गृहस्थी आज के दिन सूर्योदय होने के बाद बिस्तर से उठा है उसका आज का दिन कभी भाग्यशाली नहीं हो सकता। आज के दिन जिस समय आपकी नींद खुली है उसके अनुसार अपने भाग्य की रूपरेखा का अनुमान स्वयं लगा लेना, किसी ज्योतिषी से परामर्श लेने की आवश्यकता नहीं है। आपको प्राप्तियाँ हो सकती हैं लेकिन भोग नहीं मिलेगा, आनन्द का तो प्रश्न ही नहीं उठता।

आज के दिन को उत्कृष्ट, आनन्दमय और सौभाग्यशाली बनाने के लिए सूर्योदय से पहले उठकर जो भी प्राप्तियाँ आपको हुई हैं, उन्हें अपने इष्ट को समर्पित करिए, कि ''प्रभु ! ये सब वस्तुएँ आपकी हैं, इन्हें मैं आपकी इच्छा से, आपकी शक्ति से आपके चरणों में समर्पित कर रहा हूँ।'' रोते हुए अविरल अश्रुधाराओं सहित आपको अपनी प्राप्तियों के भौतिक अधिकार का समर्पण करना होगा। तो उन्हें भोगने का अधिकार वहीं तुरन्त मिल जायेगा और यदि आनन्दपूर्वक भोगना चाहते हैं तो आपको अपनी देह का समर्पण करना पड़ेगा, क्योंकि यह देह भी उस ईश्वर की ही दी हुई है, वह भी रोते हुए, कि ''प्रभु ! आज जो देह आपने मुझे दी है और आज का दिवस दिया है, वह आपकी कृपा से मुझे मिला है। आप यदि न चाहते तो मै बिस्तर से उठ नहीं सकता था। अतः आज का हर पल, हर क्षण, हर घड़ी आपकी है। इसलिए आप ही मुझे निर्देशित कीजिए कि मुझे क्या करना है ?'' जब आप अपनी देह का, अपने कार्यों का, अपनी बुद्धि का, अपनी डिग्रियों एवं प्रतिभाओं का जो ईश्वर-प्रदत्त ही हैं, तहे-दिल से आँखों में अश्रु लिए हुए समर्पण करेंगे तो प्रभु आपको वह दिन आनन्दपूर्वक बिताने की अनुमति दे देंगे। उसके साथ एक चमत्कारिक घटना और घटेगी, प्रभु जब विशेष

कृपालु होंगे तो जिन वस्तुओं के पीछे आप भाग रहे थे, वे सब वस्तुएँ और भोग पदार्थ स्वतः आपके चरणों में आ जायेंगे। आपको उनकी प्राप्ति के लिए समय व्यर्थ करने की आवश्यकता ही नहीं रहेगी, क्योंकि सत्य यह है कि जिन वस्तुओं को प्राप्त करने की हम डींग हाँकते हैं, वास्तव में वे पहले से ही हमारे प्रारब्ध में अंकित थीं, जो उचित समय पर मिल जाती हैं, जिसका प्रत्यक्ष प्रमाण आपकी अपनी देह है, जो आपको बनी बनाई स्वतः मिल गई। परन्तु, हम समझते हैं कि हमने मेहनत करके चीज़ों को प्राप्त किया है। जिस तरफ हमें परिश्रम करना चाहिये, वह न तो हम जानते है और न ही जानना चाहते हैं, कि प्रभु ने यह देह हमें क्यों दी है? यदि आप इसे नहीं जानते तो किसी संत की शरण में जाइए। इसका उद्देश्य आपको जानना अति आवश्यक है।

जैसाकि मैंने बताया हम आज के दिन यदि अपनी प्राप्तियों का भोग करना चाहते हैं तो उन सबको ईश्वर-समर्पित करें और यदि आनन्दपूर्वक भोग करना चाहते हैं तो अपनी देह का समर्पण करें। परन्तु क्या आज का दिन हमें केवल इसीलिए मिला है? नहीं, यह सत्य नहीं है। हमें उस परम सत्य को भी जानना है, जो हमारा स्वयं का सत्य है। इसके लिए मैं तीन प्रकरण बता रहा हूँ—**बौद्धिक, मानसिक और दैहिक। बौद्धिक प्रकरण** में आज के अति बुद्धिजीवियों को मैं एक विचित्र सैर बता रहा हूँ, वह है 'सौ साल बाद की सैर'। अपना कुछ समय अपनी बुद्धि से विचार-पूर्वक सौ साल बाद की सैर करते हुए बिताएँ। आज जो भी दिन है, जैसे आज 16 फरवरी, 2003 है, आप ध्यान में 16 फरवरी, 2103 में पहुँच जाइए। एकाग्रतापूर्वक बुद्धि से धारणा करें कि मैं आज 16 फरवरी, 2103 में पहुँच गया हूँ। वहाँ जाकर पता चला कि मैं, मैं ही नहीं रहा, कुछ देर आँखें मूँदकर बैठिए तो आप पाएँगे कि आप हैं परन्तु आप वह नहीं हैं जो आप स्वयं को मानते हैं। आपका सारा जगत, परिवार, धर्म, जाति, लिंग, देश, समाज, बैंक-बैलेन्स, सम्पदा, पद, मित्र, शत्रु, डिग्रियां आदि कुछ नहीं होगा। लेकिन आप होंगे, वहाँ ढूँढना कि पुरानी बातों में कौन होगा? जैसे कोई बड़ा भवन एक स्तम्भ

पर खड़ा हो उसी प्रकार आपका सारा संसार आपके अपने नाम-रूप के स्तम्भ पर खड़ा है जिसके हटते ही आपका सारा जगत ढह जायेगा। शास्त्र ने इसे **लययोग** कहा है। लेकिन पुरानी वस्तुओं में से जो वस्तु निश्चित तौर पर होगी, वह होगा आपका शाश्वत सच्चिदानंद स्वरूप, आपका इष्ट। यदि आपने कोई इष्ट माना है तो, नहीं तो वह भी नहीं होगा। वह वैसा का वैसा ही, जैसा सौ साल पहले था आपको मिल जायेगा। आप उसे पहचान लेंगे और वह भी आपको पहचान लेगा। पंच-महाभूत होंगे—पृथ्वी, जल, वायु, आकाश और अग्नि। आप भी होंगे लेकिन आप अपने उस तथाकथित नाम-रूप से परे होंगे। वहाँ आपको दो सत्यों का स्पष्ट दिग्दर्शन होगा। एक तरफ अपने इष्ट के रूप में अपने शाश्वत सच्चिदानंद स्वरूप का और दूसरी ओर सौ साल पहले के तथाकथित जगत के सत्य का। अतः आपको सारे **असत्य के सत्य** का ज्ञान हो जायेगा। जो बदल गया वह असत्य, नश्वर और मिथ्या ही होता है। देह में रहते हुए देह का सही ज्ञान नहीं होता परन्तु इस सौ साल की सैर में जब आप देह से परे चले जायेंगे तो आपको अपनी देह समेत अपने सारे जगत के **असत्य के सत्य** की अनुभूति होगी। यहाँ आपको दोनों अंत दिखाई देंगे **सत्य का सत्य और असत्य का सत्य**। सत्य तो एक ही है चाहे असत्य का हो, चाहे सत्य का। तो उस समय आपको एक अनुभूति होगी कि जिसको मैं असत्य समझ रहा था वह भी असत्य नहीं था, वह मेरे सत्य सच्चिदानंद स्वरूप, मेरे इष्ट की माया थी, जो मात्र मेरे लिए थी।

अब क्या होगा? कृपया एकाग्र करें! हम चिंतित क्यों थे? क्योंकि हम **असत्य को सत्य** समझ रहे थे, कि यह मेरा परिवार, मेरी नौकरी, मेरा धर्म, मेरा कर्म, मेरा देश, मेरा समाज, मेरा कर्त्तव्य, मेरी धन-सम्पदा आदि-आदि। यदि इसको सत्य न मानते तो हम परेशान क्यों होते? लेकिन सौ साल की सैर के बाद हमने इस **असत्य का सत्य** जान लिया। इस **असत्य को सत्य** मान कर हम फंसे और **असत्य का सत्य** जानकर हम मुक्त हुए। आज हम **असत्य को सत्य** मानकर ही जीवन जी रहे हैं।

इसीलिए निराश, हताश और तनावित रहते हैं, और यदि नहीं हैं तो हो जायेंगे। तो रोज़ अपने तथाकथित अति व्यस्त जीवन से ईश्वर के लिए 15 – 20 मिनट अवश्य निकालिए और सौ वर्ष आगे पहुँच कर समस्त **असत्य के सत्य** की अनुभूति करिए। आपको सारे **असत्य के सत्य** का दिग्दर्शन हो जायेगा। आपको कल्पना करनी पड़ेगी कि मैं कौन हूँ। यदि कल्पना नहीं करनी पड़ेगी तो केवल अपने इष्ट के बारे में क्योंकि वह वैसा का वैसा अपरिवर्तित आपको मिल जायेगा। अतः **असत्य का सत्य** दिग्दर्शित होने के बाद, पल्ले पड़ने के बाद उस दिन आप **सत्य का सत्य** अनुभूत करने के अधिकारी हो जायेंगे। तो यह है **बौद्धिक प्रकरण।**

दूसरा है मानसिक प्रकरण। यदि आप ईश्वर के निकट जाना चाहते हैं तो आप स्वयं के पास जाइए। जिसने खुद को नहीं देखा वह ईश्वर को देख ही नहीं सकता, दिव्य नियम ही नहीं है। आप हमारी बात मान लीजिए। ईश्वर को पाने के लिए अपने से भाग रहे हैं तो भूल जाइए ऐसा हो ही नहीं सकता। अगर आप मेरा अनुसरण करना चाहते हैं तो **आप स्वयं अपना अनुसरण कीजिए,** कि ईश्वर ने मुझे कैसा बनाया है? आपसे बड़ा जज आपके लिये कोई नहीं है, जो आपको जान सके। मैं चोर उचक्का, धूर्त, पाखण्डी, नालायक कैसा भी हूँ, यह किसी को बताने की आवश्यकता नहीं है। हाथी के दाँत खाने के और व दिखाने के और होते हैं। दुनिया के लिए आप वही बने रहिए जो आप चाहें या दुनिया आपको समझे, लेकिन जो आप बाखुद हैं, अपने स्वभाव का ठीक-ठीक निर्णय कर लीजिए। यह इतना सरल नहीं है। इसके लिए आपको स्वयं से पृथक होकर शून्य के स्तर पर आना होगा और वह स्तर है आपका शुद्ध सच्चिदानंद स्वरूप। यदि आप स्वयं के साथ ऐसे ही बैठेंगे तो आप स्वयं का निर्णय सही नहीं कर पायेंगे। क्योंकि यदि दो शराबी मिलें तो उन्हें एक दूसरे से बू नहीं आयेगी। उनमें से एक का नशा-रहित होना आवश्यक है। अपने आपको सही तौर पर जांचने के लिए आपको स्वयं शून्य के स्तर पर आना पड़ेगा। ईश्वर के लिये स्वयं को स्वयं से मत छुपाइए। दुर्भाग्य यह है कि हमें स्वयं से ही भय लगता है।

स्वयं को देखिए कि मैं कौन हूँ? आपको जो स्वभाव ईश्वर ने दिया है, जो तथाकथित विकार दिए हैं या जो प्रतिभाएँ दी हैं, आप चिंतित न हों अपने ईश्वर के सम्मुख स्वयं को वैसा ही पेश कर दीजिए। रो पड़िए आप, कि ''प्रभु ! आपने मुझे चोर एवं पाखण्डी बनाया है, मैं वैसा ही हूँ जैसा आपने मुझे बनाया है। इस सबके महाकारण आप ही हैं। आप इंकार नहीं कर सकते।'' सत्य स्वरूप के सामने जाकर सच्ची बातें होनी चाहिये, कोई गुटके, चालीसे मत पढ़िए, खुद को पढ़िए। जो आपको प्रभु ने बनाया है उसमें संतुष्ट हो जाइए।

मैं नवधा भक्ति में दसवीं भक्ति जोड़ रहा हूँ। स्वयं का ठीक-ठीक निर्णय करके प्रभु के सामने रख देना है, कि प्रभु आज के नाटक में आपने मुझे चोर का किरदार दिया है, निर्देशक तुम हो, अतः मैं चोरी बहुत बढ़िया करूँगा क्योंकि मुझे तुम्हें प्रसन्न करना है। अरे ! वह निर्देशक है सारे संसार का, उसके बिना एक पत्ता भी नहीं हिल सकता। आज जो भी तूने मुझे बनाया है, कामी, क्रोधी, लोभी मैं वही करूँगा जो तुम चाहते हो:-

''रहम की न होती जो आदत तुम्हारी,
तो दुनिया न करती इबादत तुम्हारी,
गुनहगार गर तुमने बक्शे न होते,
तो सूनी ही रहती अदालत तुम्हारी।
गुनाह करना मेरी आदत थी,
करके कुबूल करना मेरी शराफत थी,
मैं करता गया तुमने रोका नहीं,
मैंने समझा इसमें इज़ाज़त तुम्हारी।''

किसी का अनुसरण मत कीजिए, क्योंकि कोई आज तक किसी का अनुसरण नहीं कर सका है। अपनी चाल चलिए, किसी की चाल चलने का प्रयास करेंगे तो आपकी अपनी चाल भी बिगड़ जायेगी और उसकी चाल तो आप चल ही नहीं सकते। आपको ज्ञात होना चाहिये कि आपका स्वभाव ही आपका धर्म है। इस प्रकार मानसिक प्रकरण-द्वारा अपने मूल स्वभाव का

निर्णय कर उसी के अनुसार स्वयं को ईश्वर समर्पित करिए कि प्रभु ! आज मुझे आपने आज के नाटक में ऐसा बनाया तो मुझे अपने किरदार का आनन्द लेने दीजिए और यदि तुमने नहीं बनाया है तो फिर उसे सामने ला जिसने मुझे बनाया है। वहाँ एक दिव्य अधिनियिम लागू होता है:—

''सन्मुख होई जीव मोहि जबहीं, कोटि जन्म अघ नासेहिं तबहीं।''

तुरन्त वहीं आपके एक जन्म के नहीं, करोड़ों जन्मों के पाप नष्ट हो जाएँगे। लेकिन आप रोते हुए स्वयं को सही पेश करना और कहना कि मैं ऐसा ही हूँ, क्योंकि तुमने मुझे ऐसा ही बनाया है। लेकिन एक बात बता कि मैं तुम्हें मिलने का अधिकारी क्यों नहीं हूँ। क्या नालायक बेटा अपनी माँ से नहीं मिल सकता? यदि मैं पाखण्डी हूँ, धूर्त हूँ, कपटी हूँ तो मैं तुम्हारे पास क्यों नहीं बैठ सकता? अरे ! मुझे अपने में कोई संशोधन नहीं चाहिये, मैं केवल तुम्हें याद करना चाहता हूँ। मैं तुम्हारे पास क्यों नहीं बैठ सकता, यह कौन सा अधिनियम है? तो प्रभु आपके समस्त पाप तुरन्त नष्ट कर देंगे और आपके किरदार का रूपान्तरण कर देंगे व और भी बहुत कुछ करेंगे, वे महा समर्थवान हैं, कुछ भी कर सकते हैं। आपको किसी संत-शरण में ले जाएँगे। आपको किसी गुरु से नहीं सद्गुरु से मिलवा देंगे। इस प्रकार आप आज के दिन यदि परम सत्य की अनुभूति करना चाहते हैं तो या **बौद्धिक प्रकरण**—द्वारा सौ साल बाद आगे जाकर **असत्य का सत्य** और **सत्य का सत्य** आत्मसात् करिए, आप जान जाएँगे कि जिस **असत्य को सत्य** समझ रहे थे, उस **असत्य का सत्य** यह था कि वह ईश्वर की ही माया थी। अतः उस मायिक जीवन को आप लीला की तरह व्यतीत करेंगे और **मानसिक प्रकरण** में अपनी पात्रता को आत्मसात् करके इस संसार रूपी महा नाट्यशाला में अभिनय की तरह जीवन जिएँगे। यदि जीवन में आप आज का दिन आनन्दपूर्वक जीना चाहते हैं और उस परम सत्य को भी आत्मसात् करना चाहते हैं तो जीवन को अभिनय की तरह से देखिए और अभिनय जीवन्त हो। **जियो तो ऐसे कि अभिनय कर रहे हो और अभिनय ऐसे करो कि जी रहे हों।** कोई अभिनेता जितना सुन्दर अभिनय करता है जनता

उसकी उतनी प्रशंसा करती है। जब आप असत्य का सत्य जान लेंगे तो जीवन नाटक की तरह होगा। कभी लाभ, कभी हानि, कभी जन्म, कभी मरण, कभी यश, कभी अपयश, कभी आबादी, कभी बर्बादी, लेकिन आप उसका भरपूर आनन्द लेंगे।

तीसरा प्रकरण है दैहिक प्रकरण, जो उत्तरकाशी में शमशान में बैठे हुए प्रभु विश्वनाथ की कृपा से अनुभव हुआ, उसकी कुछ झलकियाँ आपके सम्मुख रखूँगा। यह विषय बड़ा गुप्त और रहस्यमय है। इसे सार्वजनिक तौर पर अनावृत नहीं कर सकते। जितना इष्ट-आदेश होगा वह आपके सम्मुख रखूंगा। यह पूर्णतः दैहिक प्रकरण है। अगर आप सत्य को जानना चाहते हैं तो अपनी देह के किसी एक सत्य को आत्मसात् कर लीजिए। किसी ऐसी अवस्था को पकड़ लीजिए जिसमें आप अपने नाम-रूप से परे हों और वह आपकी देह की एक निश्चित अवस्था हो। मैंने पाँच भौतिक स्थितियाँ ऐसी बताई थीं जिनमें हम होते हैं लेकिन हमें अपने नाम-रूप की अनुभूति नहीं होती—प्रगाढ़ निद्रा, मूर्छा, तुरिया समाधि, विस्मृति और मृत्यु। प्रगाढ़ निद्रा एक ईश्वरीय प्रकरण है, जिसमें हम नाम-रूप से परे होकर परम विश्राम की स्थिति में होते हैं। यदि हमें जीवन का सत्य आज ही पकड़ना है तो **अपनी जागृति में उस परम विश्राम की स्थिति को आत्मसात् करिए, जिसमें आप अपने नाम-रूप में न हों।** यदि आप अपनी जागृति में निद्रावस्था, मृत्यु, मूर्छा, तुरिया समाधि या विस्मृति किसी में भी एकाग्र करेंगे तो आपके सामने आपकी देह व नाम-रूप अवश्य रहेगा। अतः कौन सी ऐसी स्थिति है जो आपकी है पर आपके अपने नाम-रूप से परे है। वह स्थिति है—**भस्मी, खाक, राख** जो आपकी अवश्य बनेगी, सब तरह से और किसी भी तरह से।

इस खाक के बारे में सुनना है तो थोड़ी देर के लिए खाक बन जाइए, बड़ा आनन्द लेंगे आप इस भस्मी-योग का। शिवमय हो जाइए यदि आप शिवत्व के इस गहन तत्त्व को जानना चाहते हैं, क्योंकि यह हम भारतीयों के रक्त में है, संस्कारों में है, लेकिन हम आच्छादित हो गये हैं, भूल से गये हैं।

एक अवस्था हम सबकी ऐसी है, जिसमें हम सबको अवश्य गुज़रना है। हम डिग्रियां ले सकें न ले सकें, अभीष्ट धन कमा सकें न कमा सकें, हमारी अन्य योजनाएं कार्यान्वित हों न हों, हम नहीं जानते। लेकिन पाँच-महाभूतों से बनी इस देह की राख अवश्य बनेगी। शेष चारों महाभूत जल, वायु, अग्नि एवं आकाश इन्हीं में विलीन हो जाएँगे। जब हमारी देह जलेगी और शेष रहेगा एक विशेष तत्त्व भस्मी के रूप में। जैसाकि मैंने बताया था कि सत्तर किलो का व्यक्ति जब विद्युत शव-दाह-गृह में जलाया जाता है तो एक किलो छः सौ ग्राम विशुद्ध राख बनती है। रोज़ सुबह उठते ही अपने वज़न के अनुसार आप अपनी-अपनी राख का अनुमान लगा लेना। हमको देहाध्यास हुआ कि 'मैं देह हूँ' और हम फँस गए। देह को अपना स्वरूप मानकर जिन-जिन वस्तुओं को हमने अपनाया वे सब नश्वर थीं, असत्य थीं, परिवर्तनशील थीं, हमारे सम्बन्ध, हमारी प्रतिभाएँ, हमारी डिग्रियाँ, हमारी धन-सम्पदा आदि-आदि। इसलिए अन्ततः हम अवसाद और निराशा में चले जाते हैं तो क्यों न हम एक सत्य को पकड़ लें जो एक भौतिक सत्य है— '**हमारी भस्मी**' और जब वह बनेगी तो हम नहीं होंगे।

शिव भस्मी-प्रिय क्यों हैं? एक परम सत्य में जब हमारी देह गुज़रेगी और वह खाक, भस्मी होगी, उस समय हम नहीं होंगे और वह भस्मी जड़ होगी। वह हमारी निश्चित अवस्था है, तो उसको हम जीते-जी आत्मसात् क्यों न कर लें। करोड़ रुपये की लाटरी के लिए जब दस रुपये का टिकट खरीदते हैं तो हर आदमी थोड़ी देर के लिए करोड़पति बन जाता है, वह योजनाएँ बनाने लगता है कि करोड़ रुपये का इनाम मेरा ही आयेगा, वह निकले चाहे न निकले, परन्तु भस्मी तो हम सबने अवश्य बनना है। भगवान ने आपको कल्पना करने की इतनी बड़ी शक्ति दी है तो उस सत्य का अध्यास करने में क्या परेशानी है, जो अवश्य सामने आएगा। जब आप अपने जीते-जी अपनी भस्मी को आत्मसात् कर लेंगे तो आप शिव बन जाएँगे। भस्मी आपका शेष है। प्रत्येक व्यक्ति विशेष है। किसी व्यक्ति-विशेष को जब हम दूसरे व्यक्ति-विशेष के साथ खड़ा करके तुलना

करते हैं तो उनके शेष से करते हैं। कोई हमसे कितना बड़ा है, कितना छोटा है, किसी के पास कितनी ज्यादा सम्पदा है, किसके पास कितनी कम है, इसका अनुमान शेष द्वारा ही लगता है। हम घटाकर ही किसी से किसी की तुलना करते हैं, चाहे वह धन-सम्पदा, डिग्रियाँ, दैहिक सौंदर्य, स्वास्थ्य, पद, नाम, यश कुछ भी हो।

इस शेष ने हमको आपाधापी एवं स्पर्धा की दौड़ में डाल दिया है। अतः शेष में ही हम सब भाग रहे हैं। किसी शाम को उस दिन की अपनी भाग-दौड़ का अनुमान लगाना तो आप पाएँगे कि दिन की 90 प्रतिशत भाग-दौड़ उस शेष की पूर्ति के लिए होगी। उसी शेष में हम मर जाते हैं आसक्ति को लेकर, जैसेकि मैंने गिलास का उदाहरण कई बार दिया है। इसका अनुमान लगा लीजिए। गिलास रूपी जीव शेष की पूर्ति में ही लोटा, बाल्टी, ड्रम, कुआँ, नदिया बनने की स्पर्धा में जन्म-जन्मान्तरों में अतृप्ति, असंतोष, आसक्ति, भय, अशान्ति, असुरक्षा एवं विक्षेप लिए दौड़ता रहता है और अन्ततः नदी के रूप में अपना नाम-रूप खोकर ही सागर रूपी ईश्वर में मिलकर परम विश्राम पाता है। इस शेष की विचित्र कहानी यह है कि यदि हम उस शेष की पूर्ति करने में असमर्थ रहते हुए मर जाते हैं तो अगले जन्म में पुनः गिलास वाली स्थिति में आना पड़ता है। कहानी फिर शून्य से ही शुरू होती है। यदि आपको किसी पद की आसक्ति है या धन-सम्पदा की आसक्ति है और उसे प्राप्त करने की प्रक्रिया में आपके जीवन की घड़ियां पूरी हो जाती हैं तो अगले जन्म में आप उसी पद और धन-सम्पदा से शुरू नहीं होंगे जहां आपने पिछले जन्म में छोड़ा था। आपकी टैक्सी का मीटर पुनः शून्य पर आ जाएगा। हमारी जन्म-जन्मान्तरों की दौड़, अति बुद्धिमान होते हुए भी मूर्खतापूर्वक इस शेष की पूर्ति करने में ही होती रहती है।

अब यह परम सत्य मैं आपको रेखागणित के माध्यम से स्पष्ट करूँगा। मान लीजिए एक रेखा 12 इंच की है। रेखा एक बिन्दु से शुरू होती है और एक बिन्दु पर ही समाप्त होती है। यदि उस रेखा को हम तोड़ दें, विखण्डित कर दें तो कई बिन्दु बिखर जाएँगे। उस रेखा को बिना छेड़े यदि

आप बड़ा घोषित करके अति प्रसन्न करना चाहते हैं तो उसके समक्ष एक छोटी रेखा खींच दीजिए, वह अपने बड़प्पन पर फूली न समाएगी। यदि उसको अवसादित और निराश करना चाहते हैं तो उससे बड़ी रेखा साथ में खींच दीजिए –**'डॉट कॉम'**–आज हम आपको बिन्दु या डॉट का महत्त्व बता रहे हैं। यदि उस रेखा ने सत्संग किया होता, विवेक-बुद्धि से विचार किया होता, कि मुर्ख ! तू शुरू बिन्दु से हुई और समाप्त भी बिन्दु पर हुई तथा बनी हुई भी बिन्दुओं से ही है। यदि उसे वह बिन्दु आत्मसात् हो जाये, डॉट पकड़ में आ जाये तो उसके सामने 1200 इंच की रेखा खींच दीजिए व कभी निराश और कुंठित नहीं होगी, क्योंकि उसका भी आरम्भ, मध्य और अन्त बिन्दु ही है:–

''हमारी खाक को दामन से झाड़ने वालो,
सब इस मुकाम से गुज़रेंगे ज़िन्दगी के लिए।''

आप भी बिन्दु या राख पकड़ लीजिए। अरे ! शेष में तो तड़पते-तड़पते पैदा होंगे और तड़पते-तड़पते ही मर जाएँगे, कि हे प्रभु ! मेरा पोता हो जाता, मुझे यह मिल जाता, आदि-आदि। प्रभु ने यह देखे बगैर आपकी देह को समाप्त कर देना है। अरे ! डॉट को पकड़ लीजिए, कि ''प्रभु ! मैंने अपनी भस्मी का आनन्द ले लिया अब जब चाहे देह चली जाए।'' तो भस्मी है महाशेष, शेष के पीछे मत भागिए। आप विशेष हैं, आप बनना क्या चाहते हैं ? यदि 12 इंच की रेखा 1200 इंच की भी हो जाये तो भी विशेष ही रहेगी और आपको बनना है **महाविशेष**।

अकबर, अशोक, सिकन्दर जैसे बड़े-बड़े प्रतापी सम्राट राज्य और भूमि की लालसा लिए हुए तड़पते-तड़पते ही मरे हैं, उनका पेट कभी नहीं भरा। **अरे ! इस शेष का पेट कभी नहीं भरेगा, यह आपको ले बैठेगा।** तो संतुष्टि के लिये अपनी भस्मी को जीते-जी आत्मसात् कर लीजिए। आपकी वह जड़ भस्मी महाचेतन हो जाएगी। जब आप चेतनता में यह धारणा करेंगे कि मैं भस्मी हूँ। **आप विशेष व्यक्ति थे, आपने महाशेष को धारण किया और उसी दिन आप विशेष से महाविशेष बन जाएंगे, यह दैवीय कानून**

है। भस्मी को महाशेष इसलिए कहा है क्योंकि वह राजा और रंक, छोटे और बड़े सबकी एक जैसी होती है। महाविशेष तभी होंगे जब आप इस महाशेष या भस्मी को धारण करके शिव की तरह हो जाएँगे। दिगम्बर शिव भस्मी ओढ़े बैठा है, उसे विश्वनाथ कहते हैं, उसे बनावट और आडम्बर करने की आवश्यकता ही क्या है? उसे ज्ञात है कि वह विश्वनाथ है। जिसके ऊपर उसकी नज़रे इनायत होंगी, वह भिखारी भी बादशाह बन जाएगा। वह जीते-जी महाशेष को धारण किए है और यही है भस्मी का रहस्य। शेष के पीछे दौड़ने से यदि आप उस प्रक्रिया में मर गये तो अगले जन्म में वह भाग-दौड़ जुड़ेगी नहीं और महाशेष को जब आप धारण कर लेंगे तो आपका अगला जन्म भी उस महाविशेष से ही आरम्भ होगा, क्योंकि बिन्दु तत्त्व है। रेखा रूपी जीव यदि भस्मी रूपी इस बिन्दु तत्त्व को आत्मसात् कर ले तो उसे कभी निराशा, ईर्ष्या, अहम्, राग, द्वेष, वैर व वैमनस्य कुछ नहीं होगा। परन्तु इस तत्त्व को आत्मसात् करना कृपा-साध्य है। प्रभु-कृपा, इष्ट-कृपा, सन्त-कृपा और आत्म-कृपा हो जाये तभी यह तत्त्व पल्ले पड़ता है और फिर जीवन आपके लिए लीला बन जाता है। बड़ा-छोटा, लाभ-हानि कुछ नहीं है, जीवन आनन्द ही आनन्द हो जाता है।

जब आप भस्मी बनेंगे तब आप नहीं होंगे। अतः जीते-जी अपनी भस्मी को आत्मसात् करिए। अरे! अध्यास मत छोड़िए। आपको देहाध्यास था कि मैं यह देह हूँ परन्तु जब महाशेष, भस्मी को धारण कर लेंगे तो आपकी देह आपसे मोहब्बत करने लगेगी। वह प्रार्थना करेगी कि आप मुझे अपने पास कुछ दिन और रख लीजिए और आप कहेंगे कि उससे पूछ लो जिसकी इच्छा से तुम मेरे पास आई हो। मेरी तरफ से जाओ-आओ मुझे कोई अन्तर नहीं पड़ता:—

''मैं तो नाला हूँ ज़िन्दगी से मगर,
ज़िन्दगी मुझसे प्यार करती है,
मैंने कितना इसे ज़लील किया,
फिर भी कम्बख्त मुझ पे मरती है।''

जिस दिन आपकी देह आपसे प्यार करने लगेगी, सारा विश्व आपका दीवाना हो जायेगाः–

''न कोई बैरी, न बेगाना सकल संग हमको बनिआई।''

प्रभु श्रीराम की धर्मपत्नी सीता जी को दुष्ट रावण चुराकर ले गया तो प्रभु उनके वियोग में रोते हुए खगों, तिनकों, पुष्पों, तरुओं और लताओं तक से पूछते हैं कि तुमने मेरी सीता को देखा है। प्रभु की लीला है। भगवान शंकर सती के साथ आकाश-मार्ग से जाते हुए यह दृश्य देखकर आनन्दित होते हैं और प्रभु को 'जय सच्चिदानंद' कह कर प्रणाम करते हैं। इस पर सती भ्रमित हो गईं कि अयोध्या जैसी छोटी नगरी का युवराज अपनी पत्नी के वियोग में साधारण मानवों की तरह रो रहा है और मेरे पति देवाधिदेव महादेव उन्हें प्रणाम कर रहे हैं। तब भगवान शंकर ने उन्हें रहस्य बताया कि सती ! यह विष्णु भगवान हैं, जो लीला कर रहे हैं। उस लीला को देखकर स्वयं महाशक्ति को भी ऐसा भ्रम हो गया। संसार इसी प्रकार आपके लिए भी लीला हो जाता है। दुःशासन भरी सभा में द्रौपदी की साड़ी खींच रहा है और भगवान कृष्ण ने द्रौपदी पर कृपा करके उसकी साड़ी को इतना बढ़ाया कि दुःशासन की भुजाएँ थक गईं। एक कवि ने इस दृश्य पर कुछ पंक्तियाँ लिखी हैंः–

''नारी बिच सारी है कि सारी बिच नारी है,
कि नारी की ही सारी है, कि सारी ही की नारी है।''

जीते-जी महाशेष को धारण करके योगी की भी यही स्थिति हो जाती हैः–

''विशेष में शेष है, कि शेष में विशेष है,
कि विशेष ही विशेष है, कि विशेष ही शेष है,
कि शेष का विशेष है, कि विशेष का शेष है।''

लोग भ्रमित हो जाते हैं और आपका जीवन आनन्दमय लीला बन जाएगा, यदि आप उस भस्मी महाशेष को अपनी जागृति में आत्मसात् कर लेंगे। जानना समझना नहीं है, आत्मसात् करना है, जोकि कृपा-साध्य है। यह नहीं सोचना कि मैं कल से ऐसा ही कर लूँगा। यदि आप पर ईश्वर की

कृपा होगी मात्र तभी ऐसा सम्भव है। पूजा, उपासना, ध्यान, दान, पुण्य तभी सिद्ध होता है जब प्रभु-कृपा एवं सद्‌गुरु-कृपा होती है। नहीं तो **ज्ञान-ध्यान भी आपके लिए शेष का कारण ही बन जाएगा,** कि मैंने इतना तप किया दूसरे ने इतना किया तो किसी न किसी से तप पर भी होड़ करते रहेंगे। इसलिए जो कुछ भी करना है, इष्ट के नाम से ही करना है और जो कुछ आप इष्ट के नाम से, सद्‌गुरु के नाम से करेंगे, वह आपका जप-तप ही बन जाएगा अन्यथा आपका जप-तप भी निरर्थक हो जाएगा। सत्संग में आने का सुअवसर मिले तो यह कदापि न कहना कि मैं बड़ा व्यस्त था, समय निकाल कर आ गया। आप किसी पर अहसान नहीं कर रहे हैं। सत्संग मात्र उसी को मिलता है जिसके ऊपर उसके माता-पिता की कृपा होती है।

अब आइए विष्णु भगवान पर जोकि क्षीर-सागर में शेष-शैया पर लेटे हैं और लक्ष्मी उनके चरण दबा रही हैं। वह भी शेष है, लक्ष्मी के सात अंग हैं–**सुख, स्वास्थ्य, समृद्धि, शान्ति, संतोष, स्वजन और सत्संग**–इनसे युक्त लक्ष्मी भगवान विष्णु के चरण दबा रही है क्योंकि वे शेष-शैया पर लेटे हैं। दस-बीस मिनट आप भी यदि अपने तथाकथित व्यस्त जीवन में समय निकाल कर शेष-शैया पर लेट जाएँ, यह धारणा करके कि मैं मर गया हूँ, तो ठीक चालीस दिन बाद लक्ष्मी स्वयं आपसे सम्पर्क करना चाहेगी। मरना तो एक दिन है ही, तो क्यों न उस स्थिति को जीते-जी धारण करके देखें। जिन सांसारिक विभूतियों के पीछे हम भागते हैं, उस महाशेष को धारण करते ही वे सब स्वतः हमारे चरणों में आने लगती हैं।

अब भस्मी का एक और रहस्य खोल रहा हूँ। जब हमारी यह स्थिति बन जाती है कि जीते-जी हम भस्मी को धारण कर लेते हैं और जीवन, लीला नज़र आने लगता है तो उस महाशेष को धारण करते-करते मृत्यु का भय समाप्त हो जाता है, यह मानसिक टीकाकरण है। जब आप अपनी देह को इस भस्मी द्वारा वैक्सीनेट करेंगे कि मुझे भस्मी बनना है, मैं भस्मी हूँ, मैं मर गया हूँ तो आपका **'देहाध्यास' 'भस्माध्यास'** में बदल जाएगा। आपके समस्त राग-द्वेष, हीन व उच्च भावनाएँ तथा निराशा और अहम् सब समाप्त

हो जाएँगे। आप अपने अध्यास को देह से हटाकर भस्मी में आरोपित कर दीजिए। भस्माध्यास होते ही आपको **असत्य का सत्य** अवगत हो जाएगा। अब अपने इष्ट से सम्पर्क करिए कि मुझ में और तुझ में अन्तर ही क्या है? ऐ मेरे खुदा, मेरे मालिक ! मुझे दर्शन दे। मैं भस्मी हूँ, जन्मों-जन्मान्तरों में तुमने मुझ पर तथाकथित बहुत सी कृपाएँ कीं और संसार की नश्वर वस्तुएँ दे-देकर मुझे बहलाते रहे, मरने पर फिर मुझे शून्य करते रहे पर मेरी आँखें नहीं खुलीं, लेकिन अब मैं भस्मी हूँ। ऐ मेरे इष्ट ! कृपा के नाम पर वो धन-सम्पदा और ऐश्वर्य अब मुझे नहीं चाहिये। वो औरों को दे-दे। अब मुझे तुमसे केवल तुम्हारी आवश्यकता है। मैंने अपने शाश्वत सच्चिदानंद स्वरूप को जो तुम हो, तुम्हारी इन वस्तुओं के चक्कर में तुम्हारे पास गिरवी रख दिया था, लेकिन मैं उसे भूला नहीं हूँ। जब कभी कठिन दिन आते हैं तो व्यक्ति अपनी बहुमूल्य वस्तु, कोई जायदाद, हवेली गिरवी रख देता है, वैसे ही मैंने भी अपना शाश्वत स्वरूप तुम्हारे पास गिरवी रखा था। तुम सच्चिदानंद हो, मैं भी सच्चिदानंद हूँ। अगर सारे संसार में मेरा कुछ है तो वह तुम हो। जब आपकी रूह से यह पुकार निकलेगी तो चालीसे, गुटके पढ़ने की आवश्यकता नहीं रहेगी। तुम ही हो मेरे जो हमेशा से थे और हमेशा रहोगे। मैं तुम से तुमको माँग रहा हूँ, मुझे आकर दर्शन दे, मुझे आकर छू :–

''तुमसे तुम्हीं को मांगा, अदना बनाया खुद को,
अपनी ही अमानत का सारा हक खो चुके हम।''

अरे ! मेरे बुरे दिन थे, मैं गफलत में था। मैं अपनी ही अमानत को छुड़ाने के काबिल नहीं रहा। मुझे ज्ञात है कि मैं तुम्हारा दीदार पाने के योग्य नहीं हूँ। लेकिन मैं तुम्हें भूला नहीं हूँ। तुमने मुझे खुद को भुलाने के लिए सारा नश्वर संसार दे दिया, वह भी कृपा के नाम पर। बहुत बड़ी पोस्ट दे दी, नाती-पोते दे दिये, धन-सम्पदा दे दी और मैं जन्म-जन्मान्तरों में मूर्ख बनता रहा। इसके बदले अपना शाश्वत सच्चिदानंद स्वरूप जो तुम हो, तुम्हारे ही पास गिरवी रख बैठा। लेकिन अब मैं भस्मी हूँ। तुम अजर-अमर, अनादि-

अनन्त, देशातीत, कर्मातीत, धर्मातीत, कालातीत, त्रिगुणातीत, लिंगातीत, सम्बन्धातीत हो, अरे ! भस्मी बनकर मैं भी ऐसा ही हूँ। जब आप भस्मी को आत्मसात् कर लेंगे तो आपकी प्रार्थनाओं में बल आ जायेगा और ईश्वर को आपकी उन प्रार्थनाओं को सुनना पड़ेगा। जीते-जी उस महाशेष को धारण करके ये प्रार्थनाएँ करिए—यह मत कहना कि यह मेरी भस्मी है, नहीं तो भस्मी में देहाध्यास रहेगा। शब्दों के इधर-उधर होने से बड़ा अन्तर पड़ता है। मैं भस्मी हूं। अब मुझमें और तुझ में कोई विशेष अन्तर नहीं रह गया है। क्योंकि भस्मी भी देश, काल, लिंग, धर्म, कर्म, सम्बन्ध, जन्म, मृत्यु और माया के तीनों गुणों से परे होती है, ईश्वर की ही तरह। हे महाकालेश्वर ! भस्मी बनकर मैं भी कालातीत हूँ, आज तक बेशक मैं काल से बँधा था। भस्मी कभी घड़ी नहीं देखती। भस्मी का कोई धर्म-कर्म नहीं होता, किसी से कोई सम्बन्ध नहीं होता। जब आप जीते-जी अपनी भस्मी को आत्मसात् कर लेंगे तो उस महाकालेश्वर के अंश हो जाएँगे और आपमें शिवत्व जाग्रत हो जायेगा। आपकी दृष्टि मात्र पड़ने से लोग कृत-कृत्य हो जायेंगे। लेकिन भस्माध्यास के बाद आपमें व आपके इष्ट में थोड़ा सा अन्तर रह जायेगा, कि मैं भस्मी हूँ अतः बल, बुद्धिहीन असमर्थ और अशक्त हूँ और हे प्रभु ! तुम बल, बुद्धि, विद्यावान, समर्थ और सशक्त हो। मैं तुमसे इसलिए प्रार्थना नहीं कर रही कि मुझे यह सब चाहिये। मुझे बल, बुद्धि, विद्या, शक्ति और सामर्थ्य नहीं चाहिये। तुम इन विशेषताओं से क्यों युक्त हो मैं यह जानना भी नहीं चाहती। लेकिन मेरे इष्ट ! मैं तुम्हें भूल नहीं पाती। मैं भस्मी बन कर भी तुम्हें पाना चाहती हूँ क्योंकि मैं तुमसे बहुत प्यार करती हूँ। भक्त किसी भी स्तर पर अपने इष्ट को नहीं छोड़ता वह खाक बन जाता है:—

''देख लैला तेरे मजनू को हुआ क्या है,
खाक में मिलके भी कहता है कि बिगड़ा क्या है।''

मैं तुमसे मुकाबला करने के लिए भस्मी नहीं बना हूँ। मैं केवल तुम्हारे नज़दीक आना चाहता था। जन्मों-जन्मान्तरों में मैं शेष की पूर्ति करते-करते विशेष बनकर आसक्तियों को छोड़ मरता रहा लेकिन मुझे तुम्हारा सान्निध्य

नहीं मिला। अब मैंने तेरी कृपा से महाशेष को धारण कर लिया है। अब आकर मुझे मात्र छू लो। जब यह तीव्रता आत्मसात् हो जायेगी तब भस्माध्यास, इष्टाध्यास में बदल जायेगा। पहले आपको **देहाध्यास** था, क्योंकि आप शेष को धारण किए हुए थे। फिर संत-कृपा हुई आपने महाशेष को धारण किया और **भस्माध्यास** हो गया। आपके और आपके इष्ट के बीच की दूरियाँ लुप्त हो गईं और आपको **इष्टाध्यास** हो गया। आपका इष्ट भी आपको याद कर रहा था कि मेरी संतान, मेरा इकलौता बच्चा मेरी ही दी हुई बुद्धि का दुरुपयोग करके क्या माँग रहा है? मैं पूरे विश्व के कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों का सम्राट हूँ और यह मेरा इकलौता युवराज जिसके लिए मैंने सारी कायनात रची है, यह मुझसे अपनी ही छोटी-छोटी वस्तुएँ माँग रहा है। जब आपके उस परम पिता को ज्ञात हो जायेगा कि मेरी संतान मेरे अनुकूल हो गई है तो वह खुद आगे बढ़कर आपको अपने हृदय से लगा लेगा और आप इष्टमय होकर महाविशेष हो जायेंगे और कह सकेंगेः–

''मोहि-तोहि भेद कैसा, जल-तरंग जैसा''

''बोलिए सियावर रामचन्द्र महाराज की जय''

(16, 23 फरवरी, 2003)